Master of Arts

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास - 1

(HINDI LITERATURE)

(DISTANCE MODE)

Centre for Distance and Online Education

TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY

N.H.-24, Delhi Road,

Moradabad, Uttar Pradesh244001

Website: www.tmu.ac.in

EXPERT COMMITTEE

Dr.Omprakash Singh,
Assistant Professor
VARDHMAN COLLEGE BIJNOR, U.P.

Dr. Poonam Chauhan
Assistant Professor
S.B.D. GIRLS DEGREE COLLEGE DHAMPUR, U.P.

COURSE COORDINATOR

Dr. Poonam Chauhan
Assistant Professor
Faculty of Education, Teerthanker Mahaveer University. (TMU)

BLOCK PREPARATION

Unit Writers	Assisting & Proof Reading	
Dr. Poonam Chauhan,	**Dr. M. P. Singh**	**Dr. Vinod Kumar Jain**
Assistant Professor	**Professor**	**Associate Professor**
TMU	**TMU**	**TMU**

Secretarial Assistance and Composed By :

Mr. Deepak Malik
Assistant Registrar,
Faculty of Education, TMU.

COURSE INTRODUCTION

The Praacheen Evan Madhyakaaleen Kaavy Tatha Unaka Itihaas – 1 course, worth five credits and comprising five blocks, aims to enhance your understanding of political concepts and provide knowledge about various states.

This course adopts a cross-curricular approach to boost both your political and academic knowledge, making it easier and more efficient for you to comprehend study materials in other subjects.

The course is divided into five blocks of different units. The Block titles are as follows:

Block 1 - **विद्यापति - 20 पद**

Block 2 - **मालिक मोहम्मद जायसी**

Block 3 - **विद्यापति, कबीर और जायसी से संबंधित आलोचनात्मक**

Block 4 - **प्राचीन काल मध्यकालीन काव्य (निर्गुणधारा) का इतिहास**

Block 5 - **द्रुतपाठ के कवि**

Each Unit is divided into sections and sub-sections. We begin each Unit with a statement of objectives to indicate what we expect you to achieve through the Unit. There are several activities in each section of the Unit which you must attempt. You should then check your answers with those given by us at the end of the Unit.

There are assignments based on this course. After completing the assignments, submitted to the CDOE, TMU. The assignment is evaluated and returned to you with comments which will help you to improve your proficiency in political Science.

We hope you enjoy the Course. Please attempt all the activities and exercises given in the Units.

Acknowledgements:

The material (pictures and passages) we have used is purely for educational purposes.

Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this

book. Should any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future editions of this book.

BLOCK INTRODUCTION

Block 1 (विद्यापति - 20 पद) has two Units. Under this theme we have covered the following topics:

Unit 1 : विद्यापति - 20 पद

Unit 2 : **कबीर**

विद्यापति के 20 पद उनकी भक्ति और शृंगार रस की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हैं, जो प्रेम और आध्यात्मिकता के भावों को सुगठित रूप में प्रस्तुत करते हैं। वहीं, कबीर के पद उनकी निर्गुण भक्ति और समाज सुधार की दृष्टि को दर्शाते हैं, जिसमें उन्होंने धार्मिक कट्टरता और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाई है। दोनों कवियों की रचनाएँ भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, जो भक्ति और सामाजिक चेतना को प्रबल करती हैं।

We suggest you do all the activities in the Units, even those which you find relatively easy. This will reinforce your earlier learning.

Course Code: DMAH101	**CORE COURSE** **एम्.ए. प्रथम सेमेस्टर** **(हिंदी साहित्य)** **प्रश्नपत्र – प्रथम** **प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास - 1**	**L-5 T-0 P-0 C-5**
Course Outcomes:	पाठ्यक्रम अधिगम परिणाम को पढ़ने के उपरांत विद्यार्थी:-	
CO1.	विद्यापति के काव्य एवं कबीर ग्रंथावली का विविध दृष्टियों से मूल्यांकन कर सकेंगे।	
CO2.	मालिक मोहम्मद जायसी के काव्य की विशेषताओं का तुलनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे	
CO3.	हिंदी कविता के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि विकसित कर सकेंगे।	
CO4.	हिंदी भाषा के मानकीकरण में अनुप्रयुक्त विधियों का तुलनात्मक विश्लेषण एवं मूल्यांकन कर सकेंगे	
Course Content:		
Unit-1:	**विद्यापति** - 20 पद (विद्यापति, संपादक, डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित) पद क्रमांक - 1, 4, 5, 7, 8, 11, 12, 14, 15, 16, 20, 22, 23, 26, 27, 28, 31, 35, 36, 39 **कबीर**- कबीर ग्रंथावली डॉ श्यामसुंदर दास गुरुदेव को अंग (साखी क्रमांक 1 से 10), सुमिरण को अंग (साखी क्रमांक 1 से 10), विरह को अंग (साखी क्रमांक 1 से 10), ज्ञान-विरह को अंग (साखी क्रमांक 1 से 10)	**10 Hours**
Unit-2:	**मालिक मोहम्मद जायसी** - पद्मावत, संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल (मानसरोदक खण्ड एवं नागमती वियोग खण्ड)	**10 Hours**
Unit-3:	विद्यापति, कबीर और जायसी से संबंधित आलोचनात्मक प्रश्न।	**10 Hours**
Unit-4:	प्राचीन काल मध्यकालीन काव्य (निर्गुणधारा) का इतिहास, प्रमुख प्रवृतियाँ एवं रचनाकारों से सम्बंधित प्रश्न।	**10 Hours**
Unit-5:	द्रुतपाठ के कवि - चन्दबरदाई, अमीर खुसरो, रैदास, गुरूनानक, नामदेव से सम्बधित लघुउत्तरीय प्रश्न।	**10 Hours**
Text Books:	1 कवीर ग्रंथावली- सं. डॉ० श्याम सुंदर दास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2 जायगी ग्रथावली सं आचार्य रामचंद्र शुक्ल- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	

	3 हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि- डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना- श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 4 हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ० नगेन्द्र व डॉ० हरदयाल मयूर मुक्र, नई दिल्ली 5 विद्यापति पदावली आनंद प्रकाश दीक्षित साहित्य मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर 6 हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 7 पद्मावत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	
Reference Books	*** Latest editions of all the suggested books are recommended**	

इकाई – 1

विद्यापति - 20 पद (विद्यापति, संपादक, डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित)

पद क्रमांक - 1, 4, 5, 7, 8, 11, 12, 14, 15, 16, 20, 22, 23, 26, 27, 28, 31, 35, 36, 39

कबीर- कबीर ग्रंथावली डॉ श्यामसुंदर दास

गुरुदेव को अंग (साखी क्रमांक 1 से 10), सुमिरण को अंग (साखी क्रमांक 1 से 10), विरह को अंग (साखी क्रमांक 1 से 10), ज्ञान-विरह को अंग (साखी क्रमांक 1 से 10)

रूपरेखा

1.1 प्रस्ताबना

1.2 उद्देश्य

1.3 शब्द सम्पदा

1.4 गीति काव्य की दृष्टि से विद्यापति

1.5 विद्यापति का काव्य-सौन्दर्य

1.6 विद्यापति-भक्त या श्रृंगारी कवि?

1.7 विद्यापति की काव्य भाषा

1.8 विद्यापति की भाषागत विशेषताएँ

1.9 विद्यापति का विरह-वर्णन

1.10 निगुण भक्ति परम्परा में कबीर का स्थान

1.11 कबीर के रहस्यवाद का विवेचन

1.12 कबीर एक समाज सुधारक विद्रोही संत कवि

1.13 कबीर के काव्य में व्यर्जित दार्शनिकता

1.14 सारांश

1.15 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1.16 पठनीय पुस्तकें

1.1 प्रस्ताबना

विद्यापति का काव्य प्रेम न का काव्य है। प्रेम का मूल प्रेरक क है सौन्दर्य, उसका आश्रय है यौवन। यौवन और सौन्दर्य का समन्वित रूप ही प्रेम या रति है। रति श्रृंगार का स्थायी भाव है। विद्यापति श्रृंगारी कवि थे, अतः उन्होंने रति अथवा प्रेम के मूल प्रेरक सौन्दर्य का पूर्ण और उत्कृष्ट निरुपण किया। सौन्दर्य इन्द्रियों के माध्यम से अन्तस में उतर कर उसे प्रेमाभिभूत करता है, अतः सौन्दर्य की दो प्रधाव-भूमियाँ हैं-बाहरी और भीतरी। सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति करने वाला प्रत्येक कवि भीतरी और बाहरी दोनों ही प्रकार का सौन्दर्य-चित्रण करता है। विद्यापति में हमें सौन्दर्य चित्रण के दोनों ही रूप मिलते हैं। वे बाहरी सौन्दर्य के चित्रण में जितने कुशल हैं, भीतरी सौन्दर्य अंकन में भी उतने ही निपुण। शारीरिक अवस्था से

मानसिक अवस्था जैसा देह होगा वैसा ही का गम्भीर और अटूट सम्बन्ध है। मन। विद्यापति ने देह और मन दोनों ही के सौन्दर्य का चित्रण किया है।

बाहरी सौन्दर्य चित्रण या शारीरिक रूप-चित्रण के अनेक प्रकार हैं-नख-शिख वर्णन अर्थात शारीरिक अवयवों का पृथक् पृथक वर्णन, चेष्टाओं का वर्णन, वेशभूषा का वर्णन, हाव-भाव, क्रिया- प्रतिक्रिया का वर्णन। "रूप सौंदर्य चित्रण के विविध प्रकार विद्यापति की पदावली में विद्यमान है। विद्यापति ने राधा और कृष्ण दोनों का ही रूप सौन्दर्य चित्रित किया है किन्तु राधा का विशेष राधा को कवि ने अपरूप, अपूर्व और अभिरामा आदि कहा है। 'गिरा अनयन भयन बिनु बानी' के अनुसार गाथा का रूपांकन संभव ही नहीं। सौन्दर्यांकन में अपने आपको असमर्थ कहना ही माना सौन्दर्य की अपूर्वता को स्वीकार करना है। कवि कहीं तो उसकी रूप छटा की अनुभूति के सम्बन्ध में पूछने एक की मनाही करता है 'पुछहु जनु' कहीं स्वयं असमर्थ हो जाता है- 'जत देखल कहए न पाबिअ' कभी इतना अभिभूत हो जाता है कि आरे 'की कहब' आदि शब्दों का सहारा लेता है। विद्यापति की राधा त्रिभुवन विजयी माला' है।" विद्यापति की सौन्दर्य भावना को निम्नांकित शीर्षकों से समझा- समझाया जा सकता है-चिर नवीन सौन्दर्य अपरूप सौन्दर्य, नख-शिख सौन्दर्य, निश्चल और अकृत्रिम सौन्दर्य, सूक्ष्म और मानसिक सौन्दर्य। संभोगजनित सौन्दर्य, मानवेतर प्रकृति-सौंदर्य, प्रेम वर्णन में सौन्दर्य, पारस सौन्दर्य और मारक एवं प्रभावी सौंदर्य।

1.2 उद्देश्य

1. कबीर- कबीर ग्रंथावली को जान सकेंगे |
2. विद्यापति को जान सकेंगे |

1.3 शब्द सम्पदा

विद्यापति

कबीर

1.4 गीति काव्य की दृष्टि से विद्यापति

नीति काव्य की परम्परा एवं विद्यापति के गीत विद्यापति के गीतों का गीति काव्य की परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है। गीति काव्य की परिभागा पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई है। कुछ प्रमुख परिभाषायें इस प्रकार हैं-

1. वस्तुतः गीतिकाव्य को ही कविता कहा जा सकता है। किसी कृति विशेष में काव्यात्मकता जितनी अधिक होती हैं वह उसी अनुपात में गीतात्मक होती है। - डॉ. चार्ल्स

2. गीतिकाव्य का कवि जगत् के सारें तत्वों को अपने में समाहित करता है, अपने वैयक्तिक भानों के प्रभाव से इसे पूर्णतः आत्मसात् करता है और इस आत्मपरकता को सुरक्षित रखने वाली

शैली में अभिव्यक्त करता है।

- हीगेल

3. गीतिकाव्य इकहरे विचार, अनुभूति या स्थिति का चित्रण है जिसमें भावना का रंग और गति अवश्य होनी चाहिए। संक्षिप्तता, मानवीय - पालग्रेव

4. गीतिकाव्य कल्पना की गति है, जिसके द्वारा ससीम मानवात्मा असीम के साथ सम्बद्ध होने का प्रयास करती हैं। - एच. लॉज

5. लिरिक अथवा गीतिकाव्य से प्रयोजन उन कविताओं से है, जिनमें कवि ने अंतर्वादी शैली अपनाकर अपनी अंतरतम भावनाओं का परिचय दिया है। - एस. पी. खत्री

6. साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। अनुभूति का वह शब्द- - महादेवी वर्मा

इन परिभाषाओं का समग्रतः विश्लेषण करने पर गीतिकाव्य के ये तत्व निर्धारित होते हैं- संगीतात्मकता, आत्माभिव्यक्ति अथवा वैयक्तिकता और रागात्मकता अथवा भावप्रवणता। विद्यापति के गीति काव्य की विशेषतायें अथवा तत्व संगीतात्यकता-गीतिकाव्य में संगीतात्मकता के दो रूप होते हैं-स्वर-संगीत और शब्द- संगीत। विद्यापति के गीतों में यह दोनों प्रकार की संगीतात्मकता ही प्रचुरता से मिलती है। यह कहना अनुपयुक्त न

होगा कि विद्यापति के गीतों को लोक और साहित्य में जो समादर मिला उसका एक प्रमुख कारण इनकी हृदयकारी संगीतात्मकता ही है। इनके पद संगीत की अनुपम निर्झरणियों के कल-निनाद से इस प्रकार फूट पड़ते हैं, मानो स्वयं संगीत-देवी भावों की थिरकत लिये हुए अपनी स्वाभाविक एवं हृदयस्पर्शी गति से मचल रही हो। यथा-

नंदक नंदन कदम्बक तरु-तर '
धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय संकेत निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोल पठाव ।'

इन पंक्तियों में स्वर-संगीत तथा शब्द-संगीत के साथ-साथ भावों की रमणीय अधिक हुई है। यमुना-तट पर संकेत-स्थल पर बैठे हुए कृष्ण राधा की प्रतीक्षा कर रहे है। 'नंदनदन शब्द से कृष्ण के मदोन्मत्त गौवन्न, गौवन में मेचलती हुई अपरिमित सुनहली काभनाई और देह- गठन की कोमलता ब्वानित होती है। 'बिरे-चिरे' में कृष्ण की राधा से मिलने की आतुरता और गाथ ही समाज-भीरुता मुखरित होती है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कृष्ण की आतुरता उन्हें बंशी के द्वारा राधा को शिघ्र बुलाने के लिए विवश कर रही है, परन्तु समाज के बन्धन उस आतुरता का गला दबोच रहे हों। 'बेरि-बेरि बोल पठाव' में तो यह आतुरता अपनी चरम सीमा पर पहुंची हुई दिखाई देती है।

विद्यापति की संगीतात्मकता की एक विशेषता यह भी है कि वह मन की स्थिति का साकार वित्रण करके भावों को अत्यन्त प्राह्य बना देती है; यथा- 'लोचन आए फेधाए हरि नहिं आएल रे।'

कृष्ण विदेश चले गये हैं। राधा उनके वियोग में विरह-संतप्त है। अपनी विरह-वेदना का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कहती है कि प्रिय का पथ देखते-देखते आँखे सूज गई है, पर वह निष्ठुर नहीं आया। इस प्रसंग में प्रयुक्त 'रे' शब्द की ध्वनि से तो उस विरहिणी के अन्तरतम की सारी अपार एवं ममांतिक पीड़ा ही साकार हो गई है।

प्रियतम की आने की अवधि लिखते-लिखते जिसके नाखून बिस-घिसकर नष्ट हो गये हो, प्रिय-पथ देखते-देखते जिसकी आँखे अंधी हो गई हों, उस विरहिणी की व्यथा से उसकी वाणी का अशक्त एवं खण्डित हो जाना भी स्वाभाविक है। उपर्युक्त पंक्तियों का संगीत भी धारा- प्रवाह में न होकर छोटे-छोटे वाक्यों में खण्डित है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे विरहिणी अपनो शक्ति बटोरकर अपनी मर्म-व्यथा कहने के लिए उद्यत हुई हो, किन्तु सिसकियों ने उसके वाक्यो को टुकड़े-टुकड़े कर दिया हो।

कहने का अभिप्राय यह है कि विद्यापति का संगीत केवल संगीत नहीं वरन् भावों का उद्द्बोधक एवं अभिव्यंजक भी है।

* आत्माभिव्यक्ति अथवा वैयक्तिकता- आत्माभिव्यक्ति अथवा वैयक्तिकता गीतिकाव्य का दूसरा तत्व है। यही तत्त्व गीतिकाव्य को प्रबन्धकाव्य की परिधि से बाहर रखता है। गीतिकाव्य में आत्मा या वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति दो प्रकार से होती है-एक, जब कवि अपने विषय का प्रत्यक्ष रूप से वर्णन करता है, दो, जब कवि अपने विषय को परोक्ष रूप में प्रस्तुत करता है। विद्यापति के गीतों में आत्मा या वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति दूसरे प्रकार से हुई है, अर्थात विद्यापति ने अपने विषय को परोक्ष रूप से अभिव्यक्त किया है। सम्पूर्ण विद्यापति पदावली के भाव एक ही व्यक्ति के विभिन्न भावों की लड़ियाँ हैं। राधा और कृष्ण के मधुर मिलन में स्वयं कवि का आत्ममुख मुखरित है। राधा के सौन्दर्य-वर्णन में कवि की सौन्दर्य-भावना जिस प्रकार बलबती हो उठीं है; उसे देखकर यह सम्भावना ही नहीं की जा सकती कि कवि किसी तटस्थ दर्शक की भाँति केवल कल्पना के कगार पर खड़ा होकर काव्य शास्त्रीय एवं परम्परागत होते हुए भी कवि के हृदय की आसक्ति से ओत-प्रोत है। सौन्दर्य-विधान में यत्र-तत्र कवि के मानव की विवशता और भावों की उदात्त भावना भी फूट पड़ी है-

'जहाँ-जहाँ पग-जुग थरई। तहि-तहि तरोरुह झरई।
जहाँ-जहाँ झलकत अंग। । तहिं-तहिं बिजुरी-तरंग।।'

बिजुरी-विरह-वर्णन में तो लगता है जैसे कवि अपनी ही पीड़ा से राधा और कृष्ण के माध्यम से चीख रहा है। विरह और संयोग के इन स्वाभाविक चित्रणों को देखकर कुछ आलोचक तो यहाँ तक कह देते हैं कि विद्यापति की अनुरक्ति लखिमा देवी में थी और यह उसी की परिणति है, यद्यपि तर्कपूर्ण प्रमाणों से उस कथन की पुष्टि नहीं होती। चाहे जो हो, विद्यापति के श्रृंगार- वर्णन में केवल परम्पराओं का पालन नहीं हृदम की मार्मिक अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति है। विरह के क्षणों में जहाँ अनेक बातें मानस के कगारों से टकराती है, वहाँ इस निराशापूर्ण किन्तु काम-भावना से सम्पृक्त भाव का आ जाना भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक तथ्यपूर्ण है- यौवन के बीत जाने पर यदि प्रियतम लौटे तो फिर यौवन और उनके

आगमन की सार्थकता ही क्या रही ? कतिपय आलोचकों को इसमें भले ही माँसलता दिखाई दे, किन्तु इस बनत की तथ्यात्मकता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। यह उस हृदय की अभिव्यक्ति है जो अपनी कामना की पूर्ति में तो विवश है, पर जो उसकी अभिव्यक्ति में जगत् के बन्धन और शास्त्र श्री परम्पराओं की चिन्ता नहीं करता। सचमुच ऐसे पदों में कवि का व्यक्तित्व अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष हो गया है और कवि मनोविज्ञान के समुचित घरातल पर प्रतिष्ठित हो गया है।

रागात्यक अनुभूति या भाव-प्रवणता रागात्मक अनुभूति या भाव-प्रवणता गीतिकाव्य का तीसरा तत्व है। गीतिकाव्य का जन्म ही अन्तर्जाला के आवेग से हुआ है। अनि है। आकुल प्राण जब इस अन्तर्जाला से झुलसने लगते हैं तो उसका शमन गीति में ही होता है। सब्दला की यह प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न कवियों में विभिन्न प्रकार की होती है। विद्यापति के गीतों में रमाएक अनुभूति प्रचुर परिणाम में निहित है। इसका अन्तर्दाह राधा के माध्यम से इस प्रकार के भावों में फूट पड़ता है-

"सुन सेज हिय सालए रे
पिया बिनु घर मोयँ आजि।
विनती करओं सहलोलिनि रे
मोहिं देश अगिहर साजि।"

प्रिय के बिना सूनी सेज प्रेमिकाओं को सदा से ही सालती चली जा रही है और इस दुख का केवल एक ही उपचार विरहिणियों के पास है- जलकर मर जाना, रागात्मक अनुभूति की यही चरम परिणिति है। प्रिय के आने की अवधि का समीप्य जितना सुखद होता है, उतना ही उद्वेलित करने वाला भी होता है। प्रिय के आगमन की अवधि ज्यों-ज्यों समीप आती चली जाती है, विरहिणी के मन हर अनेक प्रकार के भाव अंकित होते चले जाते हैं। रागात्मक अनुभूति ही मनःस्थिति की इस प्रक्रिया को सबल और सशक्त बनाती है। विद्यापति की विरहिणी नायिका की यही गनःस्थिति इन शब्दों में व्यक्त हुई है—

सखि हे ! कतहु न देखि बधाई।
काँष शरीर थी नहि मानस,
अवधि निमर भेल आई।'

रागात्मक अनुभूति के कारण ही प्रेमिका आशा-निराशा, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि विरोधी भावा में सदैव डूबती-उत्तरती रहती है। विद्यापति के गीतों में इन सभी भावों को सक्षम अभिव्यंजना हुई है।

अभिव्यंजना के आधार पर गीतों के दो भेद होते हैं- साहित्यिक या कलात्मक गीत और लोकगीत। लोकगीतों के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए फ्रांसिस बी, गूमर ने लिखा है- लोकगाथाओं अथवा लोकगीतों का महत्व केवल इसी बात में नहीं है कि उनमें कृत्रिम काव्य-भावना उपलब्ध होती है। वे परम्परा की भाषा में ही अपनी अभिव्यक्ति नहीं करते, प्रत्युत् जन समूह की वाणी द्वारा प्रकाशन करते हैं। उनमें किसी प्रकार की गोपनीयता नहीं पाई जाती है। जो वस्तु जैसी है उसका यथातथ्य रूप में वे वर्णन करते हैं। ये स्वतन्त्र हवा की भाँति ताजे हैं। वायु और सूर्य का प्रकाश उनमें खेला करता है। खुली हुई इन पंक्तियों में श्री गुमर ने लोकगीतों के जिन तथ्यों की ओर संकेत किया है वे उनकी मूलभूत विशेषताएँ हैं जो इस प्रकार हैं-

(1) लोकगीतों में अभिव्यंजना की कृत्रिमता नहीं होती, अर्थात् वे हृदय के सहज स्फुरण होते हैं। (2) लोकगीतों पर समाज का अंकुश नहीं होता, बल्कि वे विषय का यथा तथ्य वर्णन करते हैं। (3) लोक गीतों पर शास्त्रीय बन्धन नहीं होते। उनमें वायु की-सी प्राण दायिनी शक्ति और सूर्य-प्रकाश का-सा उल्लास होता है।

विद्यापति के गीतों में, चाहे वे साहित्यिक हो और चाहे लोक गीत हीं, ये सभी विशेषता सहज हो परिलक्षित होती हैं। विद्यापति के लोक गीतों में भावों के सहज स्पारण के साथ-साथ लय का भी सुन्दर विधान है। लोक की लप, लोक की घटना और लोचा की अभिव्यक्ति हुन जीनों का समन्वय विद्यापति के गीतों में सहज ही उपलब्ध है

कुंज-भवन से निकलती हुई राधा को जब कृष्ण ने रोक लिया, तब उसने अपने नारील की जो दुहाई दी है, लब की लहरियों में बहकर उसकी प्रभावोत्पादकता शतगुणी चन गई है। इस प्रकार हम देखते है कि विद्यापति के गीतों में वे सभी तत्वं सहज रूप से उपलब्ध है जो किसी सफल

गीतिकाव्य के लिए अपेक्षित होते हैं। लोक तत्व तो उनके गीतों की प्रमुख विशेषत है। इनके गीतों में लोक-तत्व और कला तरच का अपूर्व समन्वय है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इनके गीतों में एक ओर कलात्मक गीतों की साज-सज्जा और सुघड़ता के दर्शन होते है तो दूसरी ओर लोक गीतों की सरलता, स्वाभाविकता, भावमयता और स्वच्छन्दता का भी पूर्ण सम्मिश्रण मिलता है। जिस प्रकार विधात्मने राधा के मुख विद्यापति को मुख की रचना चाँद-सार सोडर की, फिर उत्त युवती ने उसे अमृत से धोकर तज्जन्य कांति से दसों दिशाओं की प्रकाशित कर दिया है, उसी प्रकार विद्यापति ने अपने गीतों में शास्त्र और लोक का सभंजन करके अपूर्व भावलोक की सृष्टि कर दी, जो अपना उपमान स्वयं ही है।

1.5 विद्यापति का काव्य-सौन्दर्य

विद्यापति का काव्य प्रेम न का काव्य है। प्रेम का मूल प्रेरक क है सौन्दर्य, उसका आश्रय है यौवन। यौवन और सौन्दर्य का समन्वित रूप ही प्रेम या रति है। रति श्रृंगार का स्थायी भाव है। विद्यापति श्रृंगारी कवि थे, अतः उन्होंने रति अथवा प्रेम के मूल प्रेरक सौन्दर्य का पूर्ण और उत्कृष्ट निरुपण किया। सौन्दर्य इन्द्रियों के माध्यम से अन्तस में उतर कर उसे प्रेमाभिभूत करता है, अतः सौन्दर्य की दो प्रधाव-भूमियाँ हैं-बाहरी और भीतरी। सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति करने वाला प्रत्येक कवि भीतरी और बाहरी दोनों ही प्रकार का सौन्दर्य-चित्रण करता है। विद्यापति में हमें सौन्दर्य चित्रण के दोनों ही रूप मिलते हैं। वे बाहरी सौन्दर्य के चित्रण में जितने कुशल हैं, भीतरी सौन्दर्य अंकन में भी उतने ही निपुण। शारीरिक अवस्था से मानसिक अवस्था जैसा देह होगा वैसा ही का गम्भीर और अटूट सम्बन्ध है। मन। विद्यापति ने देह और मन दोनों ही के सौन्दर्य का चित्रण किया है।

बाहरी सौन्दर्य चित्रण या शारीरिक रूप-चित्रण के अनेक प्रकार हैं-नख-शिख वर्णन अर्थात शारीरिक अवयवों का पृथक् पृथक वर्णन, चेष्टाओं का वर्णन, वेशभूषा का वर्णन, हाव-भाव, क्रिया- प्रतिक्रिया का वर्णन। "रूप सौंदर्य चित्रण के विविध प्रकार विद्यापति की पदावली में विद्यमान है। विद्यापति ने राधा और कृष्ण दोनों का ही रूप सौन्दर्य चित्रित किया है किन्तु राधा का विशेष राधा को कवि ने अपरूप, अपूर्व और अभिरामा आदि कहा है। 'गिरा अनयन भयन बिनु बानी' के अनुसार गाथा का रूपांकन संभव ही नहीं। सौन्दर्यांकन में अपने आपको असमर्थ कहना ही माना सौन्दर्य की अपूर्वता को स्वीकार करना है। कवि कहीं तो उसकी रूप छटा की अनुभूति के सम्बन्ध में पूछने एक की मनाही करता है 'पुछहु जनु' कहीं स्वयं असमर्थ हो जाता है- 'जत देखल कहए न पाबिअ' कभी इतना अभिभूत हो जाता है कि आरे 'की कहब' आदि शब्दों का सहारा लेता है। विद्यापति की राधा त्रिभुवन विजयी माला' है।" विद्यापति की सौन्दर्य भावना को निम्नांकित शीर्षकों से समझा- समझाया जा सकता है-चिर नवीन सौन्दर्य अपरूप सौन्दर्य, नख-शिख सौन्दर्य, निश्चल और अकृत्रिम सौन्दर्य, सूक्ष्म और मानसिक सौन्दर्य। संभोगजनित सौन्दर्य, मानवेतर प्रकृति-सौंदर्य, प्रेम वर्णन में सौन्दर्य, पारस सौन्दर्य और मारक एवं प्रभावी सौंदर्य।

1. चिर नबीन सौन्दर्य-विद्यापति यौवन और प्रेम के कवि थे। उनका यौवन व प्रेम चिर नवीन है। इसी में उन्हें जिस सौन्दर्य की तलाश रही है वह भी चिर नवीन रहा है। उनकी ये पंक्तियाँ इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है-

कि अरे! नव यौवन अभिरामा
जत दखल तत अहए न परिअ
छओ अनुपम एक ठामा ।।

'विद्यापत्ति' के चिर नवीन सौन्दर्य के सम्बन्ध से प्रो. विद्यानारायण ठाकुर ने लिखा है कि "कवि के नयन सौदर्य पारखी कणु-वीक्ष्ण यन्त्र (माइक्रोस्कोप) हैं। छोटे से छोटे चित्र सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन उनकी आँखों में वर्णनीय सुन्दर रूप लेकर उभर आते हैं और ऐसी रसीली भावाभिव्यक्ति के सूक्ष्म अंकन में विद्यापति अत्यन्त सिद्धहस्त है।" सौन्दर्य की यह चितनूधनता कालिदास में भी मिलती है- "क्षणे-क्षणे यन्नयतामुपैति तदेवरूप रमणीयतायाः" बिहारी की नायिका का सौन्दर्य भी ऐसा ही रहा है और मतिराम की नायिका तो "ज्यों-ज्यों निहारिये नेह है नैना। त्यों त्यों खरी निकरै सौ निकाई" का प्रतिरूप ही है। विद्यापति में भी नवीनता के प्रति आसक्ति है। उनकी सौदर्य-भावना को स्पष्ट करने वाले पद सन्दर्भ में विशेषोल्लेख्य हैं-

2. अप रूप सौन्दर्य-विद्यापति का सौन्दर्य 'अपरूप' है। उसमें अद्भुत अपूर्वता है। वह कोई साधारण सौन्दर्य नहीं है। उसमें दिव्यता, नवीनता व आक्रामकता है और वह पार।-रूप है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने उनके सौन्दर्य-बोध को स्पष्ट करते हुए ठीक ही लिखा है- "विधापति वस्तुतः सौन्दर्य के कवि हैं। सौन्दर्य उनका दर्शन है, सौन्दर्य उनकी जीवन दृष्टि है। इत्त सौन्दर्य को उन्होंने नाना रूपों में देखा था। उसे कुशल मणिकार की तरह उन्होंने चुना था, सजाधा-सँवारा था और आलोकिक किया था। सौन्दर्य मन को कितना भाव विह्वल और एकोन्मुख कर देता है इसे विद्यापति

जानते थे। इसलिए उन्होंने प्रायः : 'अपरूप' या सौन्दर्य की अपूर्वता को एक सजीव पदार्थ के रूप में ग्रहण किया है। जब वे राधा या कृष्ण के रूप का वर्णन करते हैं तो सचेष्ट रूप से इतना कहना नहीं भूलते कि इस अपरूप ने सम्पूर्ण त्रिभुवन को विजित कर लिया है। यह 'अपरूप' किसी के भी चित को चंचल कर देता है।"

3. नख-शिख सौन्दर्य-विद्यापति के सौन्दर्य विधान में नख से शिख तक के सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित के शब्दों में "विद्यापति के रूप-स्वरूप बित्रण की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी शरीर-विज्ञान और मनो-विज्ञान को सूक्ष्मातिसूक्ष्म जानकारी। साधारणतया नख-शिख या शिख-नख वर्णन में कवि अंग-उपांग का क्रमिक वर्णन किन्तु विद्यापति इसे अस्वाभाविक मानते हैं। करते है, किन्तु वि । वे अंगों का क्रमिक वर्णन नहीं करते हैं, वरन् अपने वर्णन में एक मनोवैज्ञानिक क्रम रखते हैं। नारी शरीर में सौन्दर्य के श्रेष्ठ उपादान के रूप में स्तन (वक्ष), नेत्र, भौहे, त्रिवली-रोमावली, मुख ललाट, जंघायें और कटि व गीत को विशेष महत्व प्राप्त है। विद्यापति ने इन्हीं तब का वर्णन पूरे मनोयोग से किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति स्तनों को सर्वाधिक महत्व देते हैं। यही कारण है कि उनके नख-शिय सौन्दर्य का पहला पद ही 'पीन पयोधरों' के वर्णन से प्रारम्भ होता पीन पयोधर दूबरि गता, मेरु उपजल कनक लता "ये पीन पयोधर सुमेरु पर्वत ही नहीं, बिना नाल के प्रफुल्ल कमल हैं। कहीं ये मुखा न जाएं, इसलिए मणिमय हार सुरसरि की धार बनकर उनको सींचता रहता है। विद्यापति ने स्तनों के जार्णन के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित की है। उन्होंने उन्हें 'कनक शंभु' तक कह दिया है. व कनक शंभु भी ऐसे हैं जो सुरसरि की धारा से पूजित है। "चाहे प्रेम का प्रसंग हो, चाहे मिलम चाहे अभिसार हो, चाहे विरह। विद्यापति ने सर्वत्र सौन्दर्य के उत्तुंग शिखर इन कनक सम्मुओं को ही प्राथमिकता दी है। कृष्ण के आकर्षण और प्रेम का यही केन्द्र बिन्दु रहे हैं। मथुरा जाते समय भी कृष्ण उन्हें साक्षी बनाकर लौट आने का वचन दे गए थे।" इसी से राधा कृष्ण की वापिसी के सम्बन्ध में आश्वस्त हैं। ररादा कहती है-

"कुच-जुग 1 शंभु परसि क्रर बोललन्हि ते परतीति मोहि भेला।" ठीक ही कहा है कि- "विद्यापति मुख का वर्णन करने के बाद डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने ठीक

अघर कण्ठ और चिबुक की बात छोड़कर सीधे कुचों का वर्णन करने लगते हैं। । कुचों की उपमा देने में तो विद्यापति बेजोड़ हैं। जाने कितने प्रकार की उपमाएँ खटाखट उपस्थित होती चली जातो हैं। यह इनके नख-शिख वर्णन का सबसे आकर्षक और निर्बल पक्ष है।" 4. निश्छल और अकृत्रिम सौन्दर्य बोध-विद्यापति का सौन्दर्य बोध जहाँ एक ओर अपरुप और चिर नवीन है तो दूसरी ओर वह निश्छल, अकृत्रिम और सहज भी है। विद्यापति के पदों में ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ सौन्दर्यगत सहजता देखी जा सकती है। यह सौन्दर्य वनावटीपन से दूर है। इसमें प्रभावित करने की अपूर्व क्षमता है। कतिपय उदाहरणों से इस मर्मान्तक प्रभाव डालने वाले सौदर्य को समझा जा सकता है-

सहजहिं आनन सुन्दर रे, भौह सुरेखसि आँखि।
पंकज मधु पिवि मधुकर रे, उड़ए पसारिल पॉखि ।।
ततहि घाओल दूहु लोचन रे, जतहिं गेल वरनारि।
आसा लुबुधल न तेजए रे, कृपनक पाधु भिखारि ।।

नायिका का केवल आनन ही सुन्दर नहीं है उसकी भौहों की सुरेखिता ने मानो सोने में सुगंधि डालने का कार्य किया है। फलतः नायिका का सौन्दर्य चुम्बकीय सौन्दर्य में बदल गया है। कवि की ये पंक्तियाँ देखिये-

सहज सुन्दर गोर कलेबर पीन पयोधर सिरी।
कनक लता अति विपरीत फरल युगल गिरी।।

नायिका की देह में विपरीत बात हुई है। उसकी कनक बाली (देह) में दो पर्वत (कुच द्वय) ठग आये हैं और मजे की बात यह है कि कवि उन्हें बखूबी खुली आँखों और रसिक मन से देख गया है।

5. सूक्ष्म और मानसिक सौन्दर्य-विद्यापति के सौन्दर्य बोध में मांसलता जरूर है और खूब है, किन्तु उसकी सूक्ष्मता और मानसिक स्थिति से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है। बास्तव में विद्यापति रूप सौन्दर्य के अद्भुत चित्रकार हैं। उनकी सौन्दर्य भावना का प्रभाव सूर, जायसी और बिहार सभी पर देखा जा सकता है। यही कारण है कि इन सब कवियों ने विद्यापति को सौन्दर्य-दृष्टि को चुराया है तभी तो इनके सौन्दर्य वर्णनों पर विद्यापति की छाया-दृष्टि स्पष्टतः देखी जा सकती है। विद्यापति के सौन्दर्य को 'अपरूप' मान लेना ही इस बात का प्रमाण है कि उसमे मानसिक और सूक्ष्म सौन्दर्य की ही प्रधानता है। प्रेमिका का मानसिक प्रेमभाव और हृदय को सुकुमारता का चित्र भौतिक न होकर अभौतिक और अद्भुत

दिव्यता से युक्त है। प्रो. विद्यानारायण ठाकुर ने विद्यापति के सौन्दर्य की एक विशेषता 'छवि-गृह दीप-शिखा जनु वरई' बतलाई है। यह छवि-गृह में दीप-शिखा की तरह प्रज्वलित सौन्दर्य यही सूक्ष्म सौन्दर्य है। उन्होंने इस विषय में लिखा है- "विद्यापति न सौन्दर्य को मात्र देखा-परखा ही नहीं, निजी अनुभव भी किया है। • इसलिये उनका सौन्दर्य साधारण होकर भी असाधारण है और चिर परिचित होकर भी चिर नूतन है। साहचर्य से उत्पन्न प्रेम भी चिर नूतन ही बना रहता है। इसी चिर नूतन सौन्दर्य को 'अपरूप' नाम देकर गौरवान्वित किया या है।" इसलिए वे सौन्दर्य का निर्माण कर सके। उन्होंने कीट्स के शाश्वत सत्य व मंगलमय सौन्दर्य की नई व्याख्या प्रस्तुत की है। विद्यापति का सौन्दर्य सूक्ष्म से सूक्ष्मतर में सूक्ष्मतम होता गया है।

6. संभोग श्रृंगार का सौन्दर्य- विद्यापति कालिदास की तरह नूतन और अभिनव सौन्दर्य के पक्षपाती तो थे, किन्तु संभोगजनित सौन्दर्य के क्षेत्र में कालिदास से काफी आगे थे। उन्होंने अनावृत जाँघों की सुन्दरता के अनेक मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं और इस प्रकार उन्होंने संभोग- सौन्दर्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। विपरीत रति के प्रसंग में वे कहते हैं- "तिल एक जंघन रव करइत होयत शयनक भंगे" विद्यापति ने सुरतान्त से उत्पन्न अस्त व्यस्तता और सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है-

सुरत समावि सूतल वर नागर पानि पयोधर आपी।
कनक सभु जनि पूजि पुअरी धरए सरोरुय झांपी।।

पारस-सौन्दर्य-विद्यापति अपरूप के कबि हैं। अतः उनका सौन्दर्य अपनी समस्त विशेषताओं के साथ पारस-रूप हो गया है। वह यह सौन्दर्य है जो किसी भी साधारण-सौंदर्य को स्वर्णिमता प्रदान कर देता है। इस पारस-रूप सौंदर्य का प्रभाव विश्व-व्यापी है उसके पारस- रूप का प्रभाव इतना सघन है कि नायिका जहाँ-जहाँ पैर रखती है वहीं वहीं पर अमृत-रस की वर्षा होने लगती है। वास्तव में विद्यापति की नायिका का यह पारस-सौंदर्य चुम्बकीय शक्ति से मुक्त है। तभी तो सभी इसकी ओर खिंचे चले आते हैं। विद्यापति की पदावली से इस सौंदर्य के उदाहरण स्वरूप इन पंक्तियों को लिया जा सकता है-

मत 'करे जहाँ उड़ि जाइअ, जहाँ हरि पाइअ रे।
प्रेम परस मनि जानि, अनि उर लाइ अरे ।।

अथवा

जहँ-जहँ नयन-विकास तहिं तहिं कमल प्रकास।
जहँ-जहँ कुटिल कटाख, ततहि मदने सर लाख।
जहँ लहु हास संचार, तहँ-तहँ अमिय विकार।

जायसी ने सौ वर्ष बाद जिस पारस रूप का चित्रण नयन जो देखा कँवल भी निरमल 'नीक सरीर' आदि कहकर किया, उसे विद्यापति के काव्य में पहले ही आकार प्राप्त हो गया था। विद्यापति की राधा वह अपूर्ण मणि है जिसकी प्रभा से सभी पदार्थ प्रकाशित होते हैं।

जहा-जहा पग-पग थरइ, तहँ-तहँ सरोरुह भरई। जहा-जहा झलकत अंग तहि तँहि विजुरी तरंग।।

"एक बार थोड़ी देर के लिए उस गौरी के जिस अपरूप को देखा, उसी से तीनों भुवन भने मालूम पड़ते हैं। उसके मधुर हास का एक कण जैसे सारी पृथ्वी पर अमृत बिखेर देता है। यह राधा का पारस-रूप जिसे विद्यापति ने सम्पूर्ण श्रृद्धा और हृदय की पवित्रता से निर्मित किया है इसमें जो लोग श्रृंगार का पार्थिव रूप चित्रण मात्र खोजना चाहें, उन्हें कौन रोक सकता है ? किन्छ विद्यापति का यह वर्णन राधा के सौन्दर्य की दिव्यता का प्रकाशक भी है, इसमें संदेह नहीं है।' 7. गानवेतर प्रकृति-सौंदर्य-मानव प्रकृति के सौन्दर्य से तो विद्यापति अभिभूत थे साथ ही प्रकृति-सौन्दर्य की छत भी विद्यापति के काव्य में पर्याप्त मात्रा में ली है। "बसन् वर्णन के लम्बे क्रम में समासोक्ति में बसन्त-वर्णन बसन्त का मानवीकरण, बसन्त को बेतर सम्पन्न मानना एवं मधुमय बसंत के मार की मधुमय कल्पना उनके मानवेतर प्रकृति-प्रेम परिचायक है।" विद्यापति के काव्य में षड्-ऋतु वर्णन और बारहमासे का वर्णन भी मिलता है ध्यान देने की बात यह है कि विद्यापति के प्रकृति-सौन्दर्य को प्रधानताः उद्दीपन रूप में देखा ज सकता है। निष्कर्ष-कहने की आवश्यकता नहीं कि विद्यापति के सौन्दर्य-बोध में पर्याप्त ताजा स्फूर्ति और रमणीयता है, वास्तव में विद्यापति सौन्दर्य का कवि है। उसका सौन्दर्य अपूर्व है, कि नवीन है, चिर आकर्षक है। वह पार रूप है। । एक शब्द में विद्यापति का सौन्दर्य ही उनके काय का सर्वस्व है।

1.6 विद्यापति-भक्त या श्रृंगारी कवि ?

'विजयति भक्त कवि है अथवा श्रृंगारी?' यह प्रश्न भी बहु-चर्चित है। इस विवाद का श्रीगणेश डॉ. क्रियर्सन की 'मैथिली कैस्टोपेथी' की की भूमिका का से हुआ है। राधा और कृष्ण के ब्रह्मत्व एवं अलौकिकत्व का प्रतिपादन करते हुए डॉ. प्रियर्सन ने लिखा है-

राधा और कृष्ण वस्तुतः प्रतीक है। राधा जीवात्मा का प्रतीक है और कृष्ण परमात्मा का। जीवात्य परमात्मा से मिलने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। यह प्रयत्न तब तक अबाध रूप से चलत रहता है जब दक जीवात्मा परमात्मा में लय होकर सायुज्य लाभ नहीं कर लेता। जीवात्मा अपने सांसारिक प्रपंचों एवं माया के पाशों में इस प्रकार आबद्ध है कि वह अपनी आंतरिक प्रेरणा से परभात्मा को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता। इसीलिए उसे ईश्वरोन्मुख करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। विद्यापति के काव्य में दूती इसी गुरु का प्रतीक है। यह दूती जीवात्मा या प्रेमिका को निरन्तर परमात्मा से मिलने के लिए प्रेरित करती रहती है। इतना ही नहीं, इस अभिसार या प्रेम-मिलन के प्रत्येक कार्य में वह उसकी सहायता भी करती है।"

इसी मंतव्य की पुष्टि करते हुए श्री नगेन्द्रनाथ ने सन् 1935 ई. में सिनेट हॉल, पटना विश्वविद्यालय में विद्यापति पर भाषण देते हुए कहा था कि विद्यापति की राधा-कृष्ण-पदावली का सारांश यही है कि जीवात्मा-परमात्मा को खोज रही है और एकांत स्थान में उससे मिलने के लिए आतुर है। संसार ईश्वर-प्रेम से परिचित नहीं है, इसलिए वह भक्त के मार्ग में अड़चन डालता है। यह देखकर ईश्वरान्वेषी भक्त संसार छोड़कर शांतिमय वन में जाकर एकांत स्थान में निवास करता है। इसी विषय का वर्णन विद्यापति ने दूसरे शब्दों में किया है-मूसलाधार वृष्टि हो रही है और भयानक शब्द करता हुआ। गिर रहा है, किन्तु नायिका को जरा भी भय नहीं। बह साँपों को पैरों से कुचलती हुई अपने प्रेमी श्रीकृष्ण के पास पहुँच जाती है-

"विद्यापति का काव्य गुलाबों का काव्य है, चारों ओर गुलाबों से परिवृत यह आनन्द निकुंज है। यहाँ हमें स्वर्ग का दर्शन होता है। वृन्दावन की श्रीकृष्ण लीला शाश्वत त हैं वृन्दावन मनुष्य का हृदय-प्रदेश है। यमुना का किनारा इस संसार का प्रतीक है जो राधा और कृष्ण अर्थात् जीव और ईश्वर की लीला-भूमि है। वंशी की ध्वनि अदृश्य-सत्ता का स्वर है, जीव को परमात्मा की ओर अग्रसर होने का आह्वान है।"

डॉ. जनार्दन मिश्र ने भी विद्यापति के काव्य को प्रतीक-काव्य और विद्यापति को भक्त- कवि प्रतिपादन करते हुए लिखा है- "

विद्यापति के समय में रहस्यवाद का मत जोरों पर था। उसके प्रभाव से बचकर निकलना और किसी अधिक निष्कंटक मार्ग का अवलम्बन करना इन्हें शायद अभीष्ट न था, अथवा अभीष्ट होने पर भी तुलसीदास की तरह अपने वातावरण के विरुद्ध जाने की शक्ति इन में न थी। इसीलिए स्त्री और पुरुष के रूप में जीवात्मा और परमात्मा की उपासना की जो धारा उमड़ रही थी; उसमें इन्होंने अपने को बहा दिया।" बाबू ब्रजनन्दनसहाय और डॉ. श्यामसुन्दरदास विद्यापति के पदों को वैष्णव भक्ति के विचारों और भावनाओं का प्रतीक मानते हैं। डॉ. श्यामसुन्दरदास ने विद्यापति पर निम्बार्क और विष्णुस्वामी का गम्भीर प्रभाव स्वीकार किया है। अपने इसी मन्तव्य का उल्लेख उन्होंने इन शब्दों में किया है- "विद्यापति पर माध्य-सम्प्रदाय का ही ऋण नहीं है, उन्होंने विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य के मतों को भी ग्रहण किया है। न तो भागवत पुराण में और न माध्य मत में ही राधा का उल्लेख किया है। कृष्ण के साथ विहार करने वाली अनेक गोपियों में राधा भी हो सकती है, पर कृष्ण की चिर-प्रेयसि के रूप में वह नहीं देख पड़ती। उन्हें यह रूप विष्णुस्वामी तथा निम्बार्क सम्प्रदायों में ही पहले-पहल प्राप्त हुआ था। विष्णु स्वामी मध्याचार्य की ही भाँति द्वैतवादी थे। भक्तमाल के अनुसार, वे प्रसिद्ध मराठा भक्त ज्ञानेश्वर के गुरु और शिक्षक थे। राधा और कृष्ण की सम्मिलित उपासना इनकी भक्ति का नियम था। विष्णुस्वामी के ही समकारक निम्बार्क नामक तैलंग ब्राह्मण का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने वृन्दावन में निवास कर गोपालकृष्ण की भक्ति की थी। निम्बार्क ने विष्णुस्वामी से भी अधिक दृढ़ता के साथ राधा की प्रतिष्ठा की और उन्हें अपने प्रियतम कृष्ण के साथ गोलोक में निवास करने बाली कहा। राधा का यही चरम उत्कर्ष है विद्यापति ने राधा और कृष्ण की प्रेमलीला का जो विशद वर्णन किया है, उस पर विष्णुस्वामी तथा निम्बाक मतों का प्रभाव प्रत्यक्ष है।"

इन विद्वानों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वान एफ. ई. किअय (F. E. Keay) ने भी विद्यापति के काव्य को प्रतीक काव्य माना है। इन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम को आत्मा और ब्रह्म का सम्बन्ध स्वीकार किया है- इस धारा की प्रतिक्रियास्वरूप इसके विरोध में यह स्वर भी उठा कि विद्यापति भक्त-कवि नहीं, श्रृंगारी कवि हैं। इस स्वर को शक्ति देने वाले विद्वानों में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, विनयकुमार सरकार, डॉ. सुभद्र झा, पं. शिवनन्दन ठाकुर और डॉ. रामकुमार वर्मा प्रभृति विद्वान् उल्लेखनीय हैं। विद्यापति को श्रृंगारी कवि मानते हुए महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने 'कीर्तिलता' की प्रस्तावना में लिखा है- "विद्यापति ने कीर्तन का गान नहीं लिखा है, तो भी विद्यापति के पद कीर्तन में मिला लिये गए हैं। विद्यापति वैष्णव नहीं थे, पंचदेवोपासक थे। विद्यापति सौंदर्य के कबि थे, उन्होंने सौंदर्य की सुष्टि की है। आदि-रस सौंदर्य की खान है। उस रस में विद्यापति ने अनेक गाने लिखे। आदि-रस में राधा-कृष्ण का प्रेम-वर्णन बड़ा महत्वपूर्ण विषय है। इसलिए विद्यापति ने उसका यथेष्ठ रूप से व्यवहार किया है।

अनेक जगह राधा-कृष्ण का नाम यों ही दे दिया गया है। श्रृंगार-रस ही उसका प्रधान लक्ष्य है। श्री विनयकुमार सरकार भी विद्यापति को भक्त अथवा रहस्यवादी कवि नहीं मानते। इनका मन्तव्य है कि विद्यापति के काव्य में ऐन्द्रिय भावनाओं का तथा मानवीय सम्बन्धों का जो सुन्दर सम्मिश्रण है, उसके आधार पर इन्हें असन्दिग्ध शब्दों में श्रृंगारी कवि मानना उचित है-

"ऐन्द्रिक भावना का मानवीय सम्बन्धों के बीच इतना सुन्दर सम्मिश्रण और इतने ऊँचे स्तर का चित्रण भारतीय साहित्य में विद्यापति के अतिरिक्त और किसी ने प्रस्तुत नहीं किया है।" डॉ. सुभद्र झा ने भी विद्यापति को श्रृंगारिक कवि ही स्वीकार किया है। विद्यापति को भक्त मानने वाले विद्वानों ने इनके काव्य में जिस करते हुए डॉ. सुभद्र झा ने लिखा है- प्रतीक योजना का उल्लेख किया है, उसका खण्डन "भारतीय प्रतीकवादी (रहस्यवादी) कवियों की कविताओं में; जैसे-जायसी गा कबीर के काव्य में जीवात्मा को परमात्मा से मिलने के लिए प्रयत्नशील दिखाया जाता है। परमात्मा स्वतः एक परिपूर्ण सत्ता होने के कारण निरपेक्ष है और यह न तो जीवात्मा से मिलने के लिए इच्छुक होता है और न कोई प्रस्ताव करता है। कबीर का साई या जायसी की 'पद्मावती' जो ग्रा के प्रतीक है 'बहुरिया' या 'रत्नसेन' के लिए आकांक्षा व्यक्त नहीं करते।"

पं. शिवनन्दन ठाकुर ने विद्यापति को श्रृंगारी कवि प्रमाणित करने के लिए जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, उनका सारांश यह है- (1) उस दार्शनिक युग में किसी विद्वान् के किसी ग्रन्थ में पति के रूप में ईश्वर की उपासना का समर्थन या समालोचना नहीं है। उदना की कथा की तरह किवंदती के रूप में भी यह प्रसिद्ध नहीं है। (2) तांत्रिक उपासना की तरह इस उपासना का थोड़ा भी अनुकरण मिथिला में नहीं पाया जाता। (३) विद्यापति या अन्य किसी मैथिल कवि की रचना में पति के रूप में ईश्वर की उपासना की और संकेत नहीं पाया जाता। (4) विद्यापति की पदावली श्रृंगार रस-प्रधान आर्या सप्तशती आदि ग्रन्थों के आधार पर रची गई है। (5) विवाह के अवसर पर गृहस्थाश्रम में नव- प्रविष्ट स्नातक के कर्कश तर्क-शास्त्र के अध्ययन से कठोर और मुग्धा के मुग्ध हृदय से अपरिचित इदम पर गीत के रूप में रसमय श्रृंगार रस की शिक्षा द्वारा उसका स्थायीभाव उत्पन्न करने के लिए ही पदावली की रचना हुई थी। यही उसका प्रधान उद्देश्य है। (6) पूजा के अवसर पर विद्यापति के पदों का गान मिथिला में नहीं होता। (7) विद्यापति के प्रथम काव्य 'कीर्तिलता' में वेश्याओं तथा वीरांगनाओं का श्रृंगार-रस मय विशद वर्णन है। (8) नायक के रूप में कृष्ण का और नायिका के रूप में राधा का वर्णन प्रथम शताब्दी की पुस्तक 'गाथासप्तशती' में भी पाया जाता है। (9) विद्यापति के पदों को पढ़कर या सुनकर चैतन्यदेव महाप्रभु के मूच्छित होने का कारण केवल राधा-कृष्ण के नाम ही है। (10) कीर्तन की उत्पत्ति विद्यापति के 200 वर्षों के बाद हुई, इसलिए कीर्तन के उद्देश्य से विद्यापति ने अपने पदों की रचना नहीं की थी। (11) विद्यापति की मृत्यु के बाद सूफीमत की प्रौढ़ता मिली। रहस्यवादमय (प्रेममार्गी शाखा के) ग्रन्थों की रचना का प्रारम्भ संवत् 1558 वि. में हुआ। मुसलमानों के कट्टर शत्रु राजा शिवसिंह के घनिष्ठ मित्र होने के कारण और मिथिला में किसी आर्थिका क्रान्ति के प्रभाव नहीं पड़ने के कारण विद्यापति सूफीमत से प्रभावित हुए होंगे, यह कथन बिल्कुल विश्वास के योग्य नहीं है। (12) रहस्यवादी ग्रन्थों में यह प्रथा है कि ग्रन्थ के किसी अंश में रहस्य का उद्घाटन रहता है, जैसे कबीर, जायसी आदि के ग्रन्थों में है। विद्यापति के ग्रन्थों में इस प्रकार का उद्घाटन कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता और न इनके ग्रन्थों में वे विशेषताएँ मिलती है जी सूफीग्रन्थों में पाई जाती हैं। (13) विद्यापति के ग्रन्थों की रचना का क्रम भी इन्हें श्रृंगारी ही सिद्ध करता है। शिवनन्दन ठाकुर के ये तर्क काफी मान्य हो सकते हैं, पर पूर्ण मान्य नहीं। सम्भवतः ऐसे ही तर्कों से प्रभावित होकर डॉ रामकुमार वर्मा ने भी विद्यापति को शुद्ध श्रृंगारी कवि बताते हुए लिखा है- "विद्यापति के इस बड़ा संसार में भगवत भजन कहाँ ? इस वयः संधि में ईश्वर से संधि कहाँ ? सद्य स्नाता में ईश्वर से नाता कहाँ ? अभिसार में भक्ति का सार कहाँ ? उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नहीं। उससे हृदय मतवाला हो सकता है, शांत नहीं हम इन भावों में आत्मविस्मृत हो सकते हैं, इसमें जागृति नहीं आ सकती। विद्यापति ते का भक्त हुदय उनकी वासनामयी भावकुंज झटिकाओं में खो गया है। -संसार र के सौन्दर्य में इतने विभोर हो गए हैं कि उनकी दृष्टि और किसी तरफ जाती ही नहीं।"

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट, है कि विद्यापति को भक्त कवि मानने वाले आचार्यों के तर्क जितने सबल है, उतने ही सबल तर्क उस मंतव्य का विरोध करने वालों के हैं। दोनों वर्गों के तकों की सबलता का दुष्परिणाम यही है कि इस विषय में-विद्यापति भक्त कवि है या श्रृंगारी ?- अभी तक कोई निर्विवाद मत स्थिर नहीं हो सका है। पर अधिकांश विद्वान् इन्हें श्रृंगारी कवि मानने के ही पक्ष में हैं। उपर्युक्त दोनों वर्ग विद्यापति के काव्य को ही मुख्यतः आधार बनाकर अपने तकों को प्रस्तुत करते हैं। तत्कालीन जनता या परवर्ती जनता विद्यापति के विषय में किस दृष्टि से सोचती थी, इसका उक्त दोनों वर्गों के विद्वानों में से किसी ने भी विचार नहीं किया। मैं समझता हूँ कि यह दिशा भी बहुत महत्वपूर्ण है और किसी कवि के समादर को भी, जो उसे जनता से मिला है, उसके स्वरूप का मानदण्ड स्वीकार कर लेना चाहिए। किंवदन्तिों में जनता के मन्तव्य निहित होते हैं। विद्यापति के विषय में जो किंवदन्तियाँ प्रचलित हुई। उनसे स्पष्ट हो जाता है कि जनता में विद्यापति को जो समादर मिला, वह भक्त कवि के रूप में

ही मिला, श्रृंगारी कवि के रूप में नहीं: क्योकि भक्त-प्रवर तुलसीदास और सूरदास के विषय में भी ऐसी ही अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित है। किसी भी श्रृंगारी कवि के विषय में अभी तक ऐसी किंवदन्तियाँ सुनने में नहीं आई है। यदि इन किंवदन्तियों के आधार पर विद्यापति के काव्य के स्वरूप का निर्णय किया जाये तो वे भक्त कवि ही सिद्ध होते हैं, श्रृंगारी नहीं।

1.7 विद्यापति की काव्य भाषा

विद्यापति की पदावली की भाषा के सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद चलता रहा है। बंगाली वैष्णव- भक्त कवियों ने विद्यापति के पदों को कीर्तन का विषय बनाया और उन्होंने वैसे ही भाव तथा भाषा के आधार पर काव्य-रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इस काव्य-शैली की भाषा बँगला से कुछ भिन्न थी। अतः उसे 'ब्रजबूली' नाम से अभिहित किया। कुछ समय तक यही भाषा बंगाल की साहित्यिक भाषा रही और आधुनिक कवि रवीन्द्रनाथ भी इसी प्रवाह में बढ़ने लगे। इस प्रकार विद्यापति बंग- साहित्य के आदिकवि माने गये। किन्तु किसी विद्वान् ने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि 'ब्रजबूलि' ब्रज भाषा की ही एक शाखा है या ब्रजभाषा-मिश्रित बँगला है या इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है और बँगला, ब्रज आदि की भाँति यह एक प्राचीन भाषा है। यूरोप के विद्वानों ने इस 'ब्रजबूलि' को हिन्दी की ओर उन्मुख पाया तो उन्होंने बँगला को हिन्दी की उपभाषा घोषित कर दिया। किन्तु बंगाली विद्वानों को यह बात असहनीय थी, क्योंकि उनकी दृष्टि में बंगला भाषा का साहित्य अन्य प्रान्तीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। अतः उसे उपभाषा मानना उन्हें खटकने लगा। [शोध के कई कार्य हुए और उसका परिणाम यह निकला कि विद्यापति के काव्य की भाषा न तो बंगला सिद्ध हुई और न ब्रजभाषा, वरन् पाँच सौ वर्ष पूर्व की स्वतन्त्र मैथिली भाषा प्रमाणित हो गई है।

मैथिली तथा बंगला का जन्म मागधी प्राकृत से माना जाता है। परन्तु दोनों में पर्याप्त भिन्नता मिलती है। इसका कारण स्पष्ट है। बौद्ध तथा जैनियों की धर्म-पुस्तकें अर्द्धमागधी से प्रभावित मागधी में लिखी गई हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि बिहार प्रान्त की भाषा मैथिली, पश्चिम प्राकृत, अर्द्ध मागधी और कुछ सीमा तक शौरसे में प्राकृत से प्रभावित होती रही और इसके विरुद्ध बैंगला इस प्रभाव से दूर रही। उसका विकास विशुद्ध मागधी से हुआ। इसीलिए मैथिली और बँगला-दोनों बहनें होते हुए भी आपस में भिन्नता लिये हुए सामने आई। मैथिली हिन्दी से अपन सम्पर्क स्थापित कर बैठी। वर्तमान मैथिली तो हिन्दी से बहुत अधिक मात्रा में प्रभावित हो ग है। आजकल मिथिला प्रान्त की भाषा हिन्दी ही है। जब तक बंगाली विद्वान इस परिणाम पर नहीं पहुँचे थे, तब तक विद्यापति की भाषा में बँगला के उच्च्चारण भरे जा रहे थे और उनके अनुरूप ध्वन्यात्मक तथा रूपात्मक परिवर्तन हो रहे थे। नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा सम्पादित पदावली में उक्त बात का पता लगता है-

शुन-शुन ऐ सखि कहन न होई।
राहि-राहि कय तन मन खोई ॥

यहाँ 'सुन-सुन' के स्थान पर 'शुन-शुन' कर दिया गया है। रंगला उच्चारण के अनुसार यह परिवर्तन किया गया है। इसी प्रकार रूपात्मक परिवर्तन भी किय गये हैं- नन्दव क नन्दन कंदबेरि तरु तरे।
धिर धिरि मुरिलि बजाव ॥

उक्त पंक्ति में 'कदंब क' के स्थान पर 'कंदब्बरि' कर दिया है। 'र' बंगला में सम्बन कारक की विभक्ति है, जो संज्ञा तथा इसके सर्वनाम के साथ सर्वत्र लगाई जाती है। इसके विपरीत मैथिली (प्राचीन) में संज्ञा के साथ सदैव सम्बन्ध कारक में 'क' विभक्ति लगती है और 'र' केवल सर्वनामों के साथ लगाई जाती है। ठोस तथ्यों का आधार होने के कारण अब उक्त प्रचार की भूलें नहीं दिखाई देतीं। हिन्दी साहित्यकारों ने विद्यापति को हिन्दी में इसलिए अपनाया है कि उनकी भाषा पश्चिमी हिन्दी की उपभाषाओं से प्रभावित है और आज मिथिला की साहित्यिक भाषा हिन्दी है।

1.8 विद्यापति की भाषागत विशेषताएँ

1. विद्यापति की पदावली की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरसता है उसमें जो शब्य आये हैं वे एक ओर तो श्रृंगार की प्रवृत्ति के अनुकूल हैं और दूसरी ओर उसमें प्रेमिल सन्दर्भों को उद्घाटित करने की पूरी क्षमता विद्यमान है। पदावली में कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। यद्यपि जयदेव के गीत गोविन्द की भाषा में भी पर्याप्त कोमलता और सरसता मिलती है। किन्तु विद्यापति की पदाबली जो जयदेव से ही प्रभावित है इस दिशा में काफी आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है।

2. विद्यापति की पदावली की भाषा अपनी विशिष्टता लिये हुए है। इसका पदविन्यास, शब्दचयन और वर्णमैत्री अनुपम है। इसकी भाषा में तत्कालीन लोकभाषा का स्वरूप देखने को मिलता है। शब्द इतने कोमल हैं कि भाषा में कोमलता और मधुरता के साथ-साथ सुकुमारता और सचिक्कणता भी आ गई है जैसे-

ससन परस खसु अम्बर रे रेखल धनि देह।

नव जलधर-तर संचर रे जनि बिजुरि रेह।

3. विद्यापति की पदावली में वर्णमैत्री और नाद-सौन्दर्य स्थापित करने के लिए भाषा में ऐसे वर्णों का प्रयोग किया गया है जिससे उनकी नादात्मकता स्पष्टतः देखी जा सकती है जैसे-

बाजत द्विग द्विग धोद्रिम द्रिमया।

नटति कलावति माति श्याम सग करताल प्रबंधक ध्वनिया

डमडम डफ डिमिक डिमि मादल रुनझुनु मजीर बोल।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि ध्यंन्यात्मकता विद्यापति की पदावली की स्पष्ट और उल्लेखनीय विशेषता है। इसी क्रम में कोमलकांत पदावली की मधुर गूँज को भी भुलाया नहीं जा सकता। यथा- रिघुपतिराति रसिक रजराज, रसमय रास रभस सस माझ।

रसमति रमीन घतन बनिराहि रास रसिक सह रस अवगाहि।

4. विद्यापति की पदावली में लाक्षणिकता और अर्थ गौरव लाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से विद्यापति के एक और तो भाषा में अर्थ गाभीर्य ला दिया और दूसरी ओर उसमें उचति चमत्कार भी पर्याप्त मात्रा में आ गया है। उदाहरणार्थ अवसर 'बहला रहा पचताव', असमय आस न पूरय काम', कूप न आवए पथिक के पास', अनक बेदन नइ बुझ आन', आरति गाहक मबंग मेसाह', कांच काचन न आनय मूल', बुदिना हितजन अनहित रेधिक जगत सोभाव', धएले रतन अधिक गुल होर, धनिक के आदर सब तह होअ', भेक न पिबए कुसुम मकरन्द', पोपि न काटिंअ विषहुक गाछ', और 'बानर मुँह की सोभाए पान' आदि अनेक लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से विद्यापति की भाषा में विशिष्टता आ गई है।

5. विद्यापति की पदावली में भाषा की चित्रात्मकता भी देखने को मिलती है। जहाँ-जहाँ कवि ने विरह का चित्र प्रस्तुत किया है अथवा जहाँ कवि ने सौन्दर्य का निरूपण किया है वहाँ तो चित्रात्मक भाषा मिलती ही है। भाषा का चित्रण गुण उन पदों में सबसे अधिक मिलता है जहाँ सथ स्नाताओं के चित्र है और नायिका की यौवन और शैशव के बीच की स्थिति का निरूपण किया गया है। वस्तुतः विद्यापति का एक-एक पद श्रृंगार और सौन्दर्य से भरपूर होने के कारण अपनी चित्रात्मकता में अकेला है।

6. विद्यापति की भाषा में माधुर्य गुण की प्रधानता है। उन्होंने श्रृंगार रस के उपयुक्त भावोपम शब्दावली प्रसंगानुकूल शब्दचयन और चित्र-गुण प्रधान पदविन्यास को अपनाकर भाषा को जो सौष्ठव प्रदान किया है, वह अनूठा है। वस्तुतः विद्यापति हिन्दी गीतिकाव्य परम्परा के सफल भाषा प्रयोक्ताओं में गिने जा सकते हैं।

7. 'पदावली' से स्पष्ट है कि विद्यापति की भाषा भावानुकूलता प्रसंगानुकूलता, वर्णन की अनुकूलता और रस की अनुकूलता लिए हुए है। उसमें तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का प्रयोग मिलता है। वह अलंकृति से युक्त है। उसकी शैली चित्रात्मक है, उसका सौन्दर्य प्रभावशाली और मर्मान्त है। विद्यापति की भाषा एक ओर सुकुमारता और कोमलकांत पदावली है तो दूसरी ओर उसमें प्रेषणीयता और सहजप्रवाह भी देखने को मिलता है। विद्यापति की भाषा में छोटे वाक्यों के अन्तर्गत गम्भीर से गम्भीर भावों को सफलता से चित्रित किया गया है। डॉ. दारिकाप्रसाद सक्सेना के शब्दों में "विद्यापति की भाषा चंद्रमा की भाँति, पियूष वर्षिणी है, सरिता की भौति प्रवाहमयी है, मृदंग ध्वनि की भाँति नादात्मक ध्वनि से परिपूर्ण है तथा मलय पवन की भाँति मधुर भाव की सुगन्धि से परिपूर्ण है।" वस्तुतः वह पाठकों के मन को मोहित करने जली है। एक शब्द में विद्यापति की भाषा लोक-भाषा के गुणों से सजी हुई होकर भी सरल, संगीत और आकर्षक है। विद्यापति निसर्ग सिद्ध कवि थे वे मानव स्वभाव एवं समाज की रीति-नीति से पूर्णतया परिचित थे। उनकी भाषा सरल, सुबोध और ग्रामीण क्षेत्रों में रमी हुई है। इसी कारण अनपढ़ जनता भी उसे सहज ही अपना लेती है।

8. डॉ. शुभकार कपूर ने लिखा है कि पंचाली अर्थों के र साम्य से युक्त शब्दों के मधुर चित्र संत्र संयोग और वियोग के अनेक सूक्ष्म भालों को अरनी भाव प्रवीणता और अर्थ-सबलता द्वारा बोता एवं प्रतक्ष के चित को विद्यापति तदाकार कर देते हैं। उन्होंने अपने पदावली में वैदर्भी रीति का अधिक लाश्रप लिया है। । इस कार कृति में । कृति में सानुनासिक वर्ग तथा वर्ण के पंचम वर्ग दी योजना अधिदा रहती है। यही कारण है कि उनकी रचना में गाधुर्य अधिक है। पदावली की भाषा में माधुर्यगुण की प्रधानता का यही रहस्य है।

निष्कर्ष-संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि विद्यापति की भाषा सररू, प्रवाहमय और चित्ताकर्षक है। एक अ ालोचक के शब्दों में यदि यह कह दिया जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी कि सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में विद्यापति उस समुचित, मधुर, सौन्दर्यमयी काव्य-भाषा के आदि ज-क हैं जिनका अनुकरण कर सूर आदि परवर्ती कवियों ने काव्य-रस की वह अजन धारा प्रवाहित की, जिस पर आज हिन्दी जगत को गर्व है। समस्त साहित्य में विद्यापत्ति का रस तथा भाषा सौन्द अन्यत्र दुर्लभ है।" वस्तुतः भाषा पर विद्यापति का असाधारण अधिकार था। वे शब्दों को तोलका भाव के वजन के साथ बिठाने में पर्याप्त सफल हुए। यों उनकी भाषा में कातत्व प्रदान करने में उनकी गीति-शैली का विशेष हाथ है।

1.9 विद्यापति का विरह-वर्णन

विद्यापति की पदावलि राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों का अपूर्व तथा अक्षय भंडार है। प्रेम का ऐसा साम्राज्य अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। मिलन और प्रेम सरिता के दो तट हैं। मिलन इन्द्रियों का आग्रह है तो विरह आत्मा की, हृदय की पुकार है। प्रेम स्वर्ण है तो विरह कसौटी है। विरहाग्नि में तपकर ही प्रेम कुंदन बनकर निखरता है। विरह प्रेम के भावावेश और तन्मयता की स्थिति है। प्रेम की परितृप्ति है मिलन, प्रेम की खोज है विरह। मिलन में प्रेम का संकोच है, विरह में प्रेम का विस्तार। विस्तार ही पूर्णता है। प्रेम के प्रतिरूप श्रृंगार को पूर्णता देने के लिए ही विरह का चित्रण विस्तार से किया जाता है। कवि विद्यापति ने भी राधा-कृष्ण के विरह-वर्णन में भान विस्तार किया है। विद्यापति का वियोग-वर्णन संयोग-वर्णन की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट और दिव्य है। संयोग में जो बिलास-वासना थी वह वियोग की आँच में तप-गलकर उज्जवल भाव-लाक में जा पहुंची है, जहाँ भावयोग की तन्मयता और आत्मार्पण की निष्कामता है।

विद्यापति के विरह-चित्रण में भाव और कल्पना का तथा अनुभूति और तन्मयता का ऐसा अद्भुत सामंजस्य है कि पाठक सहज ही सुध-बुध भूलकर तन्मय हो जाता है। भावों की विविधता, व्यग्रता, परिवर्तनशीलता, दीनता, अनुरोध, वेदना-निवेदन, प्रेम का घातक प्रहार और उससे उत्पन्न पश्चाताप, उपालंभ, विवशता, याचना आदि इतने अनेक रूपी भाव अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

बिरह का वर्णन कवियों का सदा श्रृंगार रहा है। सभी स्थितियों और दशाओं का चित्रण उन्होंने किया है। विरह की स्थिति अनेक प्रकार से सम्भव है, जिनमें विदेश-गमन की स्थिति, मान तथा नायक की प्रतिकूलता प्रधान रही है। विदेश गमन की स्थिति में भी दो रूप हो जाते है, गमन से पूर्व और गमन के पश्चात् बिरह का आश्रय रहती है नायिका और आलम्बन होता है नायक। यो कवि कभी-कभी नायक का विरह-चित्रण भी करते हैं; किन्तु नायिका ही प्रमुख रही है। पति के बिदेश-गमन से पूर्व की स्थिति में नायिका प्रवत्स्यत्पतिका और गमनोपरान्त प्रोषित- पतिका बन जाती है। बिरह-चित्रण में प्रकृति बड़ी सहायता करती है। प्रकृति विरह को आग्रह करती, पनपाती और उसे चरम शिखर तक पहुँचाती है। विद्यापति ने विरह की प्रायः सभी स्थितियो और दशाओं का चित्रण भी किया है और प्रकृतिं का उपयोग भी। मिलन जितना गम्भीर, गहन, वास्तविक और सच्चा होता है, विरह में उतनी ही तीव्रता आती है.। आवश्यकता है नायक प्रेम-मूर्ति रहे। जितनः प्रेम मूर्ति दूर होता जायेगा उतना ही हृदय में गहरे धँसता जायेगा। 'ज्यों-ज्यों बसे जात प्रेम-नूरि दूरि-दूरि, त्यों-त्यों धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं।' कहने की आवश्यकता नहीं कि राधा के भी माधच साक्षात् प्रेम-मूर्ति हैं, वे राधा से मिलने के लिए सदा अकुल रहते हैं। अपने प्रे-काव्य 'पदावली' का आरम्भ विद्यापति ने प्रेमी कृष्ण की राधा के प्रति उत्सुक मिलनाकुशलता यो वर्णन के साथ किया है- सुमति मधुसूदन अपनी सारी सुबुद्धि भुलाकर राधा के ही हो रहे हैं। उन्होंने राधा के साथ विविध प्रकार से अनन्त क्रीड़ाएँ कीं, पवित्र प्रेम को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए राधा के चरण तक हुए। ऐसा प्रेमी आँखों से परे हो जाये तो कठिन ब्रज से वृक्ष का भी विदीर्ण हो जाना स्वाभाविक ही है। अपने प्रेमास्पद को अपने से दूर करना कौन चाहेगा, दूर जाना तो दूर एक पल की बिछुड़न आकुल कर देती है। विद्यापति की राधा के कृष्ण तो विदेश जाने लगते हैं, विरह का यह आरम्भ में ही उसे घबड़ा देता है। वह अपनी सखी का आश्रय लेती हुई कहती है-

'सखि हे बालम जितब विदेस हम कुल-कामिनि कहइत अनुचित तोहहु दे हुनि उपदेश। ई न बिदेमक वेलि।।'

और यदि वे नहीं माने, चले ही गये तो-

'होयताह किए बध भागी।

जेहि खन हुए मन जाएव चितव हुमहु मरब धसि आगी।'

सखी का उपदेश भी जब काम नहीं आया तो उसने स्वयं विनय की और हर प्रकार से अपना प्रेम

तथा विरह के फलस्वरूप भविष्य के प्रति व्यग्रता प्रकट की-

'माधव, तोहें उनु जाहु बिदेस।

हमरो रंग-रभस लए जएवह लएवह कौन सन्देस ।। बनहि गमन करु होएति दोसर मति बिसरि जाएव पति मोरा। मनि-मानक एको नहिं माँगव फेरि माँगत पहु मोरा।।'

हीरा किन्तु राधा का पति, उसका प्रभु, नहीं ठहरा और मथुरा चला ही गया कवि ने यहाँ स्वप्नावस्था

का चित्रण कर बड़ी मनोवैज्ञानिक स्थिति प्रस्तुत की है- 'कालि कहल पिया ए साँझहिरे, जाएब मोर्य मारूअ देस।

मोय अभागलि नहि जनलि रे, संग जइतओं जोगिन बेस। हृदय मोर बड़ दारून रे, पिया बिनु बिहरि न जाए।

एक सयन सखि सूतल रे, आछल बालम निसि मौर। म जानल कति खन तेजि गेल रे, बिछुरल चकेवा जोर ।।'

आकुल राधा प्रिय के लौट आने की कामना करती हुई शकुन भी मनाने लगी-

'काक भाख निल भाखड़ रे, पहु आओत मोरा।

खीर-खांड भोजन देव रे, बारि कनक कटोरा।।'

शकुन नहीं होते, काग नहीं बोलता, पिया नहीं आते। जिस प्रियतम के लिए यह तन और यह यौवन था वही व्यर्थ लगने लगता। है- 'जीवन बिनु तन, तनु बिनु जीवन, की जीवन पिय दूरे।'

एक तो प्रियतम की दूरी, उस पर प्रकृति का वातावरण उसकी वियोग वह्नि को भड़काने

में सहायक होता है। उसका जीवित रहना दूभर हो जाता है-

'चौदिस भमर भम, कुसुम- कुसुम रम नीरस मांजरि पीबइ।

भन्द पवन चल, पिक कुछ-कुछ कह सुनि विरहिनि कइसे जीवइ।'

विरहारिन दिन-प्रतिदिन भड़कती जाती भी शीतलोपचार अनुकूल नहीं। पढ़ता-

मृगमद चानन परिमल-कुंकुम, के बोल सीतल चन्दा।

पिया बिसलेख अनल जो बसिए, विपति चिन्हिए भल मत्दा।'

प्रियतम के लौट आने के दिन गिलते-गिनते उसकी अंगुलियों के नाखून घिस गये, बाट औहते आँखें अग

'नखर खोआओलु दिवस मिनि-गिनि जयन अन्धालु पिया-पथ देखि।'

किन्तु नायक के प्रति नायिका के अनन्य प्रेम में कोई कमी नहीं आयी, विरह में जितने भी आँसू बहे उन्होंने आशा-लता को और भी बढ़ाया। अनन्य प्रेम छुड़ाये छूटता नहीं-

अनुभव काहु पराभव सजनी, हरिन न तज हिमधामा। ' जतओ तरनि जल सोखए सजनी, कमल न तेजए पांक।

जे जन रतल जाहि सौ सजनी, कि करत बिहि भए बांक।'

बसन्त, सावन-भादों आदि आ-आकर उसे और भी सताते हैं, उसके दुःख का और छोर नहीं रहता। वह हिम की मारी कमलिनी की तरह दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। किन्तु अनन्य प्रेम तैल-बिन्दु की भांति विस्तृत होता जाता है- 'तेल-बिन्दु जइसे पानि प्रसारिये, ऐसन मोर अनुराग।'

सावन मास विरहिणियों के लिए सर्वाधिक दुःखदायी होता है, वह चाहती है कि पत्र द्वारा ही उन्हें बुला भेजे किन्तु प्रियतम के पास पत्र ले जाने वाला भी कोई नहीं, निराशा बढ़ती जाती है। निराशा तक आने की स्थिति का बड़ा क्रमिक और मनोवैज्ञानिक वर्णन है-

'एखन-तखन करि दिवस गमाओलि, दिवस-दिवस करि मासा।

मास-मासकरि बरस गमाओल, छोड़लू जीवन आशा।

दरस बरस करि समय गमाओल, खोयलूँ कानुक आसे।'

करे भी क्या ? जब रक्षक ही भक्षक बन जाये तो कोई क्या करे 7-

'हिमकर किरन नलिनि जदि जारब कि करब माधव मासे ?

अंकुर तपन-ताप जदि जारब कि करब बारिद मेहे ?'

शोभा उसे विश्वास हो गया कि वे किसी ऋतु में नहीं लौटेंगे तो उसने अपनी सारी कान्ति, सारी

सारे श्रृंगार छोड़ने आरम्भ कर दिये-

'झामर भेलि सारी', 'अघर न हास', 'कोमल अरुन कमल कुम्हिलाइल', 'हृदय हार भार भेल', केवल इतना ही नहीं उसने अपने अभिराम यौवन-सम्पन्न देह को भी सुखाना आरम्भ कर दिया। वह अपने प्रिय का स्मरण करती हुई, उसके गुणों का गान करती हुई अत्यन्त निर्बल हो गयी है। अब उसके शरीर में कुछ भी नहीं रह गया है। उसने अपने श्रृंगार-सौन्दर्य के लिए जो सामग्री जहाँ से ली थी, वह वहाँ लौटा दी है-

यह सब इसलिए हुआ कि अब उसका प्रियतम स्वप्न में भी नहीं आता, विरह की यह चरम सीमा है नींद भी नहीं आती-

'सपनहु संगम पाऔल रंग बढ़ाओल रे,

से मोर बिहि विघटाओल निन्दओ हेराएल रे।'

विद्यापति की विरहिणी इन सब परिस्थितियों में से गुजरती है और अन्ततः उसकी दशा मरण की अवस्था तक पहुंच जाती है। विरह की ग्यारह दशाएँ मानी गई हैं- चिंता, अभिलाषा, स्मरण, गुण-कथन उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा और मरण। विद्यापति की राधा ने 'के पतिया लए जाएत रे, मोरा प्रियतम पास' की चिन्ता भी की, 'मन करे तहाँ उड़ि जाइञ, जहाँ हरि पाइअ रे' की अभिलाषा भी। उसके गुणों का गान किया, अनेक प्रकार से उसकी स्मृति आई, किन्तु जब प्रियतम नहीं आये तो उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा आदि ने घर दबाया। उद्वेग में वह बार-बार 'हा हरि हा हरि' कहती है और 'घरनि धरिये धनि जतनहि बइसइ किन्तु 'पुनहि उठए नहि पारा।' प्रलाप और उन्माद इस सीमा तक बढ़ता है, कि-

'अनुखन माधब माधब सुमरइत सुन्दर भेलि मधाई।

ओ निज भाव सुभावहि विसरल अपने गुन लुबधाई।

ओरहि तहचर कातर दिठि हेरि छल-छल लोचन पानि। अनुखन राधा-राधा रटइत आधा-आधा बानि।।'

वियोग-व्यथा की व्याधि इतनी बढ़ती है कि वह काठ प्रबोध नहीं मानती भोजन पान नहीं करती। जड़ता। की मूर्ति बन जाती है, किसी का की यह हस्थिति मूर्च्छा में परिवर्तित हो जाती है-

'जानि नलिनि केओ रमनि सुताओलि, केओ देइ मुख पर नीरे। निसबद पेखि केओ सांस निहारए, केओ देइ मन्द समीरे ।।'

सखी तो उसकी 'नवम दशा' भी देखें आती है; किन्तु विरह की बाधा बढ़ते हुए भी दारुण प्रेम टूटता नहीं, उस कलावती का जीव आशा-पाश में बद्ध है और यहीं विरह की चरमावस्था है।

विद्यापति के विरह-वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विरहिणी राधा मूक-साधिका है, वह चुप रहकर सब सहन करती है, अपने मुँह से कुछ नहीं कहती। विरह का संदेश और आत्म- निवेदन बहुत थोड़े समय तक रहता है। फिर सखी ही उसकी दशा का दर्शन कराती है। पीड़ा की अधिकता में अपने मुख से कुछ कह सकना सम्भव भी नहीं। जीवन के इस गम्भीर तथ्य को विद्यापति भली प्रकार जानते थे, भी नहीं। अतः राधा के मुख से अपना रोना-धोना प्रकट करके उन्होंने विरह की गम्भीरता को उथला-छिछला नहीं किया। विद्यापति का विरह-वर्णन प्रथम पुरुष में नहीं है; और यहीं वे सूर, जायसी, मीरा, कबीर, मैथिलीशरणगुप्त आदि से आगे निकल जाते हैं। सूरदास का विरह-वर्णन अधिकांशतः प्रथम-पुरुष में हुआ है। यह एक अस्वाभाविक और अमनोवैज्ञानिक स्थिति है। वियोग के कारण शिथिल क्षीण, मूच्छित नारी अपनी व्यथा को बार-बार एक लम्बे समय तक भाषण की सीमा तक नहीं व्यक्त कर सकती। सूरदास की राधा या विरहिणी गोपिका अपने मुख से प्रायः कहती रहती है- 'बिनु गोपाल बैरिन नभई कुंजै', 'अंखियाँ हरि-दरसन की प्यासी', 'निसि-दिन बरसत नैन हमारे', 'सब जग तजे प्रेम के नाते', 'कधो इतनी कहियो जाय' इत्यादि। डॉ. जयनाथ 'नलिन' के शब्दों में सूरदास की राधा की 'इस वाचालता में नारी स्वभाव का शील और गाम्भीर्य भी नहीं रह जाता। सूर में भावों की विविधता सम्भवतः विद्यापति से अधिक है। घर बियोग-जर्जर, हताश, क्षीण, शिथिल, मरणाशंक, स्तब्ध, विरहिणी का वह रूप सूर में कहाँ है, जो विद्यापति में है। राधा के वियोग-क्षीण और उजड़े रूप का चित्र दो-चार पदों में आया है। विद्यापति ने जो करुणा-कातर, सिसकियों भरा, अनु गीला, क्षण- क्षण क्षय होता रूप उपस्थित किया है, सूर में उसकी छाया भी नहीं आ पाई। इसका कारण भी है। सूर को सगुण भक्ति का प्रतिपादन और निर्गुणवाद की व्यर्थता सिद्ध करनी थी। इसलिए उनकी गोपियाँ इतनी विरह मारी नहीं, जितनी वाचाल, व्यंग्य भरी, तर्कपूर्ण और विजय-उत्साह से चपल हैं विद्यापति केवल एक कवि, भाव-साधक, शब्द-शिल्पी हैं, किसी बाद के वकील नहीं, इसलिए उनकी दृष्टि वियोग के सच्चे स्वरूप पर रही।"

मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' में भी विरह-वर्णन पर्याप्त विस्तार के साथ मिलता है, किन्तु विद्यापति से उसकी भी तुलना नहीं की जा सकती। 'नागमती-वियोग खंड' का विरह- वर्णन बहुत कुछ एक बँधी परिपाटी पर है। षट्ऋतु-वर्णन का मोह जायसी नहीं छोड़ पाये, जबकि विद्यापति ने उसका अल्पमत आधार लिया। फिर नागमती का विरह-वर्णन भी सूर की भाँति प्रथम पुरुष में व्यक्त होता है-

'सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ?

झरि-झुरि पीजर हौं भई, बिरह काल मोहि दीन्ह।'

नागमती की अभिलाषा बिद्यापति की राधा से कहीं बढ़ी चढ़ी है। राधा पक्षी बनकर उड़ जाना चाहती है, जबकि नागमती 'सारस होइ करि मुई', 'पीठ समेटहि पंख' की स्थिति में है। अलबत्ता 'संदेश-खंड' में नागमती का विरह बहुत प्रभावपूर्ण है, संभवतः विद्यापति से बढ़ा- चढ़ा। नागमती अपनी व्यथा कहने में असमर्थ हो जाती है-

'हाड़ भए सब किंगरी, नस भई सब तांति।

रोंव-रॉब तै धुनि उठै, कहौ विथा केहि भाँति ?'

किन्तु यह प्रभाव अत्युकियो, अति-पंजाओं और अस्वाभाविकताओं के कारण प्र हो जाता है।

विद्यापति का विरह-वर्णन इस प्रकार ऊहात्यक है, अतः हास्यापद नहीं है। उसने की गम्भीरता है, फारसी व्यक्तियों की हाय-हाय नहीं। जायसी का विरह वर्णन रीतिकालीन कथित की कोटि का है। बिहारी में पर्याप्त उछल-कूद, अस्वाभाविक अति-कल्पना, हास्यास्पद प्रभाक योजना भरी पड़ी है। बिहारी की विरहिणी साँसों के हिंडोरे पर 'ब्रड़ी छ-सातक हाथ' अ पोछे आती-जाली रहती है। शीतलता के लिए उस पर जो गुलाब जल छिड़का जाता है, वह और ही में सूख जाता है-

'इत आवति चालि जति उत, चली छ-सातक हाथ। चड़ी हिडोरै सी रहै, लगी उसासनु साथ।।'

'औधाई सीसी सुलखि' तथा 'बीचहि सूखि गुलाब गो।'

इस प्रकार का हास्यास्पद वर्णन सर्वथा विदेशी पद्धति पर हुआ है, जैसा कि उर्दू शाया में भी मौजूद है-

"इंतहार लागरी से जब नजर आया न मैं।

हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिए।'

किन्तु विद्यापति का विरह-वर्णन सर्वथा भारतीय पद्धति पर है, अतः उसमें एक गम्भीरत

स्वाभाविकता, प्रभावोत्पादकता, रस-मग्नता और शालीनता विद्यमान है। विद्यापति के उक्ति-

वैचित्र्य में भी एक मनोवैज्ञानिक हार्दिकता रहती है।

1.10 निगुण भक्ति परम्परा में कबीर का स्थान

भक्ति का महत्व-कबीर का कथन है कि माया के पास में पड़े हुये जीव का उद्धार केवल भगवद् भक्ति से ही हो सकता है। भक्ति के बिना माया जनित संशय का दुःख दूर नहीं हो सकता है और न ही मुक्ति मिल सकती है। भाव भक्ति के बिना सागर से पार जाना असम्भव है। कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों के वैमनस्य को दूर करने के लिए एक ऐसी भक्ति का आश्रय लिया जिसमें राम, रहीम, कृष्ण और रहीम में अभेदता स्थापित हो सकें। कबीर के इस निगर्ण

भक्ति भावना में निम्नलिखित तत्व महत्वपूर्ण हैं-

नाम स्मरण-कबीर की निर्गुण भक्ति भावना में नाम स्मरण को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इस नाम संस्करण में प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है। नाम स्मरण करते-करते वह राम नाम साधक के रोम-रोम में रम जाना चाहिये। कबीर इस प्रकार के स्मरण का विरोध करते हैं जिसमें हाथ में माला और मुँह में जीभ फिरा करती हैं परन्तु मन दसों दिशाओं में घूमता रहता है उन्होंने लिखा है कि- "माला तो कर फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं। मनुबा तो दस दिसि, फिरे सो तो सुमिरन नाहि।"

नाम स्मरण के साधन के मन में विद्यमान अहंकार विस्तृत हो जाता है। कबीरदास चाहते थे स्मरण ऐसा होना चाहिए कि साधक साध्यमय हो जाये और उसका पृथक से कोई अस्तित्व ही न रहे। सारा संसार ही उसे प्रियतम होने लगे।

सहज प्रेमा भक्ति-कबीर की भक्ति भावना में मायावाद और अद्वेतवाद का सम्मिश्रण हुआ है। कबीर की भक्ति का आधार अव्यक्त और निर्गुण है, किन्तु उसमें वैष्णवों की वह माधुर्य भावना समाहित है, तो हृदय में रस की सृष्टि करके प्रेमी को भगवान के प्रेम में तन्मय कर देती है। वैष्णवों में भक्ति के जो नौ रूप (नवधा भक्ति) माने गये हैं, वह कबीर साहित्य में सर्वथा उपलब्ध हैं। श्रीमद्भागवत में नवधा भक्ति इस प्रकार बताई गई है-

श्रवणं कीर्तन विष्णोँः स्मरणं पाद-सेवनम् ।

अर्चन वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

अर्थात् श्रवण कीर्तन, स्मरण, चरण सेवन अच्चन सेवन अचन वन्दन दास्य, सख्य त आत्मनिवेदन भक्ति के ये सभी रूप कबीर की साखियों से प्राप्त हो जाते हैं। कबीर की सहर भक्ति प्रेमपच पर चल कर अपने आराध्य तक पहुँचती है। उन्होंने लिखा है कि- अब हरि हूँ अपनौं करि लीनौ।

प्रेम भगति मेरी मन भीनों

उनकी सहज प्रेमा भक्ति कान्ताभाव से आत्म-समर्पण करके भी अपनी आराध्य के किस प्रकार का सांसारिक प्रतिपादन नहीं चाहती, वह पूर्ण निष्काम है।

भी माधुर्य भाव-कबीर में हम माधुर्य भाव की भक्ति के दर्शन पाते हैं। कबीर ने आत्म परमात्मा के वियोग का वर्णन किया है उनके विरह में वैसी ही तीव्रता दिखाई देती है जैसा माधुर भाव की भक्ति में देखी जाती है। कबीर की विरहवी आत्मा अपने प्रियतम के दर्शन के लि रात-दिन व्याकुल बनी रहती। उसे न तो दिन में ही सुख प्राप्त होता है और न ही जाने पर रात्रि में, न जागने पर ही सुख मिलता है और न स्वप्न में ही जो आत्मा अपने प्रियतम राम में बिछड़ गई है, उसे न तो धूप में ही सुख प्राप्त होता है और न ही छाया में। वे कहते हैं- बासुरि सुख नॉरैणि सुख, नाँ सुख सुपनै माँहिं। "

कबीर बिछूट्या राम सूं, नाँ सुख धुप व सुपनै छाँनि।।"

कबीर की यह बिरह पीड़ा दायक तो हैं लेकिन इस विरह में वे आनन्द का अनुभव करते । उनका प्रियतम के प्रति अनन्य प्रेम है।

आचरण में पवित्रता-कबीर की भक्ति की यह प्रमुख विशेषता है कि वे आचरण को शुद्धता पर बल देते हैं। कबीरदासजी सदाचार को भक्ति का प्रमुख अंग स्वीकार करते हैं। आचरण हैं की शुद्धता हेतु कबीरदास 'कनक और कामिनी' से दूर रहने की चेतावनी देते हैं। उनकी मान्यता है, कामिनी' तो व्यक्ति को भक्ति, मुक्ति और ज्ञान से दूर रखती है वे आचरण की शुद्धता हेतु कुसंगत्ति का त्याग आवश्यक मानते हैं। साधुओं को संगति से आचरण स्वतः ही पवित्र होता है- "कबीर संगति साधु की, बेगि करोजे जाई।"

शुद्ध आचरण से दुर्गति समाप्त होती है तथा सुमति आती है। हठयोग का मिश्रण-कबीर की भक्ति भावना में हठयोग का भी समन्वय हुआ है। इड़ा, पिंगल, सुषुम्ना, अष्टचक्र आदि का वर्णन किया है और उनका सम्बन्ध भक्ति से स्थापित करते हुए हठयोग और प्रेम भक्ति का सुन्दर समन्वय किया है।

निष्काम भक्ति-कबीर ने निष्काम भक्ति का महत्व बताते हुए अनासक्त भाग का प्रतिपादन * किया है। उनके विचार से प्रेम लक्षणा भक्ति का थोड़ा-सा समय भी जीवन को श्रेष्ठ बना सकता है। परमात्मा की एकता कबीर ने मुसलमानों के एकेश्वरवाद और मुसलमानों के बहुदेवाद के विरुद्ध एक ऐसे ईश्वर का प्रचार किया, जो सर्वत्र रमा हुआ है और घट-घट में निवास करता है। वह निर्गुण और निराकार भी है। उस अनन्त का तेज सूरज की सेना से भी अधिक प्रकाशवान है-

'कबीर तेज अनन्त का मानो ऊगी सूरत सेण।' कबीरदासजी हिन्दुओं के बहुदेववाद का विरोध करते हैं उनकी मान्यता है कि वह परम

तत्व एक ही हैं और उसका कोई स्वरूप प नहीं हैं। हैं। वह पुष्प गंध से भी सूक्ष्म है- "जाके मुख माथा नहीं, नाही रूप कुरूप।

* पदुप वास धै पातरा, ऐसा तत्व अनूप।"

साथ ही साथ कबीरदासजी मुसलमानों के एकेश्वरवाद के भी विरोधी थे वे कहते हैं-

'मुसलमान का एक खुदाई।

कबीर का स्वामी रह्य समाई।'

कबीर ने राम, रहीम, करीम, राम अल्लाह, बिसमिल, विश्वम्भर आदि सक्की एकता स्थापित करते हुए परमात्मा की एकता पर जोर दिया है।

गुरु की महत्ता-कबीर की भक्ति से गुरु की महत्ता को स्वीकार किया गया है। यह सतगुरु शिष्य पर अनन्त उपकार करता है। यह शिष्य के अनन्त ज्ञान चक्षु खोल देता है, जिसमें शिष्य उस अनन्त परमात्मा को पहिचान पाता है-

'सतगुरु की महिमा अनन्त, किया उपगार।

लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावण हार।

यह गुरु अनन्त में दर्शन करने वाला है साथ ही यदि अनन्त रुष्ट हो जाता है तो शिष्य को गुरु के पास आश्रम-स्थान है, जबकि गुरु के रूठने के बाद उसे आश्रय कहाँ प्राप्त हो सकता है। सच्चा प्रकाश प्रदान करने वाला गुरु है। कोई व्यक्ति भले ही चौंसठ कलाओं के दीपक जला ले, चौदह चन्द्रमाओं का प्रकाश उसके हृदय रूपी घर को प्रकाशित करे, लेकिन जिसके

घर में गोविन्द नहीं उसके यहाँ सच्चा प्रकाश कैसे हो सकता है। परन्तु जीव को गोविन्द से मिलाने

वाला गुरु ही है। यह मनुष्य तो माया रूपी दीपक पर पतंगे के समान गिरता है लेकिन गुरू ज्ञान

में कोई ही इससे मुक्त हो पाता हैं-

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवै पदंत। "

कहै कबीर गुरु ज्ञान थे, एक आधा उवरुत।'

अतः कबीर दास ने गुरु सेवा को भक्ति का अनिवार्य साधन घोषित किया है। उन्होंने

स्वीकार किया है कि 'गुरु सेवा तै भक्ति कमाई' जो इस बात का संकेत है कि उन्होंने जो भक्ति अर्जित की है वह गुरु सेवा से ही की है। कबीर के अनुसार गुरु उच्च कोटि का और पहुँचः हुआ हो। उसमें साध के पथ प्रदर्शन की पूर्ण क्षमता होनी चाहिये। योग मार्ग-कबीर ने भक्ति के लिए योग को भी आवश्यक माना है-

तन खोजी नर न करौ बढ़ाई।

युगति बिना भगति किन पाई।।

कबीर के योग का अनुसरण इसलिए किया है कि योग से चित्त वृत्तियों पर काबू पाय जा सकता है भक्ति के लिये चित्त की एकाग्रता आवश्यक है। सारांश में कहा जा सकता है कि कबीर ने अपनी भक्ति में निष्काम भाव पर बल दिया है। इसमें गाहों साधनों की अपेक्षा आन्तरिक सुचिता पर अधिक बल दिया है। इन क्ति में योग, नवधा भक्ति तथा प्रेम भाव का अद्भुत मिश्रण है। कबीर के अनुसार गुरु उच्च कोटि का

होना चाहिए तथा उसमें साधक के पथ प्रदर्शन की पूर्ण क्षमता होनी चाहिए।

1.11 कबीर के रहस्यवाद का विवेचन

उत्तर- कबीर रहस्यवादी कवि हैं। रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसार चक्र का प्रवर्तन किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा होता है। इस बात का अनुभव मनुष्य अनादिकाल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मन्द को रही है और रहेगी।

मानव ने जब आँखे खोलकर देखा तो अनन्त वैभवमयी प्रवृत्ति का प्रसार नीचे हग भरी घरती, ऊपर नीलाम्बर। उसे घमूने के लिए नागाधिराज, उसके भी पदों को प्रक्षालन करने वाला रत्नाकार। सब कुछ विशाल, अनुपम। मानव सिहर उठा। सागर में मिल जाने के लिए इठलाती सरिताएँ, उछल-उछल कर उल्लास को प्रकट करने वाले उस्त, नदी के दुकूलों में चिपटे हुए मृगी तथा मृगाल अनेक रूपी, पशु-पक्षी। सूर्य की वे आभायमी किरणें, चन्द्र का शीतल प्राश। प्रातः सायं का मेघाडम्बर। कहीं धूप, कहीं छाँव, और न जाने कितना कौतूल। चारों ओर व्यवस्था, नियम। यह वैभव कहाँ से आया? किसने इतना सारा प्रबन्ध यहाँ किया? इतना अतुल एश्वर्य, कौन जो इस प्रकार की व्यवस्था को बनाए हुए हैं? इन प्रकार के प्रश्नों ने उसको उद्वेलित कर दिया। उस अज्ञात, अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। यहीं से रहस्य भावना का जन्म हुआ। जहाँ तक इस रहस्य भावना के साथ जुड़े 'वाद' का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है। यद्यपि यह नाम अर्वाचीन है, परन्तु भारतीय तथा विदेशी साहित्य में इस वाद के तत्व अत्यन्त प्राचीन है। यदि हम वैदिक साहित्य की ओर जायें तो वेदों एवं उपनिषदों में रहस्यवादी प्रवृत्ति के दर्शन हो जाते हैं। रहस्यवाद को परिभाषा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है- "चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाट है, भावना के क्षेत्र में वहीं रहस्यवाद है।" शुक्ल जी की परिभाषा को समझने के लिए अद्वैतवाद को समझना आवश्यक है। अद्वैतवाद के सन्दर्भ में शुक्ल जी का कथन है- अद्वैतवाद मूल म एक दार्शनिक सिद्धान्त है, कवि कल्पना या भावना नहीं। वह मनुष्य के बुद्धि प्रयास या तत्व चिन्तन का फल है। वह ज्ञान क्षेत्र की वस्तु है। जब उसका आधार लेकर कल्पना या भावना उठ खड़ी होती है, अर्थात् जब उसका संचार भाव-क्षेत्र में होता है तब उच्चकोटि के भावात्मक रहस्यबाद की प्रतिष्ठा होती है। रहस्यवाद दो प्रकार का होता है- भावात्मक और साधनात्मक । हमारे यहाँ

का योग मार्ग साधनात्मक रहस्यबाद है। यह अनेक अप्राकृत और जटिल अभ्यासों द्वारा मन को अव्यक्त तथ्यों का भाषामार कराने तथा साधक को अनेक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त कराने की आशा देता है। तंत्र और रसायन भी साधनात्मक रहस्यवाद हैं पर भिन्न कोटि का ।" इम प्रकार की परिभाषा डॉ. रामकुमार वर्मा की है-" रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य अलौकिक शक्ति से अपना निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है।" इसके साथ ही रहस्यावाद के दो प्रकार है-

1. भावात्मक रहस्यवाद 2. साधानात्मक रहस्यवाद।

अंडरहिल ने रहस्यवाद की छः स्थितियाँ स्वीकार की हैं-

1. जागृति-आत्मा का परमात्मा के प्रति जाग्रत होकर जिज्ञासा का भाव दिखाना।
2. आत्मशुद्धि-जीवात्मा द्वारा अपनी त्रुटियों को दूर करना एवं अपनी अपूर्णता का ज्ञान प्राप्त करना।
3. आत्मप्रकाश-आत्मा का चिंतन व्यवस्था में होना।
4. अन्धकारमयी स्थिति-परमात्मा के वियोग, दुःख एवं मार्ग के विघ्नों का सामना करना।
5. अन्तर्मुखी प्रवृत्ति-आत्मा से परमात्मा के मिलन की स्थिति।
6. दैवी दृश्य-आत्मा एवं परमात्मा का पूर्णतया मिलन। परन्तु इन स्थितियों के अतिरिकर विद्वानों के अपने ढंग पर भिन्न-भिन्न प्रकार की स्थितियों का वर्णन किया है। डॉ. रामकुभार बर्मा ने इसकी तीन स्थितियाँ स्वीकार की है-जिज्ञासा, प्रयान, एवं मिलन।

कबीर हिन्दी के प्रथम रहस्यवादी कवि हैं। उनके अनेक पदों में अज्ञात, अव्यक्त पर सत्ता का तथा जीव तथा परमात्मा के नाना प्रकार के स्वरूपों का परिचय मिलता है। कथीर के विषय में कहा जाता है कि उनका रहस्यवाद वेदान्त (अद्वैतवाद) हटयोग एवं सूफियों के प्रेभतत्नों के आधार पर निर्मित हुआ है। वास्तव में यह ठीक भी है। वे अद्वैतवादी की भांति सभस्त जगत में उसी सत्ता को व्याप्त मानते हैं कबीर के रहस्यवाद का दूसरा पक्ष हठयोग पर आधारित है। सिद्धों और योगियों ने जिस पद्धति को जन्म दिया था, उसका परिष्कृत तथा परिवर्जित रूप हमें सन्तों में मिलता है। यदि इसमें कोई विकास देखा जाए तो यही कहा जाएगा कि संतों ने अपने रहस्यवाद को शुष्क तथा चौरस नहीं बनने दिया। उन्होंने उसमें प्रेम रस डालकर सरस बना दिया।

महर्षि पंतजलि तथा योगवसिष्ठाकर ने योग के सम्बन्ध में आठ अंगों का उल्लेख किया है यथा-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। कथीर ने अपने साहित्य में यद्यपि इनका उल्लेख किया है परन्तु उन्होंने ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया। वास्तव में कबीर ने अपने अनुभव के आधार पर इन नियमों को अधिक सरल तथा व्यवहारिक बनाने का प्रयत्न किया है। कबीर ने सामान्य रूप से योगमार्ग के निम्न तत्व स्वीकार किए है-पिण्ड, ब्रह्माण्ड की एकता, नाड़ी साधन, वायुसाधन, विविध प्रकार की मुद्राएँ, बहारन्ध्र, षट्चक्र, कुण्डलिनि, सुरति-निरति इत्यादि । कबीर ने मानव शरीर को ही पिण्ड स्वीकार किया है और यह अखिल ब्रह्माण्ड का लघु रूप है। बाह्य संसार में नदी पर्वत इत्यादि है वही मानव शरीर के नाड़ी-चक्र है। इसीलिए, बाह्य भावना की अपेक्षा कबीर ने अन्त साधना पर बल दिया है:-

कबीर के रहस्यवाद के अन्य सरस पक्ष भी है। उनमें एक सहृदय प्रेमी-साधन का हृदय झाँकता हुआ दिखाःग है।

इस पक्ष में कनगर के मुधर प्रसंग आते हैं। यह पद्म सूफी मत पर आधारित है। इस मत के अनुसार 'वन्दे' और 'खुदा' का एकीकरण हो सकता है। किन्तु अद्वैतवाद के विरुद्ध इसमें माया के स्थान पर 'शैतान' की परिकल्पना की गई है। 'महबूब' का घर सामने है। किसी 'मुरशिद' की आवश्यकता है। साधक मार्ग की कठिनाइयाँ पार करके 'मारिफत' की अवस्था को प्राप्त करता है। किन्तु इसके लिए जैसा कि कबीर ने लिखा है, गुरु की चौंसठ दीग जोड़ के चौदह चंदा मांहि। आवश्यकता है- किन्तु सूफियों की प्रधान विशेषता उनका प्रेमराज्य है। वे तो सदा अपने 'इश्क' में दिवाने रहते हैं। कबीर की रहस्यवादी भावना पर भी प्रेम का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। किन्तु इनके प्रेम में केवल यही अन्तर है कि जहाँ सूफी कबियों में 'खुदा' को स्त्री माना है वहाँ कबीर ने ने अपने को सिद्धि पर किसको चाँदिकुभ जिहि घर सतगुरु मांहिं ।। 'राम की 'बहुरिया' माना है:-

दुलहनों गाव्हु मंगलचार,
हम बिर आये हो राजा रांम भरतार ।।

इसी प्रकार कबीर ने कहीं-कहीं अपने को राम का पुत्र भी माना है:- हरि जननी मैं बालक तोरा।

कबीर बास्तव में प्रेमोपासक रहस्यवादी कवि हैं (Loue Mystic) यदि कबीर का कोमल हृदय तथा उसकी मार्मिक टक्तियाँ देखनी हों तो कबीर का विरह पक्ष इसका ज्वलन्त उदाहरण है। प्रेम की कहानी 'अकंथ' है, अवर्णनीय हैं। इसका स्वाद तो निजी अनुभूति है:-

अकन कहाणि प्रेम की, कडू कही न जाई।
गूँगे केरी सरकरा, बैठे गुरकाई ।।
सूफी साधक सदैव एक अनन्त विरह की वेदना से व्यथित रहते हैं। जब तक आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार न हो जाए, तब तक चैन कहाँ? विरहिणी को प्रियतम की प्रतीक्षा में विरह की आग में निरन्तर जलना पड़ता है:- विरह सतावै भौइ को जिउ तडपै मोरा।
तुम देखन की चाय है, प्रभु मिली सबेरा।।
वास्तव में प्रिय को पाना सहज नहीं है। उसके लिए अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। अनेक काष्टों को झेलने के बाद जब प्रिय का साक्षात्कार हो जाता है। तो चारों और उल्लास का वातावरण छा जाता है। उसके प्रेम का रसपान कर विरहिणी मदमस्त हो जाती है।
सभी सन्त कवियों के काव्य में थोड़ा बहुत रहस्यवाद मिलता है। पर उनका काव्य विशेषकर कबीर का ही ऋणी है। बैगेला से वर्तमान कवीन्द्र को भी कबीर का ऋणी स्वीकार करना पड़ेगा अपने रहस्यवाद का बीज उन्होंने कबीर में ही पाया भारतीय रहस्यवाद को उन्होंने पाश्चात्य ढंग से सजाया है। इसी से यूरोप में उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई है। जब से उन्हें नोबेल प्राइज पुरस्कार मिला तब से लोगक उनकी गीतांजली की तरह नकल करने पर लगे हैं। हिन्दी का वर्तमान रहस्यवाद अब तक नकल ही सा लगता है।

1.12 "कबीर एक समाज सुधारक विद्रोही संत कवि

जिस युग में कबीर ने जन्म लिया वह युग धार्मिक जटिलता का युग था प्रत्येक मत अपने मत के अलावा अन्य मतों को हीनता की दृष्टि से देखता था इस कारण समाज में पाखण्ड का साम्राज्य हो रहा था। कबीर समाज के सजग प्रहरी थे उनके सम्बन्ध में हजारी प्रसाद द्विवेदीजी लिखते है, "वह सिर से पैर तक मस्तमोला थे', कबीर गम्भीर और भेदक दृष्टि के व्यक्ति थे अपनी इस दृष्टि से उन्होंने सामाजिक अधोगति एवं पतन का कारण देखा और एक सामान्य सत्य का स्वरूप्र उपस्थित कर उसे सुधारने का प्रयन्त किया। कबीर का उद्देश्य बुराइयों को दूर करके संवृत्तियों और श्रेष्ट विचारों का विकास करना था। कबीरदास जी ने भारतीय संस्कृति के विकास की श्रृंखला में एक नई कड़ी जोड़ दी, जिसके पीछे कान्तिमान कड़ियों की लड़ी लग गई कबीर ने जीवन के सभी स्तरों के क्राप्ति के रमणीय बीज बोये, उन्हें सींचा और पल्लवित किया।
कबीर अपने युग की उपज प्रत्येक साहित्यकार अपने युग से प्रेरित होता है। युग का परिस्थितियों में से प्रभावित होकर ही साहित्य-सृजन करता है। कबीर भी अपने युग की उपज थे। उन्होंने वहीं कहा जो उन्होंने भोगा जो उन्हें परम्परा से सत्य मिला, उसे उन्होंने पहचाना, अनुभव किया और उसी को वाणी दी। कबीर का साहित्य समाज की माँग थी। उन्होंने युग की नाड़ी कों परख कर अनुकूल चिकित्सा की। ज्ञानी होते हुये भी उन्होंने स्वयं को समाज से पृथक नहीं रखा, वरन् अपने ज्ञान से समाज का वास्तविक हित किया। उन्होंने अपने समय की विभिन्न सामाजिक रीति नीतियों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उनकी सार्थकता पर विचार किया और व्यर्थ की मान्यताओं, रूढ़ियों व व्यर्थ की जीवन पद्धतियों का प्रबल विरोध किया।
कबीर के समय की परिस्थितियाँ-कबीर का आगमन ऐसे संघर्षमय समय में हुआ था, जब देश राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक सभी दृष्टियों से पतन की ओर उन्मुख हो रहा था। देश में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो चुका था। राजनीतिक अत्याचार एवं भ्रष्टाचार दिन- प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे। शासक और शासित का रूप सबसे अधिक हिन्दू और मुसलमानों के उच्च वर्ग में प्रतिबिम्ब हो रहा था। समाज में प्रायः मर्यादा समाप्त हो चुकी थी। समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित हो चुका था-हिन्दू और मुस्लिम। हिन्दू समाज में जाति, वर्ग, छुआछूत आदि का बोलबाला था तथा मुस्लिम शासक सुरा-सुन्दरी में डूबे रहते थे। सामाजिक शोषण बढ़ता जा रहा था। धर्म के नाम पर समाज में अनेक बुराइयाँ पैदा हो गई थी मुस्लिम शासक अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे तथा हिन्दुओं के धार्मिक स्थल मंदिर आदि नष्ट करके उन्हें मुसलमान बनाने का प्रयास कर रहे थे ऐसे विषम समय में कबीर की वाणी ने जन-जन में नवीन स्फूर्ति एवं जागृति का संचार किया। उन्होंने खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति अपनाते हुये सामाजिक दुर्दशा पर आक्रोश व्यक्ति किया तथा व्यंग्य-बाणों की वर्षा से सभी का मार्ग प्रशस्त किया।
कबीर कवि अथवा सुधारक कबीर भक्त एवं सन्त पहले थे कवि बाद में। कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था वरन् परमात्मा की भक्ति करना और उसके ध्यान में लीन रहना ही उनका अभिष्ट था। उन्होंने तो मसी कागद छुआ ही नहीं था, फिर कवि कर्म का विधिवत् अध्ययन किस प्रकार करते ? अतः कविता करना उनका ध्यये नहीं था। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत दर्शनीय है- "कबीर मूलतः भक्त थे। भक्ति तत्व की व्याख्या करते-करते उन्हें उन बाल्यचारों के जंजालों को साफ करने की जरूरत महसूस हुई, जो अपनी जड़ प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतन तत्व उपलब्धि में बाधक हैं। यह बात ही समाज सुधार और साम्प्रदायिक ऐक्य की विधात्री बन गई है।"

यद्यपि कविता करना कबीर का ध्येय नहीं था, फिर भी कवि हृदय की सच्ची अनुभूति, सरसता एवं भाव प्रवणता उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है। उन्होंने समाज की विषमता, कृत्रिमता और आडम्बर को सीधे सरल ढंग से सहज ही अभिव्यक्त कर दिया है। साथ ही भक्त हृदय की भावुकता, विनम्रता, दैन्य और विषाद को भी उन्होंने वाणी दी है। ऐसे स्थलों पर उनका कवि रूप सजग रहा है। डॉ. शिव कुमार शर्मा ने सत्य लिखा है- 'कबीर के कवि में यचेष्ठ सरसता, द्रवणशीलता और मार्मिकता है कबीर का काव्य उस स्थान पर तो बहुत ऊँचा उठ गया है, जहां उन्होंने विरहणी आत्मा के स्पन्दन, हास और रूदन, मिलन बिछुड़ने के साकार चित्र अंकित कर दिए हैं। ऐसे स्थानों पर उनके संत साधक, कवि, भक्त, सुधारक और नेती समस्त रूप एक हो

गये हैं और दरअसल यहाँ पर उनका काव्य एक अलौक्रिक वस्तु बन गया है। स्पष्ट है कि कवि की शक्ति कबीर के पास थी। उसने जनता के तात्कालिक जीवन को अभिव्यक्ति दी। उन्होंने जनता की भ्रान्तियों को दूर करके नये जीवन का उद्घाटन किया और नये जीवन मूल्य की स्थापना करना सशक्त कृति का धर्म (कर्म) है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें इसी अर्थ में कवि माना है। वे जहाँ शुद्ध व्यंग्यात्मक भूमि पर उतर आते हैं, वहाँ बाहर से उपदेशात्मक होते हुए भी भीतर से कहीं कवि वृत्ति में रम जाते हैं। वास्तव में कबीर मूल रूप से कवि है। उनका प्रधान विषय है ज्ञान और अध्यात्म, लेकिन समाज से पांट कर चलने साला ज्ञान और आध्यात्मक कबीर का साध्य नहीं है। ये जिस समाज और सुग में रह रहे हैं, उनके प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना अपना धर्म मानते हैं। यही कारण है कि अनेक स्थलो पर वे एक अक्खड़ उपदेश या रुक्ष समाज सुधारक बन जाते हैं, जो समाज सुधार की धुन में काव्य और अध्यात्म को भूलकर सीधी सरल अभिब्यक्ति और व्यंग्य बौछार पर उत्तर आते हैं। कबीर का समाज सुधारक रूप-कबीर का समाज सुधारक रूप ही अधिक मुखर रहा है। समाज में व्याप्त वैमनस्य, पारस्परिक द्वैष, हिंसा, भेद-भाव छूआछूत और वर्णभेद देखकर उनका हृदय आक्रोश से भर उठा। उन्होंने सामाजिक कुप्रवृत्तियों, विषमताओं, आडम्बरों और अंधविश्वासों पर करारा व्यंग्य किया तथा समाज को श्रेष्ठ बनाने का भरसक प्रयास किया। कबीर का मूल उद्देश्य लोक कल्याण था। लोक कल्याण के भाव से प्रेरित होकर ही उन्होंने समाज के विविध चित्र प्रस्तुत किये।वास्तव में समाज सुधारक रूप में कबीर सर्वाधिक विख्यात रहे। वे दयानन्द सरस्वती की तरह समाज सुधारक नहीं हैं। उन्होंने दयानन्द की तरह किसी आर्य समाज जैसे नये समाज की स्थापना नहींकी ओर न ही 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखकर वैदिक संस्कृति का पुनरुस्थापन किया। उन्होंने तो जो जीवन भोगा है, अपने उन्हीं अनुभवों को सबके लाभ के लिये काव्यबद्ध कर दिया। डॉ. पंजाबीलाल शर्मा का मत दर्शनीय है- "ये (कबीर) अन्धविश्वासों, आडम्बर पाखण्डो और गतानुगतिकता के विरोधी तथा सच्चे सत्याग्रही थे, जीवन पर्यन्त सार-सत्य का सूप-वृत्तिः से संग्रह करने वाले बुराइयों से जूझने वाले थे।" कबीर के सुधारक रूप को निम्नलिखित रूपों से समझा जा सकता है- अ) हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल-कबीर के समय में हिन्दू और मुसलमानों में (पारस्परिक वैमनस्य बढ़ रहा था। मुसलमान शासक हिन्दुओं पर अत्याचर कर रहे थे तथा अधिकांश जनता को मुसलमान बना लेना चाहते थे। ऐसी विषम स्थिति में कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को निर्गुण ब्रहा की आराधना का उपदेश दिया और पारस्परिक द्वेष को दूर कर प्रेम भाव जगाने का भागीरथ प्रयास किया। उन्होंने कहा- हिन्द तुर्क की राह एक है सतगुरू इहै बत्तायी। (ब) बाह्यडम्बरों का विरोध-कबीर ने समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं बाह्यडम्बरो का प्रबल विरोध किया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों की उपासना पद्धतियों की आलोचना की। यथा- पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजें पहार। इस प्रकार,

ताते यह चाकी भली पीस खायसंसार ।।

काकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।

कबीर ने हिन्दुओं के संध्या तर्पण, जटा रखने, सिर मुडवाने शरीर पर भस्म लगाने आदि

सभी आडम्बरों का खण्डन किया। यथा-

क्या संध्या तरपन के कीन्हें, जो नहीं तत विचारा।

मूड मुडाय सिर जटा रखाए क्या तन लाए छारा।।

इतना ही नहीं, उन्होंने व्रत रखने, नमाज पढ़ने, तीर्थ और हज करने का भी विरोध किया।

उनके अनुसार तो सच्चे मन से निर्गुण ब्रह्म की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ उपासना है।

(स) जाति-पाति का खण्डन कबीर के समय में वर्ण-व्यवस्था का बोलबाला था।

महाग का पुत्र है तो माता के उदर (पेट) से ही क्यों पैदा हुआ किसी और मार्ग से संसार में क्यों पहीं आया-

"जओ तु ब्राम्हन-ब्राम्हनी जाया। आन बाट है क्यों नहीं आया। उन्होंने सभी को समझाते हुये कहा कि जाति से कुछ नहीं होता, हरि-भजन ही सवर्वोपरि है। जाति-पांति पूछे नहीं कोय हरि को भजै सो हरि का होय।

जाति के आधार पर पर भेदभाव का विरोध करते हुये बारम्बार समझाया कि सबमें उस परमात्मा का ही अंश है-

साधो एक रूप सब माँही।

अपने मनहिं विचारि के देखो दूसरो नाहीं।

एकै त्वचा रुधिर पुनि एकै विप्र सूद के भाहीं।

(द) कथनी करनी में एकरूपता-कबीर आजीवन लोक में व्याप्त भ्रान्तियों अंधविश्वासों और कुरीतियों के निराकरण का प्रयास करते रहे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी कथनी और करनी में एकरूपता। अर्थात् वे जो कहते, थे वहीं करते थे और करते थे वही कहते थे। उन्होंने जनता की भी कथनी-करनी के अभेद की स्थापना का उपदेश दिया। उनका विचार है-

कथनि तजि करनी करे, विष से अमृत होय।

(क) व्यंग्यपरकता कबीर ने समाज और धर्म प. बंदारों पर कड़ा व्यंग्य किया है।

उन्होंने जाति-पांति, पूजा-पाठ, तीर्थाटन, जप-तप, मंदिर-मस्जिद पण्डित शेख, मुल्ला-मौलवी और शक्ति सभी पर कड़े व्यंग्य बाण छोड़े हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में सत्य लिखा है- "सच पूंछा जाय तो आज तक हिन्दी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यन्त सादी किन्तु अत्यन्त तेज प्रकाशन-भगी अनन्य साधारण है।" व्यंग्य का एक उदाहरण देखिये- मूंड मुडाये हरि मिले तो सब कोई मूंड मूाय।

बार-बार के मूड़ते, भेड़ न बैकुण्ट जाए।

(ख) सदाचार की शिक्षा-कबीर ने समाज को सुधारने के लिये वैयक्तिक सुधार की आवश्यकता पहली बार समझी। इसलिए उन्होंने जनता को सदाचरण की शिक्षा दी। सदाचरण की शिक्षा में उन्होंने प्रेम, सत्य, अहिंसा, सन्तोष, सहृदयता, उदारता, अतिथि सेवा, संतजन समागम, ब्रह्मचर्य और सत्य की प्रतिष्ठा की। उन्होंने सत्य को सबसे बड़ां तप माना।

(ग) साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर बाप।

जाके हृदय समन्वयवादी दृष्टिकोण कबीर का दृष्टिकोण समन्वयवादी था। उन्होंने समाज, धर्म,

साच है, ताकि हृदय आप। दर्शन आदि विविध क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करते हुये ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण के समन्वय पर बल दिया कबीर ने भक्त के सभी रूपों में प्रेम भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है। कचीर ने भाषा के क्षेत्र में भी समन्वय स्थापित किया इसीलिए उन्होंने विविध भाषाओं और बोलियों के शब्दों का प्रयोग किया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि कबीर को समाज सुधारक कहकर साहित्य के क्षेत्र से अलग नहीं किया जा सकता है। कबीर का साहित्य ज्ञान और भक्ति दोनों वाहक है। और इस अर्थ में कबीर साहित्य रत्न हैं। अन्त में डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के शब्दों में "कबीर केवल कटु आलोचक ही नहीं थे, अपितु एक सच्चे समाज सुधारक भी थे और

उनकी इस आलोचना में सन्तुलित समदृष्टि एवं अद्भुत सुधार भावना भी निहित है। गही काल है कि कबीर ने जो कुछ कहा है, निष्पक्ष होकर कहा है। निर्द्वन्द्र होकर कहा है। यद्यपि चे सक सुधारक के रूप में विख्यात नहीं होना चाहते थे परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित होक उन्होंने यह महान् कार्य किया था।

1.13 कबीर के काव्य में व्यर्जित दार्शनिकता

उत्तर- कवि अपनी दृष्टि से सत्य को जिस रूप में देखता है उसे ही दर्शन अथवा दार्शनिक विचारधारा की संज्ञा दी जाती है। प्रत्येक युग की अपनी एक दृष्टि होती है। और कवि उस गु से अपनी दृष्टि ग्रहण करता है। कबीर जिस युग में और जिस साहित्य में पैदा हुए थे। उस समान

में धर्म ही दर्शन का रूप लिए हुए था। काव्य और दर्शन का सम्बन्ध-काव्य और दर्शन का परस्पर सम्बन्ध है। प्रत्येक स काव्य में दर्शन होता है। दर्शमहीन काव्य, काव्य नहीं हो सकता। इसलिए तो कवि को दृष्टा कर जा सकता है। 'महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगौर का मत है कि कोई भी व्यक्ति तब तक कवि नह हो सकता जब तक कि वह दार्शनिक न हो-

भारतीय मनीषी तो काव्य अथवा साहित्य के चार प्रयोजन अथवा हेतु मानते है- अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। ये सभी सत्य की स्थापना और असत्य के प्रतिकार के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। इस प्रकार प्राचीन भारतीय मनीषा दर्शन और काव्य का एक चिर-सम्बन्ध मानकर चली है।

इसलिए जहाँ दर्शन है, वहाँ काव्य की संरचना भी है।

कबीर दर्शन घर विभिन्न मतों का प्रभाव- डॉ. राजकुमार वर्मा ने अपने आलोचनात्मक इतिहास में निर्गुण सन्तों के काव्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हुए उन पर विभिन्न दर्शक का प्रभाव दिखाया है। जो इस प्रकार है- (1) सिद्धों का प्रभाव, (2) वाममार्गी शाखा, (3) नाथ, इस्लाम और सिद्धों का प्रभाव, (4) एकेश्वरवाद, (5) सूफी मत का प्रभाव, (6) वैष्णव

का प्रभाव, (7) भारतीय बेदान्त का प्रभाव। इन्हीं प्रवृत्तियों के प्रभाव के कारण सन्त काव्य की सामान्य विशेषतायें उन्होंने दिखा हैं-(1) निर्गुण की उपासना (2) अंहकार का त्याग (3) रूढ़ियों का विरोध (4) जाति पांति का विरोध (5) रहस्यवाद (6) परिभाषिक शब्दावली का प्रयोग। (7) प्रेम तत्व (सूफीमत (8) भाषा (जनभाषा के शब्दों का ग्रहण करना)। कबीर के ऊपर भी उपर्युक्त सभी दर्शनों का प्रभाव देखा जा सकता है और सभी प्रवृत्तिर उनके काव्य में उभरती हैं। उदाहरणार्थ- (क) भारतीय अद्वैत और वेदान्त का प्रभाव उपनिषद में ब्रह्म के विषय में कहा है। वह शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, रस रहित और गन्ध रहित है।' कबीर भी यही कहते है "नीति सरूप बरण नहीं, जाकै घटि-घटि रह्यो समाइ। ।"

पॉड ब्रह्मण्ड कथै सब कोई वाकै आदि अरूप सरु अन्त न होइ

(ख) सूफी सम्प्रदाय अथवा प्रेम तत्व- डॉ. सरनामसिंह ने लिखा है-जो लोग कहते हैं कि कबीर ने सूफी प्रेम साथना से कुछ नहीं लिया, वे हाथी को देखकर भी उस अस्थित्व का निषेध करते है। ऐसी बात है कबीर ने परमात्मा के कवेल प्रिय (पति) रूप ही अंगीकरण किया था अपितु माता-पिता, गुरु, स्वामी आदि अनेक रूपों में भी उन्होंने चिि किया है। सूफी सम्प्रदाय में इन सब रूपों को स्वीकार करने की स्वतंत्रता नहीं है। सूफियों के लिये परमात्मरा मांशूक है, आत्मा आशिक है और कबीर के दाम्पत्य साधनची है। सूफियों है और वे उनकी 'बहुरिया' है। पीव और बहुरिया के पीछे भारतीय दाम्पत्य जी करितीकों व्यंजना है उसमें सूफी मान्यता का भी पुट हैं।

(ग) वैष्णव मत का प्रभाव-कबीर पर वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव दिखाते हुए डॉ. त्रिगुणाय ने लिखा है- "कबीर में वैष्णवों के मत के सभी सारभूत तत्व विद्यमान हैं। अतः यह कहना है कि उनमें वैष्णवों के केबल प्रगति और अहिंसा तत्व ही मिलते हैं, अधिक उपर्युक्त नहीं है। निर्गुण राम का उपासक होने के कारण उन्हें वैष्णव न मानना उस महात्मा के साथ अन्याय करना है।"

कबीर में वैष्णवी दया, करुणा, परपीड़ानुभूति इत्यादि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। वे 'अंहिसा परमोधर्म" के समर्थक हैं। वे भक्ति को महत्व देते हैं किन्तु उसकी साधना की कठिनता का भी उन्हें ज्ञान है- "भगति दुबारा सांकरा, राई दसवें भाइ।

मन तो मंगल होइ रहा, क्यूँ करि सके समाइ।।" वैष्णव भक्त को वे सर्वोच्च पद प्रदान करते हैं-

कबीर धनि से सुन्दरी, जिनि जाया बैंसनौ पूत। "

राम सुसिरि निरभै हुवा प्रब जग गयां अऊत।।"

(घ) बौद्ध सम्प्रदाय का प्रभाव बौद्ध प्रवृत्ति भी कबीर में पायी जाती है। बौद्ध साहित्य में और बौद्ध दर्शन में इस संसार की क्षणभंगुरता पर निराशा व्यक्त की गई है-कबीर में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है। उदाहणार्थ-

"पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।

देखते ही छिप जायेगा, जस तारा प्रभात।।"

* (ड़) सिद्धों और नाथों का प्रभाव कबीर ने योग साधना, षडचक्र, इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि का वर्णन सिद्धों और योगियों के प्रभाव से किया है-

"सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार।

सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्यभ दुबारा।।"

(क) कबीर के काव्य में उनकी दार्शनिक विचारधारा की अभिव्यक्ति-कबीर ने भी तात्कालीन परिवेश और परिस्थतियों को दृष्टि में रखकर ब्रह्म और जगत तथा इन दोनों

के बीच माया आदि पर अपने विचार प्रकट किए हैं। मोक्ष आदि पर भी कबीर ने कुछ न कुछ

कहा है। इसी को दृष्टि में रखकर उनकी विचारधारा को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा

सकता है-

(ख) कबीर के ब्रह्म सम्बन्धी विचार-कवीर ने कहा कि हमारा ध्यान निर्गुण और

सगुण से परे हैं- "निर्गुण सगुण ते परै तहाँ हमारा ध्यान।

अब यह निर्गुण सगुण से परे क्या हो सकता है? निश्चित रूप से इस बीच की स्थिति का पता लगाना कठिन है। कबीर ने इस सम्बन्ध में कुछ बिचार प्रकट किए हैं-

"जाके मुख साथा नहीं, नाहि रूप कुरूप।

पुहुप वास ते पीतरा ऐसा तत्व अनूप।" इसमें जहाँ उन्होंने निर्गुणता को सराह करके सगुण की ओर झुकाव दिया है- ।हाँ अन्यत्र उसके स्वरूप को अन्तर स्थापित

"कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढे बन माँहि।

ऐसे घट-घट राम है, दुनिया देखे नाहिं।।"

कहीं-कहीं कबीर ने हरि का सम्बन्ध मानवीय एषणाओं की समाप्ति और असमाप्ति साथ जोड़ा है-

"जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहि। सब आंधियारी मिट गयो दीपक रेखा माँहि।"

(ग) जगत सम्बन्धी कबीर के विचार-कबीर ने भी जगत को मिथ्या ही माना है कि इतना नहीं जितना अद्वेतवादी मानते हैं। कबीर का माध्यम सूफियों का माध्यम है जो इसी जान के बीच से होकर ऊपर ब्रह्म तक पहुँचने की बात करते हैं। शंकराचार्य की तरह कबीर जग का त्याग करने की बात नहीं कहते। वे तो कहते हैं कि इस जगत और इस सत्ता के बीच इ माया बंधन को हटा दो और अपने आपका पहचाना। यद्यपि संसार के विषय में उन्होंने बड़ी निराश व्यक्त की है-

"यौ ऐसा संसार है जैसा सेंबल फूल।

दिन दस के व्यौहार को झूठे रंगि न भूल।"

किन्तु इसमें जो भान है वह अस्तित्वहीनता का भाव है, उनको छोड़कर कहीं अकर्मण होने का भाव नहीं है। जो ऐसा सोचते हैं वे कबीर को समझते ही नहीं।

(घ) जीवात्मा सम्बन्धी विचार-कबीर ने जीवात्मा को ईश्वर का अंश माना है आ उस अंश को कवीर उस ब्रह्म से जोड़ने का प्रयास करते रहे हैं। इसीलिए उन्होंने हठयोग का भी सहारा लिया है- "

कह कबीर इहु राम को अंसु।

जस कागद पर मिटै न मंसु।"

कबीर ने आत्मा और परमात्मा के बीच प्रिया और प्रियतम का सम्बन्ध जोड़ा।

प्रीतमकू पत्तियां लिखें, जो कही होय विदेश। "

तन में मन में नैन में, ताकि कहा संदेश।"

(ङ) मोक्ष विचार-कबीर भी मोक्ष का वही कारण मानते हैं जो अन्य सन्त मत में आता है अर्थात् माया की पहचान और उसका निराकरण जीव और ब्रह्म को एक साथ मिला देता है-

"जैसे जलहि तरंग तरंगनी, ऐसे हम दिखलायेंगे।

कहै कबीर स्वामी सुखसागर, हँसहि हँस मिलावेंगे।।"

उपसंहार-उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर में दर्शन का वैष्णव पक्ष ही अपने रूप में अधिक निखरा है यद्यपि उन पर अन्य विचार धाराओं के भी प्रभाव हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में- 'वे यशर्थतः न तो निर्गुणवादी हैं और वे सगुणवादी ही। उनके अनुसार वह परम तत्व निर्गुण तथा सगुण दोनों से परे की वस्तु और अनुभव में आने पर भी अनिर्वचनीय है।'

कबीर में अपने विचारों को जनसाधारण के हृदय तक पहुँचाने की अपूर्व क्षमता थी। क्योंकि

कबीर ने दर्शन गूढ़ातिगूढ़ सिद्धान्तों एवं बिचारों को अत्यन्त सरल एवं सुबोध बनाकर जनता के

सामने रखे हैं। कबीर ने अपने दार्शनिक विचारों को अत्यन्त सरल तथा सीधी-सादी भाषा मे

जनता के सामने प्रस्तुत किया है।

1.14 सारांश

कबीर हिन्दी के प्रथम रहस्यवादी कवि हैं। उनके अनेक पदों में अज्ञात, अव्यक्त पर सत्ता का तथा जीव तथा परमात्मा के नाना प्रकार के स्वरूपों का परिचय मिलता है। कथीर के विषय में कहा जाता है कि उनका रहस्यवाद वेदान्त (अद्वैतवाद) हटयोग एवं सूफियों के प्रेभतत्नों के आधार पर निर्मित हुआ है। वास्तव में यह ठीक भी है। वे अद्वैतवादी की भांति सभस्त जगत में उसी सत्ता को व्याप्त मानते हैं कबीर के रहस्यवाद का दूसरा पक्ष हठयोग पर आधारित है। सिद्धों और योगियों ने जिस पद्धति को जन्म दिया था, उसका परिष्कृत तथा परिवर्जित रूप हमें सन्तों में मिलता है। यदि इसमें कोई विकास देखा जाए तो यही कहा जाएगा कि संतों ने अपने रहस्यवाद को शुष्क तथा चौरस नहीं बनने दिया। उन्होंने उसमें प्रेम रस डालकर सरस बना दिया।

महर्षि पंतजलि तथा योगवसिष्ठाकर ने योग के सम्बन्ध में आठ अंगों का उल्लेख किया है यथा-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। कथीर ने अपने साहित्य में यद्यपि इनका उल्लेख किया है परन्तु उन्होंने ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया। वास्तव में कबीर ने अपने अनुभव के आधार पर इन नियमों को अधिक सरल तथा व्यवहारिक बनाने का प्रयत्न किया है। कबीर ने सामान्य रूप से योगमार्ग के निम्न तत्व स्वीकार किए है-पिण्ड, ब्रह्माण्ड की एकता, नाड़ी साधन, वायुसाधन, विविध प्रकार की मुद्राएँ, बहारन्ध्र, षट्चक्र, कुण्डलिनि, सुरति-निरति इत्यादि । कबीर ने मानव शरीर को ही पिण्ड स्वीकार किया है और यह अखिल ब्रह्माण्ड का लघु रूप है। बाह्य संसार में नदी पर्वत इत्यादि है वही मानव शरीर के नाड़ी-चक्र है। इसीलिए, बाह्य भावना की अपेक्षा कबीर ने अन्त साधना पर बल दिया है:-

कबीर के रहस्यवाद के अन्य सरस पक्ष भी है। उनमें एक सहृदय प्रेमी-साधन का हृदय झाँकता हुआ दिखाःग है।

इस पक्ष में कनगर के मुधर प्रसंग आते हैं। यह पद्म सूफी मत पर आधारित है। इस मत के अनुसार 'वन्दे' और 'खुदा' का एकीकरण हो सकता है। किन्तु अद्वैतवाद के विरुद्ध इसमें माया के स्थान पर 'शैतान' की परिकल्पना की गई है। 'महबूब' का घर सामने है। किसी 'मुरशिद' की आवश्यकता है। साधक मार्ग की कठिनाइयाँ पार करके 'मारिफत' की अवस्था को प्राप्त करता है। किन्तु इसके लिए जैसा कि कबीर ने लिखा है, गुरु की चौंसठ दीग जोड़ के चौदह चंदा मांहि। आवश्यकता है- किन्तु सूफियों की प्रधान विशेषता उनका प्रेमराज्य है। वे तो सदा अपने 'इश्क' में दिवाने रहते हैं। कबीर की रहस्यवादी भावना पर भी प्रेम का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। किन्तु इनके प्रेम में केवल यही अन्तर है कि जहाँ सूफी कबियों में 'खुदा' को स्त्री माना है वहाँ कबीर ने ने अपने को सिद्धि पर किसको चाँदिकुभ जिहि घर सतगुरु मांहिं ॥ 'राम की 'बहुरिया' माना है:-

दुलहनों गाव्हु मंगलचार,
हम बिर आये हो राजा रांम भरतार ॥

इसी प्रकार कबीर ने कहीं-कहीं अपने को राम का पुत्र भी माना है:- हरि जननी मैं बालक तोरा।

कबीर बास्तव में प्रेमोपासक रहस्यवादी कवि हैं (Loue Mystic) यदि कबीर का कोमल हृदय तथा उसकी मार्मिक टक्तियाँ देखनी हों तो कबीर का विरह पक्ष इसका ज्वलन्त उदाहरण है। प्रेम की कहानी 'अकंथ' है, अवर्णनीय हैं। इसका स्वाद तो निजी अनुभूति है:-

अकन कहाणि प्रेम की, कडू कही न जाई।
गूँगे केरी सरकरा, बैठे गुरकाई ॥

सूफी साधक सदैव एक अनन्त विरह की वेदना से व्यथित रहते हैं। जब तक आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार न हो जाए, तब तक चैन कहाँ? विरहिणी को प्रियतम की प्रतीक्षा में विरह की आग में निरन्तर जलना पड़ता है:- विरह सतावै भौइ को जिउ तडपै मोरा।

1.15 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- नीति काव्य की परम्परा में विद्यापति के गीतों का स्थान निरूपित करते हुए उसकी विशेषताओं का आकलन कीजिए।
- गीति काव्य की दृष्टि से विद्यापति के गीतों का मूल्यांकन कीजिए।
- हिन्दी गीति काव्य की परम्परा में विद्यापति के बोगदान की समीक्षात्मक आकलन कीजिए।
- "कबीर एक समाज सुधारक विद्रोही संत कवि थे" इस कथन की समीक्षा अथवा विचारधारा का मूल्यांकन कीजिए। कीजिए।
- समाज सुधारक के रूप में कबीर के व्यक्तित्व का मूल्याकंन कीजिए।

- "कबीर प्रगति शील समाज सुधारक है।" अपने मत व्यक्त कीजिए।
- "मध्ययुग में साम्प्रदायिकता और कट्टरता के विरुद्ध बिगुल बजाने वाले सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रभावी कवि कबीर ही थे" इस कथन की सोदाहरण व्याख्या करते हुए आज के समय में कबीर की प्रांसगिरकंता सिद्ध कीजिए।
- 'कबीर के दार्शनिक विचार, शीर्षक पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
- कबीर की दार्शनिक चेतना पर एक लेख लिखिए।
- समाज सुधारक के रूप में कबीर के व्यक्तित्व का मूल्याकंन कीजिए।
- "कबीर प्रगति शील समाज सुधारक है।" अपने मत व्यक्त कीजिए।
- "मध्ययुग में साम्प्रदायिकता और कट्टरता के विरुद्ध बिगुल बजाने वाले सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रभावी कवि कबीर ही थे" इस कथन की सोदाहरण व्याख्या करते हुए आज के समय में कबीर की प्रांसगिरकंता सिद्ध कीजिए।
- "कबीर ने अपनी सुधक्कड़ी भाषा में अनूठी अभिव्यक्ति की है।" अपना मत व्यक्त कीजिए।
- "कबीर की वाणी में स्थान-स्थान पर भावात्मक रहस्यवाद की झलक मिलती है, बह सूफियों के सत्संग का प्रसाद है।" शुक्लाजी के इस कथन से आप कहाँ तक सहमत है? लिखिए।
- कबीर की भक्ति पद्धति का सम्येक निरूपण कीजिए।
- कबीर की भक्ति वह लता है जो ज्ञान के खेल में प्रेम का बीज पड़ने से उत्पन्न हुई। उक्त कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिए।
- भक्ति कालीन ज्ञानाश्रयी काव्य परम्परा में कबीर का स्थान निर्धारित कीजिए।
- कबीर मूलतः भक्त कवि थे जिनकी वाणी में परोक्ष सत्ता के प्रति प्रेम की तीव्र भावना पाई जाती हैं।" अपने मत की सोदाहरण पुष्टि कीजिए।
- कबीर की भक्ति भावना के प्रमुख तत्वों की स्पष्ट व्याख्या कीजिए ।प्रश्न 5. विरह की दसों अवस्थाओं का विश्लेषण करते हुए विद्यापति के विरह-वर्णन की विशेषताओं का निरुपण कीजिए।
- विद्यापति के विरह-वर्णन की विवेचना कीजिए।
- विद्यापति की काव्य भाषा पर एक निबन्ध लिखिए।
- . "विद्यापति हिन्दी परम्परा के ही कवि हैं, किसी अन्य भाषा के नहीं।" इस कथन को पुष्ट करने के लिए विद्यापति की काव्य-भाषा का विश्लेषण कीजिए।
- विद्यापति की भाषा का मूल्यांकन कीजिए।
- विद्यापति भक्त है या श्रृंगारी है ? सतर्क विवेचन कीजिये।
- "विद्यापति भक्त कवि हैं, श्रृंगारी कवि नहीं।" इस कथन से आप कहाँ तक रहमत हैं ? तर्क सम्मत उत्तर दीजिए।
- "विद्यापति सौदर्य के कवि हैं।" सोदाहरण विवेच्चना कीजिए।
- विद्यापति वस्तुतः सौन्दर्य के कवि हैं। सौन्दर्य उनका दर्शन है, सौन्दर्य उनकी " जीवन दृष्टि।" इस मत की समीक्षा कीजिए।
- विद्यापति के काव्य-सौन्दर्य पर संक्षिप्त लेख लिखिए। अथवा
- "विद्यापति के काव्य में गीत तत्व, भाव सौन्दर्य के अनुरूप है, दोनों में अद्भुत समावेश है।" इस कथन की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
- "विद्यापति की पदावली में नख शिख सौन्दर्य का चमत्कारी और मनोहारी चित्रण हुआ है।" इस कथन का परीक्षण कीजिए।
- नीति काव्य की परम्परा में विद्यापति के गीतों का स्थान निरूपित करते हुए उसकी विशेषताओं का आकलन कीजिए।

- गीति काव्य की दृष्टि से विद्यापति के गीतों का मूल्यांकन कीजिए।
- हिन्दी गीति काव्य की परम्परा में विद्यापति के बोगदान की समीक्षात्मक आकलन कीजिए।

1.16 पठनीय पुस्तकें

1 कवीर ग्रंथावली- सं. डॉ० श्याम सुंदर दास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2 जायगी ग्रथावली सं आचार्य रामचंद्र शुक्ल- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3 हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि- डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना- श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4 हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ० नगेन्द्र व डॉ० हरदयाल मयूर मुक्र, नई दिल्ली
5 विद्यापति पदावली आनंद प्रकाश दीक्षित साहित्य मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर
6 हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7 पद्मावत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

इकाई – 2

मालिक मोहम्मद जायसी - पद्मावत, संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल

(मानसरोदक खण्ड एवं नागमती वियोग खण्ड)

रूपरेखा

2.1 प्रस्ताबना
2.2 उद्देश्य
2.3 शब्द सम्पदा
2.4 पद्मावत' का महाकाव्यत्व
2.5 जायसी का 'पद्मावत'
2.6 पद्मावत की प्रेम पद्धति की विवेचना
2.7 'जायसी का विरह वर्णन'
2.8 जायसी के रहस्यवाद की विशेषताएँ
2.9 सारांश
2.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
2.11 पठनीय पुस्तकें

2.1 प्रस्ताबना

जायसी का 'पद्मावत' अन्योक्ति है अथवा समासोक्ति, इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। बहुत से विद्वान 'पद्मावत' की कथा को अन्योक्ति मानते हैं, अर्थात् उनका विचार है कि 'पद्मावत' की कथा में आध्यात्मिक भाबना या जायसी के आध्यात्मिक रहस्यवाद को अभिव्यक्ति कथा-मूलक अन्योक्ति शैली में हुई है। इसके विपरीत बहुत से विद्वानों की धारण है कि 'पद्मावत' एक समासोक्ति-प्रधान रचना है अर्थात् 'पद्मावत' की कथा में आध्यात्मिक भावना या जायसी के आध्यात्मिक रहस्यबाद की अभिव्यक्ति कथा-मूलक समासोक्ति के माध्यम से हुई है। यहाँ हमें जायसी की 'पद्मावत' की कथा के सन्दर्भ में यही निश्चय करना है कि 'पद्मावत' एक अन्योक्ति है या समासोक्ति।

अन्योक्ति और समासोक्ति का स्वरूप

'पद्मावत' की कथा के सम्बन्ध में उसकी अन्योक्ति शैली या समासोक्ति शैली का निणार करने से पूर्व हमें अन्योक्ति और समासोक्ति के स्वरूप पर भी दृष्टि डाल लेनी चाहिये, तभी हम 'पद्मावत' के अन्योक्ति या समासोक्ति होने का समुचित निर्णय कर सकेंगे।

जिसमें अप्रस्तुत वर्णन के द्वारा किसी प्रस्तुत अन्योक्ति- अन्योक्ति एक अलंकार है, अर्थ की व्यंजना की जाती है। साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने अन्योक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है-

"क्वचिद् विशेषः सामान्यत, सामान्य वा विशेषतः । कार्यान् निमित्त कार्युद्ध हेतोरथ समात् समम् ॥ अप्रस्तुतात् प्रस्तुत चेद् गम्यते पंचधा ततः । अप्रस्तुत प्रशंसा स्यात्

इस प्रकार इस अप्रस्तुत प्रशंसा या अन्योक्ति अलंकार में ऊपर से वर्णन तो अप्रस्तुत विषय का होता है, परन्तु वास्तव में उसके द्वारा किसी प्रस्तुत अर्थ की व्यंजना की जाती है। स्पष्ट ही अन्योक्ति में वर्णित विषय को अप्रस्तुत या अप्रधान अर्थ. जिसकी व्यंजना करना कवि का वास्तविक लक्ष्य होता है। व्यंग्य होता है और वही प्रमुख भी होता है।

समासोक्ति अलंकारियों के अनुसार जहाँ प्रस्तुत के वर्णन द्वारा समान विशेषणों वा रिलष्ट पदों से अप्रस्तुत का भी बोध कराया जाय, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है। कवि भिखारीदास ने भी इसका स्वरूप विश्लेषण करते हुए लिखा है कि जहाँ प्रस्तुत के कथन में अप्रस्तुत का ज्ञान पाया जाये. उसका वर्णन किया जाये या जिससे अप्रस्तुत का वर्णन भी निकलता हो, वहाँ समासोक्ति अलंकार है. जिसकी पहचान कहीं वाचक और कहीं श्लेष से होती है-

"जहँ प्रस्तुत

में पाइए अप्रस्तुत को ग्यान।

कहुँ वाचक, कहुँ स्लेसते समासोक्ति पहिचान।।"

इस प्रकार समासोक्ति में प्रस्तुत या वर्णित विषय ही प्रधान होता है, हाँ उसके द्वारा अप्रस्तुत की व्यंजना भी रहती है। जहाँ अन्योक्ति में अप्रस्तुत प्रधान होता है, वहाँ समासोका प्रस्तुत अन्योक्ति और समासोक्ति के उपर्युक्त विश्लेषण की पृष्ठभूमि में अब

पद्मावत' अन्योक्ति या समासोक्ति '

यह विचार कर सकते हैं कि 'पद्मावत' अन्योक्ति है हम सरलता से है अथवा समासोक्ति अर्थात् 'पद्मावत' में वर्णित विषय (कथा) प्रधान है और उसके द्वारा किसी दूसरे अप्रस्तुत अर्थ (आध्यात्थिदमावत की व्यंजना भी की गयी है और वह अप्रस्तुत अर्थ (आध्यात्मिक व्यंजना) गौण है। आवा होता है तो 'पद्मावत' एक समासोक्ति है); अथवा 'पद्मावत' की वर्णित कथा अप्रस्तुत है अर्थात अप्रधान है और उसके वर्णन के द्वारा कवि का लक्ष्य वास्तविक अर्थ (आध्यात्मिक भावना) की व्यंजना करना रहा है। इस सम्बन्ध में हमें चार विचारधाराएँ मिलती हैं-

2.2 उद्देश्य

मालिक मोहम्मद जायसी - पद्मावत, को जान सकेंगे

(मानसरोदक खण्ड एवं नागमती वियोग खण्ड) को जान सकेंगे

2.3 शब्द सम्पदा

मालिक मोहम्मद जायसी

पद्मावत,

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

मानसरोदक खण्ड एवं नागमती वियोग खण्ड

2.4 पद्मावत' का महाकाव्यत्व

'अपभ्रंश' काव्ण के बाद 'पद्मावत' हिन्दी महाकाव्यों की परम्परा में दूसरा एवं श्रेष्ठ रचनाओ में महत्वपूर्ण महाकाव्य माना जाता है। फारसी की मसनवी शैली में लिखे गये इस महाकाव्य को ही आधार मानकर आगे चलकर तुलसी ने 'रामचरित मानस की रचना की। महाकाव्य कालो द्वारिका प्रबन्धकत्व एक आवश्यक तत्व है। यदि उसमें प्रबन्धकत्व नहीं है तो वह महाकाव्य हो को नहीं सकता। प्रबन्ध-काव्य के विषय में आचार्य शुक्ल जी का कथन है कि 'प्रवन्ध-काव्य में मानव-जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध श्रृंखला और स्वाभा के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले उसमें नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिये। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता।' प्रसिद्ध आचार्य आनन्दवर्द्धन ने अपने काव्य-निरूषक अन्य 'ध्वन्यालोक में प्रकाण काव्य की जो मान्यतायें निर्दिष्ट की है, वे इस प्रकार है-

1. ध्वन्यालोककार के अनुसार प्रबन्ध-काव्य में कवि भाव, विभाव, संचारी भाव के औचित्य मे रमणीयभूत ऐतिहासिक अथवा कल्पित कथावस्तु की प्रतिष्ठा करता है।

2. सफल प्रबन्धकार ऐतिहासिक कथा के उन अंशों को जिनसे रस-परिपाक में कोई सहायता नहीं मिलती, काट-छांट कर ऐसा बना देता है कि वे प्रभावोत्पादक एवं सरस प्रतीत होने लगते हैं। इस प्रकार रस की दृष्टि से कथा का संस्कार करना प्रबन्धकार का परम कर्तव्य है।

3. प्रबन्ध में समुचित वस्तु विन्यास पर भी प्रबन्धकार की दृष्टि अवश्य रहनी चाहिये। सन्धि सध्यंगों आदि का नियोजन परमापेक्षित है।

4. प्रबन्धकार को अपने अंगीरस के परिपाक पर सदैव दृष्टि रखनी चाहिये कहाँ पर उसका उद्दीपन किया जाना चाहिये, कहाँ पर उसका प्रशमन होना चाहिये तथा कहाँ पर किन अंगभूत रसों का परिपाक अपेक्षित है आदि बातों पर प्रबन्धकार की दृष्टि का होना नितान्त आवश्यक है। 5. प्रबन्धकाव्य में अलंकारों की योजना रसानुरूप होनी चाहिये। दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वान महाकाव्य के लिये प्रकथन प्रधान होना आवश्यक मानते हैं, उनके अनुसार उसमें आद्यन्त एक छन्द होना चाहिये, कथावस्तु दुखान्त, और उसमें उचित भावों एवं रसों का निरूपण होना चाहिये, कथानक में विविध घटनायें एवं ऐतिहासिकता के साथ ही पात्रों का चरित्र विश्लेषण होना चाहिये। इस प्रकार पाश्चात्य एवं पूर्वात्य धारणाओं का अनुशीलन करने पर यही प्रतीत होता है कि किसी प्रबन्धात्मक महाकाव्य के लिये पाँच तत्वों का होना आवश्यक है-कथावस्तु, नेता, रस, शैली और उद्देश्य। अर्थात् महाकाव्य में जीवन्त कथावस्तु होनी चाहिये, उसका नायक उदात्त गुण सम्पन्न ऐतिहासिक महापुरुष होना चाहिये, उसमें सभी उदात्त रसों का

निरूपण उन्नत एवं गरिमामयी शैली तथा महान उद्देश्य निहित होना चाहिये। अब हम तत्वों की दृष्टि से 'पदमावत' के महाकाव्य पर विचार करेंगे और यह देखेंगे कि महाकाय। कसौटी पर 'पद्मावत' कितना खरा उतरता है।

जीवन्त कथावस्तु-'पद्मावत' में जायसी ने जो कथा प्रस्तुत की है उसका जनश्रुतियाँ एवं लोक कथायें रही हैं, उसमें ऐतिहासिकता का प्रायः अभाव होते हुये उर्बर कल्पना का जो उत्कृष्ट रूप दिखायी पड़ता है उससे वह ऐतिहासिक ही प्रतीत होत इसकी कथा कालान्तर में इतनी अधिक लोकप्रिय हो गयी कि 'आईने अकबरी' के लेखक अकुत एवं कर्नल टॉड जैसे इतिहासकारों ने उसी कथा का वर्णन अपने इतिहासों में किया है। काल कथा को इतिहासकारों द्वारा अपनाया जाना ही इस तथ्य का प्रमाण है कि जायसी द्वारा इस कथा में कितना आकर्षण, स्वाभाविकता एवं जीवन्तता है। । इतना ही नहीं, एक और ने रतनसेन और पद्मावती की नितान्त काल्पनिक कथा को गोरा बादल और अलाउद्दीन से स करके इतिहास के निकट ला खड़ा कर दिया और दूसरी ओर जो घटनायें वर्णित की, उनमें सुश्रू तारतम्य और सुसम्बद्धता भी बनाये रखी, सम्पूर्ण महाकाव्य में रतनसेन-पद्मावती आधिकारिक कथा के साथ अन्य प्रासंगिक कथायें नितान्त रूप में सुसम्बद्ध है।

प्रबन्ध काव्य के लिये कथा की प्रवाहमयता आवश्यक है। उसकी कथा को अधिक और निर्वाध गति से आगे बढ़ना चाहिये और यह गुण 'पद्मावत' की कथा में है। जायसी ने कय की जीवन्तता को बनाये रखने के लिये उसमें प्रवाहमयता के साथ ही रोचकता का गुण भेक्ष दिया है। सम्पूर्ण कथानक 58 खण्डों में विभक्त होने के कारण कथा में पर्याप्त विस्तार आस है किन्तु कवि ने प्रासंगिक कथाओं को मूल और अधिकारिक कथा से कहीं भी अलग नहीं है। दिया है। उसकी कथा में विस्तार होते हुये भी एक ऐसी तरल जीवन्तता है कि वह एक उता महाकाव्य बन गया है।

2. उदात्त गुण सम्पन्न नेता-महाकाव्य के नायक को उदात्त गुणों से सम्पन्न होना चाहि 'पद्मावती' के नायक राजा रतनसेन में सभी आपेक्षित गुण मिल जाते हैं। उसके व्यक्तित्व में भारत महाकाव्यों में परिगणित सभी गुण यथा धीरता, वीरता, बुद्धि, उत्साह, क्षमा, दया, स्मृति, प्रत गौर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, माधुर्य, कला-कुशलता, विनय, स्वाभिमान, प्रियवादिता, महावंशत्व, श्रृंगारिका एवं गौरव भावना आदि यथोचित परिमाण में मिलते हैं। वह धीरोदात्त नायक है। उसके स्वप में धैर्य एवं गाम्भीर्य के साथ ही आदर्श प्रेम-भावना भी है। शौर्य तो उसके रक्त में है ही। है श्यामसुन्दरदास रतनसेन के उदात्त चरित्र की प्रशंसा करते हुये लिखते हैं कि रतनसेन पर्याप्त गम्यं है, पद्मावती के प्रति उसका प्रेम उन्माद नहीं है, वह एक दृढ़ और स्थिर प्रेम है। सिंहल के लौ समय गंधर्वसेन से कही गयी उसकी उक्ति विनयशीलता की घोषणा करती है। रतनसेन उच् क्षत्रिय बंश में उत्पन्न मानवता-प्रेमी व्यक्ति है और उसके चरित्र में तप एवं साधना का सुन्दर समना मिलता है। अपने अथक प्रयत्न के बल पर वह पद्मावती को प्राप्त करता है। काव्य के नापय के अतिरिक्त इसकी नायिका पद्मावती भी उदात्त गुणों से युक्त है। डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेन के शब्दों में कहें तो 'पद्मावती भी अनुपम रूप-सौन्दर्य के साथ-साथ आदर्श प्रेमिका है, आदा पत्नी है और बड़ी ही सच्चरित्र, पतिपरायण, कर्त्तव्यनिष्ठा सम्पन्न, कुशल, बुद्धिमती, दूरदर्श शीलगुण, समन्वित, अनुरागमयी तथा पतिपराण गृहिणी है।' ये दोनों पात्र नायक-नायिका हो। के साथ ही आदर्श प्रेम के प्रतीक भी है। इन दोनों के कारण ही 'पद्मावत' में एक उदात्तगुण सम्पन्न नायक के दर्शन होते हैं। नायिका यद्यपि यहाँ पद्मावती ही है। किन्तु रतनसेन की पहल पत्नी नागमती का चरित्र भी इस दृष्टि से उपेक्षणीय नहीं है। जो गुण पद्मावती में मिलते हैं वे किसे भी मात्रा में नागमती में न्यून नहीं हैं। इन दोनों के आदर्श चरित्रों की समन्वित झाँकी राजा रतनसेन की चिता पर उन दोनों के सती होने के समय के वर्णन में देखी जा सकती है, यथा--

आजु सूर दिन अथवा, आजु रैनी ससि बूढ़ा। आजु मीचि जिउ दीजिये, आजु अगि हम्ह जूड़ा। जियत केत तुम्ह इम्ह गर लाई। मुए कंठ नहि छोड़डि साई। औ जो गांठि कंत तुम्ह जोरी। आदि अंतलहि जाई न छोरी ।।

है होना चाहिये, जायसी ने भी अपने 'पद्मावत' में रसों का भरपूर प्रयोग किया है। तो इस महाकाव्य सभी रस उपलब्ध है कान्त इसका प्रधान रस श्रृंगार ही है। 'पद्मावत के इस महाक मैख्य है इसलिये इसमें श्रृंगार का अंगीरस के रूप में विद्यमान होना स्वाभाविक कुगार के दोनों पक्षों-संयोग एवं वियोग की सुन्दर रसात्मक व्यंजना अपने कही है। कानि है। यह वियोग श्रृंगार प्रधान काव्य है क्योंकि इसमें कवि ने अधिकांश रूप में वियोगका काव्य चित्रण किया है। नागमती के विरह वर्णन को तो हिन्दी साहित्य में अनुपमेय माना माजी चिमचन्द्र शुक्ल, 'जायसी ग्रंथावली' में लिखते हैं कि विप्रलम्भ श्रृंगार ही 'पद्मावत' में प्रग्यान है, विरह दशा के वर्णन में जहाँ कवि ने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया है, वहीं कार्य में प्रधान है, बीभत्स दृश्य नहीं आया है। कृशता, ताप, बेदना आदि के वर्णन में भी उन्होंने श्रृंगार के उपयुक वस्तु सामने रखी है, केबल उसके स्वरूप में अन्तर दिखा दिया है।' साथ ही कवि के उपयुक्त के वियोग वर्णन के भी अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'नागमती ब्रियोग खण्ड' में तो नावती ने विप्रलम्भ श्रृंगार का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया ही है, साथ ही नागमती संदेश खण्ड में भी पति

के प्रति अपना अक्षय प्रेम प्रकट करती विरहिणी नागमती यह संदेश भेजती है पद्मावती सौं कहेड्डू विहगम। कत लोभाइ रहि करि संगम ।।

तोहि चैन सुख मिलै सरीरा।

यो कहं दिए दुंद दुख पूरा।।

हमहुँ बियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर जीऊ।।

मोहि भोग सौं काज न बारी।

सौंह दिष्टि के चाहनहारी।। नहीं है कि कवि ने संयोग श्रृंगारी का वर्णन इतनी दत्तचित्तेता से

किन्तु इसका यह आशय नहीं किया जैसा वियोग-श्रृंगार का। वास्तविकता यह है कि जायसी की जितनी गहरी पैठ वियोग- श्रृंगार वर्णन में है उत उतनी ही ही संयोग श्रृंगार के वर्णन में भी है। कवि ने जहाँ संयोग के चित्र प्रस्ट किये हैं वे कवि की माधुर्य भावना के अनुकूल मादक एवं सजीव दिखायी देते हैं। श्रृंगार के अतिरिक बीर, शान्त, रौद्र, भयानक एवं वीभत्स रसों का भी सुन्दर परिपाक 'पद्मावत' में दृष्टिगत होता है। 4. परिमामयी शैली-जैसा कि हम पहले ही कह ह चुके हैं, जायसी पर फारसी काण का प्रभाव होने से उन्होंने 'पद्मावत' में फारसी-मसनवी शैली को व्यवह्रत किया है। इस सम्पूर्ण काव्य में दोहा-चौपाई छन्द के माध्यम से मसनवी शैली में इतनी विस्तृत कथा प्रस्तुत की गई है। मसनवी शैली का प्रयोग करके कवि ने उसके अनुरूप खण्डों में कथा को विभक्त किया। प्रारम्भ में ईश बन्दना, शाहेवक्त की प्रशस्ति, गुरु-प्रशंसा, आत्म-कथा तथा मुख्य कथा के प्रारूप को प्रस्तुत करने के उपरान्त मूल कथा का वर्णन इसमें किया गया है। सम्पूर्ण कथा यद्यणि 58 छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त की गयी है किन्तु इन सभी खण्डों में एकरूपता है। । इनके अतिरिक्त कवि ने वस्तु-वर्णन में भी मनोयोग का प्रदर्शन किया है। 'पद्मावत' का सिंहलद्वीग वर्णन, चित्तौड़गढ़ वर्णन, नख-शिख वर्णन, षटऋतु-वर्णन, संध्या-प्रातः वर्णन, निशा-निरूपण, सेना-वर्णन, युद्ध- वर्णन आदि बड़े ही सजीव एवं मर्मस्पर्शी हैं, जो कवि की महिमामयी शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसके साथ ही ही कवि ने अप्रस्तुत-विधान में भी बड़ी सतर्कता एवं शालीनता से काम लिया है। कवि ने अधिकांश उपमान तो प्रकृति के क्षेत्र से चुने हैं, किन्तु कुछ उपमान लोक जीवन से भी ग्रहण किये हैं, जिनके द्वारा साम्यमूलक, विरोधमूलक एवं तुलनामूलक अलंकारों में अत्यन्त सजीवता आ गई है। कवि जायसी के रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति,अप्रस्तुत प्रशंसा, विभावन, प्रयत्नीक, व्यतिरेक, दृष्टांत, सन्देह, अतिशयोक्ति, तद्गुण का निरूपण अत्यन्त हृदयस्पर्शी है।' (डॉ. द्वारिकानाथ सक्सेना)।

जहाँ तक भाषा-शैली की एकरूपता का प्रश्न है. 'पदमावत' में महाकाव्य के अ भाषा-शैली में सर्वत्र एकरूपता के दर्शन होते हैं। इस काव्य में आद्यन्त भाषा का एक मिलता है और उसमें अभिव्यक्ति की जिस पद्धति को व्यवहुत किया गया है वह सर्वचा अधि पूर्ण, सरस प्रपद्मावत में जायसी का उद्देश्य दो प्रकार का रहा है। एक और प्रवाहपूर्ण, एवं प्रभविष्णु है।

5. महत् तदा रतनसेन और पद्मावती की लौकिक प्रेम-कथा का आदर्श रूप ि कानापाता है जिसमें कवि ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से सूफी मत और सिद्धान्तों का निरु भी कर दिया है। दूसरी ओर इस लौकिक-प्रेम-कथा द्वारा आत्मा और परमात्मा के एकीकरण भी कर दिया है। इसकी आध्यात्मिक मोक्ष कामना और उसकी प्राप्ति का निधन अ सशक्त रूप में किया गया है। जो भी हो, व्यावहारिक अथवा कलात्मक अथवा धर्म-

साधनात्मव सभी दृष्टियों से इस काव्य का उद्देश्य अत्यन्त महान् है। डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के शब्ोंः सभी दुहियोद्मावत' में कवि ने आदि से अन्त तक यही सिद्ध किया है कि प्रेम संसार में मात है, प्रेम से ही अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है, प्रेम से ही एक प्रेमी अपनी अलौकिक मियानपा को प्राप्त करने के लिए विविध विघ्नों पर विजय प्राप्त कर सकता है, प्रेम से ही वह दिव्य प्रियटन को प्राप्त कर सकता है, प्रेम से ही जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होता है और प्रेम से हैं अन्त में जीवात्मा अपने पार्थिव केंचुल का परित्याग करके परमात्मा में विलीन होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। ऐसे उच्च आदर्श एवं महान् उद्देश्य का निरूपण करने के कारण ही 'पद्मावत में एक महाकाव्य की गरिमा विद्यमान है।'

अन्ततः निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि 'पद्मावत' में एक सफल प्रबन्ध कार के सभी गुण पाये जाते हैं। निस्सन्देह वह हिन्दी का एक श्रेष्ठ प्रेगगा थापरक महाकाव्य है। उसों कथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं जनश्रुतियों पर आधारित महापुरुष से सम्बद्ध है और उस सघटनात्मकता एवं एकात्मकता है। उसकी रचना-शैली अत्यन्त उन्नत कोटि की है जिसमें प्रार सभी रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। उसका नेता अथवा नायक भारतीय महाकाव्यों की मौत उन्नात एवं सौम्य चरित्र तथा शील-गुण-सम्पन्न है और उसका उद्देश्य अत्यन्त महान् है। कुल मिला- कर निर्विवाद रूप से इसे एक सशक्त महाकाव्य कहने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिये।

2.5 जायसी का 'पद्मावत' अन्योक्ति है अथवा समासोक्ति, इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। बहुत से विद्वान 'पद्मावत' की कथा को अन्योक्ति मानते हैं, अर्थात् उनका विचार है कि 'पद्मावत' की कथा में आध्यात्मिक भाबना या जायसी के आध्यात्मिक रहस्यवाद को अभिव्यक्ति कथा-मूलक अन्योक्ति शैली में हुई है। इसके विपरीत बहुत से विद्वानों की धारण है कि 'पद्मावत' एक समासोक्ति-प्रधान रचना है अर्थात् 'पद्मावत' की कथा में आध्यात्मिक भावना या जायसी के आध्यात्मिक रहस्यबाद की अभिव्यक्ति कथा-मूलक समासोक्ति के माध्यम से हुई है। यहाँ हमें जायसी की 'पद्मावत' की कथा के सन्दर्भ में यही निश्चय करना है कि 'पद्मावत' एक अन्योक्ति है या समासोक्ति।

अन्योक्ति और समासोक्ति का स्वरूप

'पद्मावत' की कथा के सम्बन्ध में उसकी अन्योक्ति शैली या समासोक्ति शैली का निणार करने से पूर्व हमें अन्योक्ति और समासोक्ति के स्वरूप पर भी दृष्टि डाल लेनी चाहिये, तभी हम 'पद्मावत' के अन्योक्ति या समासोक्ति होने का समुचित निर्णय कर सकेंगे।

जिसमें अप्रस्तुत वर्णन के द्वारा किसी प्रस्तुत अन्योक्ति- अन्योक्ति एक अलंकार है, अर्थ की व्यंजना की जाती है। साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने अन्योक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है-

"क्वचिद् विशेषः सामान्यत, सामान्य वा विशेषतः । कार्यान् निमित्त कार्युद्ध हेतोरथ समात् समम् ॥ अप्रस्तुतात् प्रस्तुत चेद् गम्यते पंचधा ततः । अप्रस्तुत प्रशंसा स्यात्

इस प्रकार इस अप्रस्तुत प्रशंसा या अन्योक्ति अलंकार में ऊपर से वर्णन तो अप्रस्तुत विषय का होता है, परन्तु वास्तव में उसके द्वारा किसी प्रस्तुत अर्थ की व्यंजना की जाती है। स्पष्ट ही अन्योक्ति में वर्णित विषय को अप्रस्तुत या अप्रधान अर्थ. जिसकी व्यंजना करना कवि का वास्तविक लक्ष्य होता है। व्यंग्य होता है और वही प्रमुख भी होता है।

समासोक्ति अलंकारियों के अनुसार जहाँ प्रस्तुत के वर्णन द्वारा समान विशेषणों वा रिलष्ट पदों से अप्रस्तुत का भी बोध कराया जाय, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है। कवि भिखारीदास ने भी इसका स्वरूप विश्लेषण करते हुए लिखा है कि जहाँ प्रस्तुत के कथन में अप्रस्तुत का ज्ञान पाया जाये. उसका वर्णन किया जाये या जिससे अप्रस्तुत का वर्णन भी निकलता हो, वहाँ समासोक्ति अलंकार है. जिसकी पहचान कहीं वाचक और कहीं श्लेष से होती है-

"जहँ प्रस्तुत
में पाइए अप्रस्तुत को ग्यान।
कहुँ वाचक, कहुँ स्लेसते समासोक्ति पहिचान।।"

इस प्रकार समासोक्ति में प्रस्तुत या वर्णित विषय ही प्रधान होता है, हाँ उसके द्वारा अप्रस्तुत की व्यंजना भी रहती है। जहाँ अन्योक्ति में अप्रस्तुत प्रधान होता है, वहाँ समासोका प्रस्तुत अन्योक्ति और समासोक्ति के उपर्युक्त विश्लेषण की पृष्ठभूमि में अब

पद्मावत' अन्योक्ति या समासोक्ति '

यह विचार कर सकते हैं कि 'पद्मावत' अन्योक्ति है हम सरलता से है अथवा समासोक्ति अर्थात् 'पद्मावत' में वर्णित विषय (कथा) प्रधान है और उसके द्वारा किसी दूसरे अप्रस्तुत अर्थ (आध्यात्थिदमावत की व्यंजना भी की गयी है और वह अप्रस्तुत अर्थ (आध्यात्मिक व्यंजना) गौण है।

आवा होता है तो 'पद्मावत' एक समासोक्ति है); अथवा 'पद्मावत' की वर्णित कथा अप्रस्तुत है अर्थात अप्रधान है और उसके वर्णन के द्वारा कवि का लक्ष्य वास्तविक अर्थ (आध्यात्मिक भावना) की व्यंजना करना रहा है। इस सम्बन्ध में हमें चार विचारधाराएँ मिलती हैं-

1. 'पद्मावत' का कोई निश्चित आध्यात्मिक अर्थ नहीं है, कवि ने केवल अपना भौतिक व लौकिक भावनाओं पर आध्यात्मिकता का आवरण चढ़ाने के लिए अपनी कथा के अन्त में एक विस्तृत अन्योक्ति का क्रम देने की चेष्टा की है। प्रसिद्ध विद्वान श्री शिरेफ साहब की धारणा ऐसी ही है। 2. 'पद्मावत' एक विशुद्ध अन्योक्ति काव्य है सम्पूर्ण कथा में एक व्यवस्थित प्रस्तुत अर्थ है और वर्णित कथा सर्वथा अप्रस्तुत है।

3. 'पद्मावत' एक समासोक्ति काव्य है। उसमें कवि ने प्रस्तुत वर्णनों में यत्र-तत्र-सर्वत्र एक आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना की है, जो अप्रस्तुत है। अतः समस्त कथा समासोक्ति ही है, अन्योक्ति नहीं। आचार्य शुक्ल का यही विचार है।

4. 'पद्मावत' में जायसी ने समष्टि रूप से सम्पूर्ण कथा को अन्योक्ति के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, साथ ही कुछ फुटकर प्रसंगों की दृष्टि से कवि ने स्थान-स्थान पर अप्रस्तुत आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना भी है। । 'पद्मावत' की कथा के सम्बन्ध में वह चौथी विचारधारा डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने अभिव्यक्ति की है। उन्होंने विस्तार से लिखा है, "अन्योक्ति के साथ-

6] साथ कवि समासोक्ति के नियोजन में भी सफल हो गया है। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि जब सम तथा अन्योक्ति दोनों की प्रकृति पर परस्पर एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होती है तो एक ही क में इन दोनों काव्य-शैलियों की अवस्थिति कैसे मानी जा सकती है।। कहना है कि 'पद्मावत' आध्यात्म-प्रिय साधकों के इस सम्बन्ध में मे के लिए तो अन्योक्ति है। उनकी सृष्टि से से लौकिक अर्थ अप्रस्तुत कहा जायेगा तथा इसका आध्यात्मिक अर्थ प्रस्तुत होगा। इसके वि लौकिक व्यक्तियों के लिये 'पदमावत' एक लौकिक काव्य है तथा उसका कथा-परक अ प्रस्तुत अर्थ है। उसमें बीच-बीच में कवि ने केवल अपनी आध्यात्म-प्रियता व्यंजित करते व्यंजना कर दी है। इस दृष्टि-भेद के कारण

अन्योक्ति भी है और समासोक्ति भी।" विउपर्युक्त चारों मतों में युक्ति-युक्तता का निर्णय करने के लिए अब 'पद्मावत' की का विश्लेषण करना होगा। मुख्य रूप से हमें यही विचार, में रखना है कि 'पद्मावत' किस

अन्योक्ति या समासोक्ति या दोनों हैं।

'पद्मावत' के अन्योक्ति होने का मूल्यांकन

""पद्मावत' को एक अन्योक्ति मानने का आधार 'पद्मावत' के अन्त में कवि के निम्नलिि कथन हैं (जिसे अब प्रक्षिप्त माना जा चुका है) -

"मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछु और न सूझा। चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुस के घट माहीं।।

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय-सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा।।

गुरू सुआ जो पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।।

नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न जो एहि चित बंधा ।।

राधव प्रेम कथा ऐहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु ।।"

दूत सोइ सैतानू। माया अलादीन सुलतानू ।।

ये पंक्तियाँ डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने प्रक्षिप्त स्वीकार की हैं और इन्हें अपने 'पद्मावत में स्थान नहीं दिया है। इस प्रकार इन प्रतीकों का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता और 'पद्मावत को अन्योक्ति मानने का सारा आधार ही समाप्त हो जाता है। फिर भी, यदि किसी कारणवर या दो-एक प्रतीकों में इनके मिल जाने से, इन्हें प्रक्षिप्त न भी माना जाये तो भी 'पद्मावत' को अन्योक्ति नहीं कहा जा सकता, जिसके निम्नलिखित कारण हैं-

(1) उपर्युक्त प्रतीक कोप के अनुसार मन के दो प्रतीक-रत्नसेन और सिंहल उपर्युक्त नहीं होते। (2) नागमती को दुनियाँ धंधा या माया नहीं कहा जा सकता, क्योकि स्वंय कवि ने रत्नसेर के मुख से नागमती को निष्ठावान् कहलाया है, रत्नसेन नागमती और पद्मावती दोनों से ही समान व्यवहार करता है, नागमती और पद्मावती दोनों एक साथ ही पति की चिता पर बैठकर सती हो जाती हैं, नागमती के जलन से भी स्वग रतनार ही होता है काला नहीं। (3) मन (रत्नसेन) और बुद्धि (पद्मावत) का समन्वय हो जाने पर माया द्वारा उनका विच्छेद नहीं हो सकता।

इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उपर्युक्त प्रतीक कोष जायसी के 'पद्मावत' पर लागू नहीं होता। उसमें सम्पूर्ण कथा में कवि अन्योक्ति का सफलता पूर्वक निर्वाह नहीं कर सका है। इसका कारण मुख्य रूप से कथा-विस्तार का लोभ है जिसके प्रवाह में पड़कर कवि अन्योक्ति पक्ष को भूल जाता है। भावपूर्ण और रोचक कथा में स्वाभाविक रूप से किसी अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना कर सकना यों भी दुस्साध्य है। फिर, जैसाकि स्वयं डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने जो 'पद्मावत' की कथा में अन्योक्ति का समावेश मानते हैं, स्वीकार किया है कि जायसी ने 'पद्मावत' की कथा में

अन्योक्ति में एकाधिक (कुल तीन) पक्षों की व्यंजना की है- प्रस्तुत प्रत्यक्ष पक्ष, जो पंडितों द्वारा दिया गया अर्थ है, प्रस्तुत-अप्रत्यक्ष पक्ष जो सूफी साधना से सम्बन्धित अर्थ है

और अप्रस्तुत पक्ष जो कथा के वास्तविक वर्णन से सम्बद्ध है। फल यह हुआ कि जायसी किसी श्री एक पक्ष का ठीक से निर्वाह नहीं कर सके हैं। इसके साथ ही जायसी पर सूफी साधना, हठयोग- वेदशास्त्र और वेदान्त दर्शन आदि अनेक वादों का सम्मिलित अंजना में एकनिष्ट नहीं रहने देता। प्रभाव है जो उन्हें अपनी विशिष्ट

अन्योक्ति का समावेश माना है। ऐसे कुछ स्थल हैं-राजा रत्नसेन की च्वाभावि बस्था (हाल की व्यवस्था), सिंहलगढ़-वर्णन आदि। स्यष्ट ही कुछ प्रसंगों में अन्योक्तिपरक अर्थ ने कुछ रमते लगाना पूरी कथा को अन्योक्ति प्रमाणित नहीं करता। साथ ही यह मानना भी उपयुक्त नहीं है कि आध्यात्मप्रिय व्यक्तियों के लिए 'पद्मावत' अन्योक्तिपरक है तथा। समासोक्तिपरक । इस प्रकार की कल्पनाएँ तो विद्यापति के काव्य के लौकिक व्यक्तियों के लिए:

है, जो घोर श्रृंगारिक है। सम्बन्धों में भी की जा सकती इस प्रकार 'पद्मावत' को अन्योक्ति नहीं कहा जा सकता और इस दृष्टि से पद्मावत की आध्यात्मिकता से सम्बन्धित दूसरा और चौथा मत कि 'पद्मावत' एक अन्योक्ति है, असत्य प्रमाणित

हो जाता है। पद्मावत' : एक समासोक्ति '

'पद्मावत' की कथा का जिस रूप में वर्णन किया गया। है, वही प्रस्तुत स्थल ऐसे हैं जहाँ एक अप्रस्तुत अर्थ लगाया जा सकता है। इन्हीं स्थलों परत है। उसमें कुछ काव्य में आध्यात्मिक व्यंजना की है। डॉ. रामकुमार वर्मा का निम्नलिखित करनायासी ने अपने सम्बन्ध में नितान्त उपयुक्त है, जायसी का संकेत विशेष-विशेष स्थलों पर ही है, साईभावना के घटना-पक्ष आध्यात्मवाद से नहीं मिल सका है।' 'पद्मावत' में जिन विशेष स्थलों पर जायसी आध्यात्मिकता की व्यंजना कर सके हैं या जिनमें प्रस्तुत अर्थ के साथ-साथ अप्रस्तुत अर्थ का भी महत्वपूर्ण स्थान है, उनमें से कुछ स्थल है, उनमें से कुछ स्थल ये हैं-सिंहलद्वीप-वर्णन, मानसरोदक खंड के वर्णन सिंहलगढ़ वर्णन, पद्मावती का नख-शिख-वर्णन प्रेम-खंड के वर्णन आदि। ये सारे वर्णन और प्रसंग सूफी भावात्मक प्रेम और ईश्वरीय साधना के अनुकूल है। जायसी ने सूफी भावात्मक प्रेम को अपने काव्य में आध्यात्मिक स्थान दिया है। सूफी मत के अनुकूल परमसत्ता की प्रेम और सौन्दर्यमय कल्पना भी उनके काव्य में मिलती है। यहाँ 'पद्मावत' के कुछ समासोक्ति-परक स्थलों का उल्लेख और विवेचन किया जा रहा है।

'पद्मावत' के समासोक्ति-परक प्रसंगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान राजा रत्सेन की मूच्छिंतावस्था के वर्णन का है। पद्मावती-रूपी परमसत्ता के अलौकिक सौन्दर्य के वर्णन- मात्र से रत्नसेन उसी प्रकार मुग्ध हो जाता है, जिस प्रकार भक्त परमात्मा के सौन्दर्य पर मुग्ध होता है। रत्नसेन की मुग्धावस्था का चित्रण भी कवि ने उसी रूप में किया है, जिस प्रकार ब्रह्म के साक्षात्कार की स्थिति में भक्त की दशा होती है।

'सात-समुद्र खण्ड' में अधिकांश वर्णन समासोक्तिपरक हैं निम्नलिखित पंक्तियों में राजा रत्नसेन के सातवें समुद्र में पहुँचने पर दुःख की सारी छाया का हट जाना, आनन्द का प्रसार होना, सूर्य किरण का उदय होना कहकर साधक का अपनी साधना का अपनी साधना के निकट पहुँचना, उस समय सारे भ्रमों और संतापों का दूर हो जाना और आत्मा का अपने शुद्ध स्वरूप की और

अग्रसर होना व्यंजित किया गया है- "देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइन होइ छावा।।

अंधियार रैनि मसि छूटी। भा भिनसार किरन रवि फूटी ।।

अस्ति अस्ति सब साथी बोले। अंध जो अहै नैन विधि खोले।।"

पद्मावती का नख-शिख वर्णन भी अपना समासोक्तिपरक अर्थ रखता है। निम्नलिखिन्न

पंक्तियों में उसी परम सत्ता के सौन्दर्य की झाँकी समासोक्ति के सहारे व्यंजित की गई सौन्दर्य से ही संसार की सारी वस्तुओं को सौन्दर्य की प्राप्ति होती है. नक्षत्र और सूर्य

अनन्त सत्ता की ज्योति से ज्योतित होते हैं- "जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहते जोति ओहि जोति भई ।।

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती ।। जहें-जह बिर्हसि सुभावहिं हँसी। तह तह छिटकि जोति परगसी।

'मानसरोदक-खण्ड' का पदमावती-सौन्दर्य-वर्णन भी समासोक्तिपरक है। यहाँ जायसी रे सत्ता के व्यापक प्रभाव की ही व्यंजना की है। उस अनन्त सौन्दर्य के स्पर्श से ही मा कामनाएँ पर्ण हो जाती हैं। तन-मन निर्मल हो जाता है। निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्ट

"कहाँ मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई ।। भा निरमल तेन्ह पायन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरसे।।"

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थानों पर समासोक्ति शैली का प्रयोग ही जायसी में मिला। रिस इसी प्रकावर्णन करते हुए कवि वृक्षों की छाया प्रसंग आते ही स्तन की करता है और कहता है कि जिसने यह अनुपम छाया प्राप्त की, वह फिर इस धूप में आका करता है पद्मावती की विदा के समय के संवाद भी समासोक्तिपरक हैं। प्रेम-खण्ड के सा राजासुआ-संवाद ('सात-समुद्र-खण्ड' में) और 'पद्मावती रत्नसेन-भेंट-खण्ड' में पदया सखियों की बातचीत भी एक अप्रस्तुत अर्थ रखती है।

निष्कर्ष- इस प्रकार 'पद्मावत' की वर्णित कथा प्रस्तुत है जिसमें स्थान-स्थान पर ने समासोक्ति के सहारे अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना भी की है। अन्त में हम आचार्य रामचन्द्र से के निम्नलिखित शब्दों के उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। "यदि कति। स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्य अर्थ को ही प्रधान या प्रस्तुत मानें, तो जहाँ-जहाँ दूसरे अर्थ। निकलते हैं, वहाँ-वहाँ अन्योक्ति माननी पड़ेगी। पर ऐसे स्थल अधिकतर कथा के अंग है के पढ़ते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो ही नहीं सकती। अतः स्थलों के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत नहीं कह सकते। इस प्रकार वाच्यार्थ के प्रस्तुत और व्यं ां गा के अप्रस्तुत होने ने ऐसी जगह सर्वत्र समासोक्ति ही माननी चाहिये। 'पद्मावत' के सारे वाल के दोहरे अर्थ नहीं हैं, सर्बत्र अन्य पक्ष के व्यवहार का आरोप नहीं है। केवल बीच-बी में कहते कहीं दूसरे अर्थ की व्यंजना होती है। अतः इन स्थलों में वाच्यार्थ से अन्य अर्थ, जो साथरू पक्ष में व्यंग्य रखा गया है, वह प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से अप्रस्तुत ही कहा जा सकता है की समासोक्ति ही माननी पड़ती है। "डॉ. शिवसहाय पाठक ने भी इस सम्बन्ध में अधिकतर सह वक्तव्य दिया है, जो इस प्रकार है, "इस प्रसंग में इतना कहना पर्याप्त है कि जिन पंक्तियों (का) चितउर मन राजा कीन्हा) के आधार पर जायसी की सम्पूर्ण कथा को अन्योक्ति सिद्ध करने क प्रयास किया गया है, वे पंक्तियाँ जायसी-कृत नहीं हैं। वे पंक्तियाँ 'पद्मावत' में प्रक्षिप्त है औ यदि वे प्रक्षिप्त न भी हों, तो भी 'पद्मावत' में समासोक्ति-पद्धति ही सिद्ध होती है।"

2.6 पद्मावत की प्रेम पद्धति की विवेचना

प्रधानता प्रेम तत्व को ही दी गई है। पदमावत की कथा का मूलाधार ही प्रेम है और सम्पूर्ण अन्य में प्रेम के विविध रूपों का ही 'उद्घाटन महाकवि जायसी ने किया है। हिन्दी प्रेमाख्यान के काव्यों के उत्स के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "हमारा अनुमान है कि सुफी कवियों ने जो कहानियाँ ली हैं वे सब हिंदुओं के घरों में बहुत दिनों से चली आती हुई कहानियों है जिनमें आवश्यकतानुसार उन्होंने कुछ हेर-फेर किया है. कहानियों का मार्मिक आधारबिन्द है।" जारी है। उसने सकि ने पिद्मावत' में इन कहानियों की चर्चा की है- "बहुतन्ह ऐव जीव पर खेला। तू जोगी कित आहि अकेला। विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति करें गयेठ पतारा।।"

राजा रत्नसेन को हीरामन तोते के संदेश के द्वारा इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि जायते से पूर्व स्वप्नावती, मुग्धावती, मधुमालती एवं प्रेमावती आदि प्रेम कमाओं की कहानियों समय से पलित ।। पद्मावत के सम्बन्ध में आचार्य शुक्लजी लिखते है- 'यह एक प्रेम उस सम पूर्ण जीवन गाथा नहीं।" पद्द्मावत का अधिकांश भाग प्रेम विबरणों से ही भरा है। प्रेमकती है।

उत्कर्ष 'पद्मावत' में अपनी महानता को स्पर्श कर रहा है। महाकवि जायसी के 'पद्मावत' चित्तौडगढ़ के राजा रत्लासेन और सिहालगढ़ की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम और उनके मिलन की कथा है। रत्नसेन हीरामन तोते द्वारा पद्मावती के सा का वर्णन सुनकर, राजपाट आदि का परित्याग कर उसे प्राप्त करने के लिए चल देता है। राजा रत्नसेन अनेकानेक विघ्न-बाधाओं को पारकर अन्ततः पद्मावत को प्राप्त करता है। अतः स्पष्ट है पद्मावत में प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति ही प्रधान है।

आध्यात्मिक और लौकिक प्रेम का सामंजस्य

डॉ. राजकुमार वर्मा - "जायसी ने अपने पद्मावत की कथा में आध्यात्मिक व्यंजना रखी

है। ..... पर जायसी इस आध्यात्मिक संकेत को पूर्ण रूप से नहीं निबाह सके।"

डॉ. रामचंद्र शुक्ल - "(इस काव्य में) एक प्रबन्ध के भीतर शुद्ध भाव (रति भाव) के स्वरूप ऐसा उत्कर्ष, जो पार्थिव प्रतिबन्धों से परे होकर आध्यात्मिक क्षेत्र में जाता दिखाई पड़े, जायसी का प्रमुख लक्ष्य है।"

कई विद्वान इस बात से सहमत हैं कि पद्मावती और रत्नसेन का लौकिक प्रेम आध्यात्मिकता को भी लिए हुए है। वे इससे सहमत हैं कि लौकिक रूप में पद्मावती की कथा रानी पद्मावती और राजा रत्नसेन की प्रणय कथा है, लेकिन आध्यात्मिक अर्थ में वही कथा परमात्मा और जीवात्मा में मिलन की कथा है। पद्मावत में जायसी का उद्देश्य लौकिक कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम व्यंजना करना ही रहा है। पद्मावती में लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम की व्यंजना जायसी ने की है।

रूपक द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना जायसी ने रत्नसेन और पद्मावती की साधारण मानवीय कथा द्वारा आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक मिलन की व्यंजना की है। इस कथा में रत्नसेन सच्चे साधक का प्रतीक है। हीरामन तोता गुरु का तथा पद्मावती बुद्धि का प्रतीक है। नागमती साँसारिक जंजाल है, जो ईश्वर मिलन में बाधक है। राघवचेतन शैतान है, जो प्रेम का ठीक मार्ग न बताकर, मन को इधर-उधर भटकाता है। अलाउद्दौन ही माया है। इस रूपक को जायसी ने पद्मावती के अन्त में स्पष्ट किया है-

"तन चितउर मन राजा कीन्हा।

हिय-सिंघल बुद्धि पदमिन चीन्हा।।

गुरु सुआ जो पंथ दिखावा।

बिना गुरुन को निरगुन पाया।।

नागमती यह दुनिया धन्धा। बाँधा सोइ न एहि चित बन्धा ।। राघव दूत सोइ सैतानू । माया अलादीन सुलतानू ।। प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लैहु जो बूझै पारहुँ।।"

पद्मावत के इस रूपकत्व के सम्बन्ध में एक स्थान पर कवि कहता है कि इसके को बड़े-बड़े ज्ञानी नहीं समझ पाये हैं।

"मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा।।" लौकिक सौन्दर्य द्वारा अलौकिक सौन्दर्य की व्यंजना

जायसी ने पदमावती के का वर्णन करते-करते मुग्ध होत का विस्तृत वर्णन किया है लेकिन कवि लौकिक सौन्दर्य का आभास देता चलता है। जिस प्रकार राजा रत्नसेन पद्मावती के सौन्दर्य पर कुसी प्रकार भक्त भी ईश्वर के सौन्दर्य पर मोहित होता है। रत्नसेन की अवस्था का चित्रग उसी प्रकार भक्त किया है। पद्मावती का अलौकिक सौन्दर्य है, जिसे देख रत्नसेन की त अवस्था हो जाती है।

"सुन तहि राजा लगा मुरझाई। जानौ लहरि सूरज के आई।।"

कवि कई स्थानों पर पद्मावत के अनन्त सौन्दर्य की ओर संकेत करता है। निम्मलि

पंक्तियों में उसका लोकोत्तर सौन्दर्य देखिए-

"जेहि दिन दमन जोति निरमई बहुते जोति जोति ओहि भई ।। रवि ससि नखत दियहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोति ।। जहँ-तहँ विहंसि सुभावसि हँसी। तहँ-तहँ छिटक जोति परगसी।।"

पद्मावती के दाँतों की कान्ति ने ही संसार में अनेक प्रकाश उत्पन्न कर दिये सूर्य, चन्न और नक्षत्र उसी प्रकार से दीप्तिमंत है। वह सुन्दरी जहाँ-जहाँ अपनी सुन्दर हँसी बिखेरत वहीं-वहीं प्रकाश उत्पन्न हो जाता है।

पद्मावती का सौन्दर्य सृष्टि व्यापी सौंदर्य है। उसके सौंदर्य में पवित्रता और दिव्यता। इस सौंदर्य के दर्शन मात्र से कई जन्मों के पाप समाप्त हो जाते हैं और दर्शक का जीवन हो जाता है। पद्मावती जब मानसरोवर में प्रवेश करती है तो वह आपको भाग्यशाली अनुष करता है। उसने जो कुछ जीवन में चाहा मानो वह प्राप्त हो गया। उस पद्मावती के पैरों का स पाकर वह स्वच्छ हो गया, उसके दर्शन से सौंदर्य प्राप्त कर लिया-

"कहाँ मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई ।। भी निरमल तिन्ह पायन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरसे ।।

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर। हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग हीर ।।

प्रेम और विरह क का व्यापक वर्णन सफी कवियों • संसार के समस्त व्यापारों को आध्यात्मिक प्रेम की छाया के रूप में दिखा है। जायसी इसी रूप में चित्रित करते हैं. जायसी के अनुसार प्रेम में अपारवहोता है।

के ताप से समस्त संसार स्वर्ग और पाताल भी जलने लगते हैं। नत्र तारे, चन्द्र और पूर्व बिरह से जल रहे हैं-

"विरह रातहिं की आग सूर जरि काँपा।

दिवस जरै ओहि तापा। नखत तराई जरहीं।

ओमन टूटहि लुक धरती माँ परहीं।।" अलौकिक प्रेम व्यंजना के सम्बन्ध में डॉ. रामकुमार वर्माजी लिखते है

जायसी की तो ठीक है कि रत्नसेन और पदमावती का मिलन होता है. जहाँ तक कि खादा और बदका एकीकरण है. पर जहाँ रत्नसेन और पदमावती की अश्लीलता की सीमा को स्पर्श करता हुआ श्रृंगार वर्गन है, वहाँ आध्यात्मिकता को किस प्रकार प्रेम की गाथा नहीं कहा जा सकता है. वह लौकिक प्रेम की गाथा ही है। भंगार वर्णन (लौकिक प्रेम पद्मावत को अलौकिक

घटित किया जा की व्यंजना) सकता है। बरम रूप में व्यक्त करने का रहा है। यौवन के भार से झकी हई किशोरी पदमावती के अंगों का सुन्दर वर्णन देखिये -

जुग बेधा तेति अंग सुवासा।
भँवर आइ लुबधे चहुँ पासा ।।
भौंह धनुष साधे फेरें।
नयन कुरंग भूलि जनु हैरै ।।

जायसी के संयोग वर्णन में मन का स्वाभाविक उल्लास और अभिलाषा का ही चित्रण अधिक मिलता है। इस प्रकार के वर्णन के लिए विवाह का एक उदाहरण लिया जा सकता। पद्मावती महल पर खड़ी अपनी बारात देख रही है। नीचे बारात की सुन्दर झांकी है। इस सौदर्य को देख पद्मावती का मन-मयूर नाचने लगता है-

हुलसे नयन दरस-मदमाते।
हुलसे अधर रंग रसमाते ।।
हुलसा बदन ओप रवि पाई।
हुलसि हिया कंचुकि न समाई।
अंग शंग सब हुलसे, कोठ कतहूँ न समाइ। विमोही, गइ मुरद्ध्य तन छाइ।

ठावहिं ढंव जायसी ने श्रृंगार का और भी अधिक नग्न चित्रण किया है। इन चित्रणों से स्पष्ट है कि इस प्रेम कथा को आध्यात्मिकता का रंग देना असंगत ही प्रतीत होता है। संभोग का एक चित्र

देखिये-

भई जूझ जस रावण रामा।
सेज बिधांसि विरह-संग्रामा।
लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा।
कीन्ह श्रृंगार अदा सब लूटा।

इस विवेचन से स्थाह है की जायसी की कथा का मूलाधार तो भारतीय है लेकि प्रेम पद्धति फारसी या सफी प्रेम पद्धति के आधार पर ही पल्लवित हुई है। यही कारण पदमावत में पार्थिव प्रेम द्वारा अपार्थिव प्रेम की ओर संकेत किया गया है। इस सम्बन्ध द्वारिकाप्रसाद सक्सेना का कथन महत्वपूर्ण है, "परंतु इस प्रेमाख्यान में केवल व्यंग्यार्थीचे नहीं है. अपित ग्यार्थ के साथ-साथ वाच्यार्थ का भी अपना महत्व विद्यमान है। इसलिए की प्रेम पद्धति एवं आध्यात्मिक प्रेम दोनों का सफल सम्मिश्रण मिलता है।"

2.7 'जायसी का विरह वर्णन'

जायसी की चितवृत्ति वियोग-श्रृंगार की व्यंजना में अधिक रमी है। इसका एक क यह भी है कि सूफी भावात्मक प्रेम विरह-विशिष्ट होती है। 'पद्मावत' में श्रृंगार के संयोग की अपेक्षा वियोग-पक्ष के प्रसंगों में प्रेम-भाव की अपेक्षाकृत अधिक मार्मिक व्यंजना ि है। 'पद्मावत' में विरह-वर्णन की दृष्टि से नागमती का विरह-वर्णन ही विशेष महत्वपूर्ण। आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी के नागमती-विरह वर्णन के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकार दी है- "नागमती के बिरह-वर्णन में बेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, ि दाम्पत्य जीवन का अत्यन्त मर्मस्पर्शी माधुर्य अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं तथा ब्यार के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य-भावना तथा विषय के अनुसार भाषा अत्यन्त निर सरल, मृदुल और प्राकृत प्रकह देखने योग्य है।" जायसी के काव्य में बिरह मूलक विग्रला श्रृंगार के सभी प्रकारों का समावेश मिलता है।

जायसी के विरह-बर्णन की विशेषताएँ- जायसी के विरह-वर्णन को निम्नांकि विशेषताएँ दी जा सकती हैं-

1. वेदनापरक मार्मिक विरहोक्तियाँ-जायसी के बिरह-वर्णन में बेदना की प्रधान दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने विरह-वर्णन करते समय विरह में तपने वाले वेदनात्मक स्वरूपर अधिक अपनाया है। इसलिए आपने विरही की पीड़ा, व्यथा, वेदना, कसक एवं टीस के बा ही मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये हैं। आपने प्रेमी की उस विलक्षण दशा का भी चित्रण किए। जिसका स्मरण आते ही विरही व्यथित हो उठता है तथा अत्यधिक दुःखी होता

हुआ भी उसे प्रेम का स्मरण करता है। उस समय उसकी दशा ऐसी होती है जैसे बालू में पड़े चने की होते है। जैसे चना गर्म बालू में भूने जाने पर उछल पड़ता है पर बाहर नहीं जाता, उसी प्रकार वियं प्रेमी को बार-बार याद करके दुःख पाता है, परन्तु उसे विस्मृत नहीं कर पाता है।

'जरत बजागिनी कुरु पिउ छहों। आइ बुझाउ अगारन्ह माहीं। लागिठ जरै, जरै अस भारु। फिर-फिर भूजेसि, तजिउ, न वारु।" होता है। स्त्री और पुरुष पात्र आँसू बहाते हुए अपनी विरह व्यथा को प्रकट करते हैं। उनके आँसुओं में कहीं तो पर्वत के शिखर दूर जाते हैं, मर्यादा छोड़ देते हैं और सारी 3. विरह की सर्वव्यापकता-जायसी का विरह एकांकी नहीं है। वह समस्त ग्रह में व्याप्त है इसलिए विरह व्याकुल का प्रभाव मनुष्य तक ही सीमित है वरन् पशु, आवरत प्रयाण्ड स्वर्ग आदि समस्त ब्रह्माण्ड में विरह का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, जैसे- 4. बिरह में सात्विकता की प्रधानता-जायसी का विरह वर्णन अत्यन्त हृदय स्पर्शी और "विरह के अगि सूर जरि काया। रातहि दिवस जैर औहि ताया।।" पवित्र है। उनके विरह वर्णन में कहीं भी अश्लीलता के दर्शन नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त जायसी ने विरह वर्णन मनोविज्ञान के सामान्य नियमों को अपनी दृष्टि में रखकर किया है। उन्होंने यह दिखाया है कि दुःख की अवस्था में कष्टदायक वस्तुएँ तो कष्टप्रद होती ही हैं लेकिन आनन्दप्रदायक वस्तुएँ भी कष्टप्रद होती हैं। जैसे-

कातिक सरद चन्द उजियारी। जग शीतल हो विरहा जारी।।

5. प्रकृति के संवेदनापरक रूप की योजना जायसी के विरह वर्णन की यह एक अनूठी विशेषता रही है कि उसमें पेड़-पौधे ये और पशु- - पक्षी आदि भी विरहिणी नागमति के प्रति संवेदनात्मक भाव रखते और उसके विरह-दुख से अनुतापित होते चित्रित किए गए हैं। उदाहणार्थ, जायसी ने भ्रमर और कागों के माध्यम से स्व-पति रत्नसेन तक यह संदेह पहुँचाने की इच्छा व्यक्त की है कि वह उसकी विरहाग्नि में जल कर मर चुकी है और हम उस आग के धुएँ से ही काले पड़ गये हैं।

"पिउ सौं कहेहु संदेसड़ा हे भौरा ! हे काग !

सो धनि विरहै जरि मुई तोहिक धुवाँ हम्ह लाग।।"

इसी प्रकार जायसी ने दिखाया है कि विरह की दशा में अपने पराये का कोई भेद नहीं रहता है वरन् सभी अपने लगते हैं। नागमति पेड़ों के नीचे रात भर फिरती है उसके बिरह में प्रकृति द्रवीभूत हो जाती है और रात को विहग बोल उठता है-

फिरि-फिरि रोव, कोई नहीं डोला। आधी राति विहंगम बोला।

" तू फिरी-फिरी दहें सब पाँखों। कोई दुःख रेनि न लाबसि आँखौं।

6. विरही जनों की शारीरिक कृशता-जायसी ने अपने विरह वर्णन में विरही पात्रों की कृशता का अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है, जैसे- नागमती की दुर्बलता का एक उदाहरण

देखिए-

"हाड़ भए सब किकरी, नतै भई जस लाति।

रोवं-रोवं ते धुनि उठें, कहौ विथा केहि भाँति ।।

7. विरह दशा में अपनी उच्च सामाजिक स्थिति का विस्मरण-जायसी में विरह- वर्णन की एक विशेषता यह भी कही जा सकती है कि विरह के कारण उनके नागमति आदि कुछ पात्र अपनी उच्च सामाजिक स्थिती को भूल कर सामान्य नर-नारियों की भाँति रोने-कलपने और गृह-दशा के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त करने लगते हैं। जायसी का विरह-वर्णन अत्यन्त हृदय स्पर्शी और पवित्र है। नागमती का विरह-वर्णन करने में जायसी ने अपनी अपूर्व भावुकता का परिचय दिया है। नागमती विरह की दशा में अपना रानीपन भूल जाती है। वह अपने को सामान्य स्त्री के रूप में समझने लगती है। जिस प्रकार चौमासे के आने पर, पति के न आने पर साधारण स्त्री की जो दशा होती है, वह नागमति की है। उदाहरणार्थ-

"पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौ बिनु नाह मदिर को छान।।

8. भारतीय एवं फारसी पद्धतियों का सम्मिश्रण- जायसी के विरह-वर्णन और फारसी दोनों ही पद्धतियों का मिश्रण दृष्टिगत होता है। भारतीय पद्धति का अनुसर हुए उन्होंने बारहमासे की योजना करते और मानसिक दयनीय दशा हुए वर्ष के प्रत्येक महीने में विरहिणी नागमति की का चित्रण किया है। उदाहरणार्थ- आषाढ़ छाये बादलों को गरजते देख-सुनकर नागमति कह उठती है- "ओनै घटा आई चहुँ फेरी, कंत उबारु मदन हों फेरी।" के महीने में

सावन में वर्षा की रिम-झिम से व्यथित होकर नागमति कह उठती है- "सावन बरगि मेह अतिलानी, घरनि भरइ हौं बिरहु झुरानी।"

परबत समुन्द आगम बिच बन बेहड़ धन ढंख। किमि करि भेटौ कंत तोहि ना मोहिं पाँव न पंख।।" भांदों की अंधियारी उसे अत्यधिक दुभर लगती है..... "भर भादों दूभर अति भारी, कैसे करौ रैन अधियारी।।"

"जल थल भरे अपूरि सब गगन धरति मिलि एक। धनि जोबन औगाह महु दे बूड़त पिय टेक।।"

कार्तिक के महीने में दीपावली का पर्व आता है तो विरहिणी नागमति का हृदय च कर उड़ता है-

"सखि मानहि तेवहार सब गाइ देवारी खेलि ।

हौ का खेलौ कत बिनु रही छार सिर मेलि।।"

जहाँ तक बिरह वर्णन की फारसी पद्धति के प्रभाव का प्रश्न है, जायसी की अतिशयेति और ऊहात्मक उक्तियों के साथ-साथ उनकी वे उक्तियाँ जिनमें रक्त-मांस आदि का बांध वर्णन किया गया है, फारसी पद्धति के विरह-वर्णन से प्रभावित मानी जाती है। जायसी की कां

इस प्रकार की उक्तियाँ अवलोकनीय हैं-

"विरह सरागन्हि भूजे माँसू,

चुइ चुइ परै रकत के आँसु ।

अथवा

नैनहिं चली रक्त की धारा,

कंथा भीजि भयेउ रतनारा।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि "जायसी के विरह-वर्णन में वेदना है, व्यथा तथा सं का आधिक्य है। कोमलता, सरलता, मार्मिकता तथा गम्भीरता का सुन्दर समन्वय उसमें है। उससे चिन्ता, व्यथा, मूर्छा, व्याधि आदि समस्त दशाओं का सुन्दर चित्र अपने काव्य में प्रस्तुत किय है। उनका यह विरह-वर्णन रीतिकालीन कवियों तथा बिहारीलाल की भाँति अतिशयोक्ति तथा मजाक की सीमा तक नहीं पहुँचा। उसमें संवेदनशीलता तथा प्रभावोत्पादकता है। प्रलो शब्द में हृदय को दौलायमान करने की अपूर्व-शक्ति है। विरह का प्रत्येक स्थल टीस, पीए आह, दर्द तथा तड़प से पूर्ण है। यह निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि जायसी का विर वर्णन भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है, उनकी विरह व्यथा में जड़ चेतना को प्रभावित का की अद्भुत शक्ति है।" विरहिणी नागमति की भग्न हृदय की निम्नांकित चीत्कार प्रत्येक सहय को विगलित एवं करुणा आप्लावित करने में सक्षम है-

यह तन जारौं छारि कै, कहौ कि पवन उड़ाव।

मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जाँ पाव।।

रामचन्द्र शुक्ल ने यह मत व्यक्त किया था कि "जायसी को हम विप्रलंभ श्रृंगार का प्रधान कवि कह सकते हैं। जो वेदना, कोमलता, सरलता और गंभीरता इनके कथनों में है,

2.8 जायसी के रहस्यवाद की विशेषताएँ

जायसी सूफी काव्य-परम्परा के एक प्रमुख कवि ही नहीं थे, प्रमुख सूफी तत्व-चिन्तक भी थे। इस्लाम में सूफी शब्द रहस्यवादी का पर्याय माना जाता है। अतः उनके 'पद्मावत' में रहस्य भावना का सहज, सरल और तात्विक रूप पाया जाना स्वाभाविक है। 'काव्य की उस मार्मिक भावाभिव्यक्ति को रहस्यवाद' कहते हैं, जिसमें एक भावुक कवि अव्यक्त, अगोचर एवं अज्ञात सत्ता के प्रति अपने प्रेमोद्‌गार प्रकट करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है, उसे रहस्यवाद कहते हैं।' और दूसरी ओर डॉ. श्यामसुन्दर दास का अभिमत है कि "चिन्तन के क्षेत्र का ब्रह्मबाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर रहस्यवाद का रूप पकड़ता है।' स्पष्ट है कि रहस्यबाद के अन्तर्गत कवि किसी अलक्ष्य, अगोचर सत्ता तादात्म्य स्थापित करने के प्रयास में अपने प्रेमोद्‌गार व्यक्त करता है। इसीलिए उसके दुख-सुख, आशा-निराशा और प्रेम-बिरह एक अमूर्तता ग्रहण कर जाते है जिसमें विलीन होकर कवि असीम आनन्द की अनुभूति करता है। काव्य में यह रहस्यवाद अनेक रूपों में उपलब्ध होता है। यथा-प्रेम-साधना परक, प्रकृतिमूलक, आध्यात्मिक अथवा यौगिक रहस्यबाद आदि। जायसी के 'पद्मावत' में रहस्यवाद के इन सभी रूपों का अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी निदर्शन देखने को मिलता है।

जायसी के 'पद्मावत' में भारतीय फारसी मिश्रित अद्वैती भावात्मक रहस्यवाद दृष्टिगोचर होता है। इस दर्शन में रहस्यवादी साधक ईश्वर को अपना परम साध्य अथवा प्रियतम स्वीकार करता है। प्रेम उसका वह मार्ग है जिसके द्वारा वह अपने परम प्रियतम तक पहुँचता है और आत्मा- परमात्मा का चिर-मिलन होता है। पद्मावती के रूप-सौन्दर्य में जायसी ने उसी अलक्ष्य सत्ता के असीम सौन्दर्य की झाँकी प्रदर्शित की है, जिसमें अलौकिक दीप्ति है-

रवि ससि नरबति दिपहिं ओही जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।। जहं जहं विहसि सुधावहि हंसी। तहं तहं छिटकि जोति परगसी ।।

दामिनि दमकि न सरवरि पूंजी। पूनि ओहि जोति और को दूजी ।। यहाँ पर प्रत्यक्ष रूप से यद्यपि पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का ही वर्णन किया गया है किन्तु जायसीन् अप्रत्यक्षतः कवि ने उस अलौकिक अगोचर, अलक्ष्य और असीम सत्ता का सौन्दर्य चित्रण है जो एक सूफी साधक का अन्तिम प्राप्य होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रसंग में उल्लेख्य है। वे लिखते हैं कि हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर रहस्यवाद है तो जायसी में जिनकी भावुकता बहुत ही ऊँची कोटी की है वे सुफियों को भ भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नानारूपी प्रियतम के रूप माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का पुर के समागम के हेतु प्रकृति के श्रृंगार, उत्कण्ठा या विरह विकलता के रूप में अनुभव करते दसरे प्रकार की भावना 'पद्मावत' में अधिक मिलती है। सुफी कवि जायसी के रहस्यवाद मूल तत्व प्रेम है। उनकी दृष्टि में ईश्वर की समस्त सत्ता का साररूप प्रेम ही है। वे मानते हैं प्रेम गुरु या पीर की एक महान देन है। 'पदमावत' में भी गुरु रूपी तोते के मुख से ही साप प्रतीत होता है कि तीन लोक चौदह भुवनों में प्रेम से अधिक सुखद, आह्लादकारी और मा बस्तु अन्य कोई नहीं है। यही कारण है कि साधक अपने साध्य की ओर खिंचा चला जाताहै। बस्त भावत में ठीक यही स्थिति राजा रतनसेन की है जो समस्त साँसारिक बाधाओं को पार कर अन्ततः पद्मावती के पास जा पहुँचता है। तका कथन 'पद्मावत' में भावात्मक रहस्यवाद के साथ ही जायसी के प्रकृतिमूलक रहस्यवाद दर्शन भी होते हैं। कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य में परमात्मा की छवि का आभास कराकर आत और परमात्मा के सम्बन्ध निर्वाह को प्रस्तुत किया है, कवि को इसी कारण प्रकृति के विति रूपों में उसी असीम सत्ता के दर्शन होते हैं। सिंहलगढ़ की प्रकृति के इस सौन्दर्य चित्रण में त असीम सत्ता के अनिर्वचनीय रूप की व्यंजना हो रही है, देखिये-

घन अमराउ लागु चहुँ पासा। उठा भूमि हत लागि अकासा।।

तखिर सबै मलैगिरि लाई। भई जग छांह रैनि हुई आई ।।

मलै समीर सुहावन छाहां। जेठ जाड लागै तेहि माहां ।।

ओही छांह रैनि होइ आवै। हरिहर सबै अकास दिखावै ।।

पथिक जो पहुँचे सहि घामू। दुःख बिसरै सुख होई बिसरामू ।।

जेई वह पाउ छांह अनूपा। फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा।।

इस वर्णन में प्रकृति मूलकत्ता होने के साथ ही अद्वैत आध्यात्मिकता के भी परिदर्शन होते हैं। इस प्रकार जायसी ने 'पद्मावत' के सात समुन्द्र खण्ड में सातवें समुद्र का जो रहस्यपक वर्णन किया है, वहाँ भी प्रकृति में व्याप्त असीम अलक्ष्य परम सत्ता को देखकर उसके साक्षात्का से उत्पन्न अलौकिक एवं असीम आनन्द की अनुभूति की बड़ी मार्मिक व्यंजना की गयी है। निम्नांकित पंक्तियाँ इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं। जिनमें प्रकृति में व्याप्त परमात्मा और आत्मा के साक्षात्कार को

आनन्दानुभूतिपरक व्यंजना की गयी है, देखिए-

'देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरइन होइ छावा ।।

भा अधियार रैनि मसि छूटी। भा भिनसार किरन रवि फूटी।।

अस्ति अस्ति सब साथी बोले। अंध जो अहै नैन विधि खोले ।। जो अस आव साधि तप जोगू। पूजै आस मान रस भोगू ।।

कवि जायसी ने एक ओर तो 'पद्मावत' में भावात्मक रहस्यवादिता प्रदर्शित की है दूसरी ओर उन्होंने हठयोगियों की प्रचलित भक्ति पद्धति को स्वीकारते हुये साधनामूलक रहर बार का भी उसमें निरुपण किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने हठयोगियों की समस्त क्रियाओं को ग्नाका कर अपने नायक रतनसेन को पद्मावती की खोज में जाते हुये उसी रूप में प्रस्तुत किया है जै गोरख पंथी योगी होते हैं। जायसी ने रतनसेन के साथ में किंगरी, सिर पर चक्र, गले में जो

21 की माला, कानों में मुद्रा तथा शरीर पर कंथा निलगे हुये प्रदर्शित किया है और उसे इसी रूप में पदमावती कधी परमात्मा की खोज में दिखाया है। के अन्तर्गत ही कवि ने हठयोगियों के अनहदनाद, ब्रह्मरन्ध और नाथपंथियों की उल्टी सा को 'पद्मावत' में व्यंजित किया है। इतना ही नहीं, जावती ने हास्नार चक्र में महागुख के निवास की और भी इंगित किया है। अनहदनाद की साधना का यह वर्णन उदाहरणार्थ

घरी घरी घरियार पुकारा। पूंजी बार रो आपन मारा।। नौ पौरी पर दसम दुवारा। तेहि पर बाज राज मटियारा।।

कवि ने साधना मूलक इस रहस्यवादिता का विस्तृत वर्णन करते हुये दसवें द्वार को पार करने की कठिनाई का भी वर्णन किया है। उसके अनुरगर यह ताड़ के समान ऊँचाई पर है। जो संसार के सभी पदार्थों से अपनी दृष्टि उलट कर उस पर दृष्टि लगाता है कहीं उसे देख पाता है। वह स्वयं ही मृत्यु है, स्वयं ही जीवन है और तन एवं मन भी एवणं ही है। यह जो चाहता है स्वयमेव करता है, उसके लिये कहीं भी द्वैत भाव नहीं रहता वरन् यह पूर्ण अद्वैत हो जाता है. वहाँ द्विधा का कोई प्रश्न ही नहीं है-

दसर्व दुवार तारु का लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।।
जाइसो जाइ सांस मन बन्दी। जस घंसि लीन्ह कान्द कालिन्दी ।।
तू मन नाथु मारि कै स्वांसा। जो पै परहि आपुद्धि करु नांसा।।
परगट लोकचार कहु बाता। गुपुत लाठ जासी मन राता ।।
हौं ही कहत मंत सब कोई। जी तू नांहि आहि सब सोई।।
जियतहि जौ रे मरे एक बारा। पुनि कत गीचु को मारे पारा।।
आपुहि गुरु सो आपुहि चेला। आपुहि सब सो आपु अकेला ।।
आपुहि मीचु जियन पुनि, आपहि तन मन सोइ।
आपुहि आप करें जो चाहे, कहां क दूसर कोइ ।।

सूफी साधना में प्रेममूलक रहस्यवादिता को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है और उसमें भी प्रेग की पीर या विरह की हृदयस्पर्शी व्यंजना का अन्यतम स्थान है, जायसी ने भी अपने 'पद्मावत' में इस रहस्यवादी विरह व्यंजना को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कवि ने अपने काव्य में जिस लौकिक विरह का चित्रण किया है, वह सामान्य कोटि का नहीं है, उसमें निहित आकुलता इतनी असीम है कि उसका रूप अलौकिक बन गया है और इस प्रकार वह विरह भी परम सत्ता से संयुक्त हो

गया है। निम्नांकित पंक्तियाँ इस रहस्यवादिता विरह का प्रमाण है-

विरह की आगि सूर जटि कांपा। रातिहि दिवस जरै ओहि तापा।।
औ सब नखत तराई जरही। टूटहिं लंक धरति मंह परहीं।।

रहस्यवाद की अन्तिम परिणति में साधक एवं साध्य, प्रिय एवं प्रियतमा अथवा आत्मा एवं परमात्मा का चिर मिलन, इस स्थिति तक पहुँचते ही इन दोनों में तादात्म्य हो जाता है, दोनों एकमेक हो जाते हैं। रतनसेन एवं पद्मावती के प्रेम का यह रहस्यात्मक पक्ष अत्यन्त आकर्षण है जब रतनसेन का प्रत्येक श्वास उसी परमसत्ता रूपी पद्मावती का स्मरण करने लगता है, उसके रक्त की प्रत्येक बूँद उसके नाम का जाप करती है और उसका प्रत्येक रोम उस परमसत्ता का निवास स्थान बन जाता है।

इस प्रकार जायसी अपने पदद्मावत महाकाव्य में रहस्यवाद के प्रायः सभी रूपों को प्रस्तुत कर दिया है किन्तु इसमें विशेषतः भावात्मक, साधनात्मक एवं प्रकृति मूलक रहस्यवाद की ही अधिक सशक्त व्यंजना हुई है। प्रेममार्गी सूफी सन्त होने के कारण उनके द्वारा प्रेम की पीर का अत्यधिक विस्तृत एवं मार्मिक वर्णन करना स्वाभाविक ही है। वास्तव में जागसी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ भावुक एवं रहस्यवादी कवि हैं।

1. मानसरोदक खण्ड

संकेत- एक देवस कौनिउँ तिथि आई। मानसरोदक चली अन्हाई। पद्मावति सब सखीं बोलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई। कोई चंपा को कुन्द सहेलीं। कोइ सुकेत करना रस बेलीं। कोड़ सु गुलाल सुदरसन राती। कोड़ बकौरि बकचुन विहँसाती। कोई सु बोल बोलसरि पुडुपावती। कोई जाही जूही सेवती। कोई सोनजरद जेउँ केसरि। । कोई सिंगारहार नागेसरि। कोइ कूजा सदबरग चॅबेली। कोई कदम सुरस रस बेली। भेलों सबै मालानि सँग फूले कँवल कमोद । बधि रहे गन गंध्रप बास परिमलामोद ।। 5911

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद कविवर मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित पद्मावत के 'मानसरोदव खण्ड' से लिया गया है। व्याख्या एक दिन. कोई (पूर्णमासी की) तिथि आई। पद्मावती मानसरोवर में स्नान करते के लिए चली। उसने अपनी सब सखियों को बुलाया। वे इस प्रकार लगीं मानो समस्त फुलको ही चली आई हो। जिस प्रकार फुलवाड़ी में नाना भाँति के पुष्प होते हैं उसी प्रकार इन साजर में कोई चम्पा के पुष्प के समान थी तो कोई कुन्द की भाँति थी। अन्य सखियाँ केतकी, कार और रसबेली की भांति थीं। कोई श्रेष्ठ गुलाल और सुदर्शन जैसी लाल थी तथा कोई गुलबकावन के गुच्छों की तरह की तरह लिखी हुई थी। कोई पुष्पों से युक्त मौलश्री की भाँति थी और कर जाही, यूथिका और श्वेत गुलाब जैसी थी। व और कोई केसर कोई सोनजरद जैसी थी की तर की थी। कोई हरिसंगार और कोई नागकेशर की भाँति थी। कोई कूजा जैसी और कोई सदबार चमेली की भाँति थीं। कोई कदम्ब की भाँति और कोई सुन्दर रसबेली जैसी थी। और वे सब मालती रूप पद्मावती के साथ ऐसे चली मानो कमल के साथ कुमुदिनों हों। उनक सुगन्धि की व्यापकता के कारण गंधर्व के समूह भी प्रभावित हो रहे थे।

2. संकेत- खेलत मानसरोबर गई। जाइ पालि पर ठाढ़ी भई। देखि सरोवर रहसहिं केली। पद्मावति सौ कहहि सहेलीं। ऐ रानी मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी। जो लहिं अहै पिता कर कर राजू । खेलि लेहु जो खेलहु आजू । पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम कित एह सरवर पाली। कित आवन पुनि अपने हाथाँ। कित मिलि कै खेलव एक साँथा। सासु ननद बोलिन्छ जिउ लेहीं। दारुन ससुर न आवै देहीं। पिउ पिआर सब ऊपर सो पुनि करै दहुँ काह।

कहुँ सुख राखै की दुख दहुँ कस जरम निबाहु ।।60।।

सन्दर्भ-पूर्वानुसार।

सप्रसंग व्याख्या-वे सब खेलती हुई मानसरोवर पर आई और जाकर किनारे पर खड़ों हो गई। वे मानसरोवर को देखकर रास और क्रीड़ा करती हैं। सब सहेली पद्मावती से कहती है- हे रानी! मन में विचार करके देख लो। इस पीहर में चार दिन (थोड़े समय) ही रहना है। जब तक पिता का राज्य है 'तभी तक खेल लो जैसा कि आज खेल रही हो। फिर तो हमारा सास ते यहां जाने का समय आ जाएगा। तो फिर न जाने हम कहाँ होंगे और कहाँ यह तालाब और इसका किनारा होगा। फिर आना अपने हाथ कहाँ होगा? और कहाँ मिलकर एक साथ खेलना हो सकेगा। ननद बोलते ही प्राण ले लेगी। ससुर वह . इन सबके ऊपर प्यारा प्रियतम होगा। न जाने वह भी फिर जैसा व्यवहार करेगा। न जाने सुख से रखेगा या दुःख से। न जाने जीवन का निर्वाह फिर कैसे होमाता सरवर तीर पदुमिनी आई। खोपा छोरि केस मोरकाई। ससि मुख अंग मलैगिरि रानी। नागन्ह झापि लीन्ह अरधानी।

ओनए मेघ परी जग छाहां। ससि की सरन लीन जनु राहा। छपि गै दिनहि भानु कै दशा। लै निसि लखत चाँद परगसा। भूलि चकोर दिस्टि तहें लावा। मेघ घटा महँ चाँद देखावा। दसन दामिनी कोकिल भाषी। भोहु धनुक गगन लै राखी। नैन खंजन दुइ केलि करेहीं। कुच नारंग मुधकर रस लेहीं। सरवर रूप विमोहा हिएँ हि हिलोर करेड़।

पाय छुअई मकु पावों तेहि मिसु यहरें देइ ॥ 61 ॥ सप्रसंग व्याख्या-वे पद्मिनी स्त्रियाँ सरोवर के किनारे आई। वहाँ उन्होंने अपने जूड़े को खोलकर बालों को फैला दिया। पद्मावती रानी का मुख चन्द्रमा के समान है और शरीर मलायचल की भाँति है। उस पर बिखरे हुए बाल ऐसे लगते है जैसे सपों ने सुगन्धि के लिए इसे ढक लिया हो। यहा फिर ऐसा लगता है कि ये बाल मानो मेद्य ही उमड़ आये हों जिससे सारे संसार में छाया हो गई है। मुख के समीप बाल ऐसे लगते हैं मानो राहु ने चन्द्रमा की शरण ले ली हो। केश इतने घने और काले हैं कि दिन होते हुए भी सूर्य का प्रकाश छिप गया। और चन्द्रमा रात में नक्षत्रों को लेकर प्रकट हो गया। चकोर भूल कर उधर की ओर ही दृष्टि लगाने लगा क्योंकि उसे मेद्यों की घटा के बीच पद्मावती का मुख रूपी चन्द्रमा दिखलाई दे रहा था। । पद्मावती के दाँत बिजली जैसे चमकीले थे और वह कोयल के समान मधुरभाषिणी थी। भौहे ऐसी थी जैसे आकाश में इन्द्रधनुष हो। नेत्र क्या थे मानो दो खंजन के पक्षी क्रीड़ा कर रहे हों। स्तन ऐसे थे जैसे नारंगी हो और उसके अग्रभाग की श्यामता ऐसे लगती थी जैसे नारंगी पर भौंरे बैठे रस ले रहे हों।

मानसरोवर उसके रूप को देखकर मोहित हो गया। वह हृदय में कामना रूपी लहरें भरने लगा। उसकी लहरें इधर आती हुई इन भाव को प्रकट करती है मानो कि वह इस बहाने से लहरें ले रहा हो कि स्यात् किसी तरह पद्मावत्ती के पैर छू सके।

विशेष-अलंकार-उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान।

लागीं केलि करै मँझ नीरा। हंस लजाइ बैठ होइ तीरा।

पदुमावति कौतुक करि राखी । तुम्ह ससि होहु तराइन साखी। बादि मेलि कै खेल पसारा। हारु देइ जौं खेलत हारा। सँबरिहि साँवरि गोरिहि गोरी। आपनि आपनि लीन्हि सो जोरी। बूझि खेल खेलहु एक साथा। हारु न होई पराएँ हाथा। आजुहि खेल बहुरि कित होई। खेल गएँ कत खेलै कोई। धनि सो खेल खेलहि रस पेमा। रौताई औ कूसल खेमा।

मुहमद बारि परेम की जेउँ भावै तेउँ खेलु। तोलहि फूलहि संग जेऊँ होई फुलाएल तेल ॥ 63 ॥ ३०

सप्रसंग व्याख्या-वे जल दे, बीच में क्रीड़ा करने लगीं। उनकी मनोहर चाल को देखकर हंस लल्जित होकर किनारे पर बैठ गया। पद्मावती को सखियों ने कौतुक देखने वाली करके रखा और कहां कि तुम हम तारागण रूप सखियों की साक्षी होकर शशि के रूप में रहो। फिर बाजी

लगाकर उन्होंने खेल आरम्भ किया कि जो खेलने में हार जाय वह अपना डार दे दे। साँवली को ने गोरी को और गोरी अपना-अपनी जोडी बना लिया। समझ बूझ कर पक खेल खेलो जिससे कि अपना हार दूसरे के हाथ न जा सके। आज ही खेल है। फिर यह कहाँ होगा? खेल के समाप्त हो जाने पर फिर कोई कहाँ खेलता है? वह खेल धन्य है के आनन्द से युक्ति होता है। (वहाँ) प्रभुताई और कुशल क्षेम एक साथ नहीं रह सकते।छे में जो अपनी ठकुराई या बड़प्पन चाहता है तो फिर कुशल उतरै भुइँ धरै सो पैठे इति माहि')। क्षेत्र नहीं। कबीर ने भी कहा है

भुइँ घर से (जायसी) कहते हैं कि प्रेम के जाल में जैसा भावे वैसा ही खेली। प्रकार फूलों के साथ मिलकर सुगन्धित तेल बन ही जाते हैं वे कैसे मिले हैं इससे कोई मतलब नह ऐसे ही प्रेम की बाजी से परम आनंन्द प्राप्त होगा ही, किस तरह तात्पर्य नहीं। जैसे भाव वैसे ही प्रेम की बाजी को खेलो। की बाजी खेलनी है। इससे कई विशेष इस पद में समासोक्ति द्वारा जायसी यह भी संकेत करते हैं कि मानव का खेल बार-बार नहीं मिलेगा। अतः इसे प्रेम के खेल में लगाओ। ईश्वर से प्रेम करो भाव है।

2. नखशिख खण्ड

का सिंगार ओहि बरनौं राजा। ओहि क सिंगार ओहि पै छाजा।

प्रथमहि सीस कस्तुरी केसा। बलि बासुकि को औरु नरेसा। भंवर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरहिं लेहिं अरघानी। बेनी छोरि झारु जौं बारा। सरग पतार होड़ अंधियारा। कावल कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअंग बिसारे। बेधे जानु मलैगिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा। धुँधुरवारि अलकै बिख भरीं। सिंकरीं पेम चहहिं गिय गिय परीं।

अस फँदवारे केस वै राजा परा सीस गियँ फाँद। अस्टौ कुरी नाग ओरगाने भै केसन्हि के बाँद ॥ 11 ॥

सप्रसंग व्याख्या-तोते ने राजा से उस पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहा हे राजन! मैं उसके श्रृंगार का कहां तक वर्णन करूँ? उसका सौन्दर्य तो अनुपम है। उसके सिर पर जो केश हैं वे कस्तूरी के समान काले हैं जिन पर शेषनाग को भी न्योछावर हो जाना पड़ता है। फिर राजा तो उसके सामने है ही क्या! पद्मावती उस मालती पुष्प की भाँति है तथा उसके सिर के बाल काले भ्रमर के समान हैं जो कि उसका मधुपान करने वाले हैं। उसके बाल विषैले सर्प की भाँति लहराने वाले हैं। जब वह उन बालों को खोलकर झाड़ती है तो आकाश एवं पाताल दोनों ही स्थान पर अन्धकार छा जाता है। उसके ये सिर के बार विषैले सर्प हैं। उनको देखकर प्रतीत होता है कि मानो वे पद्मावती को मलयागिरि पर्वत समझ उसकी सुगन्ध लेने के लिये चारों ओर से मंडरा रहे हैं। उसके शरीर की सुगन्धि ने उन सर्पों को वेंध रखा है। इसी कारण वे अन्य कहीं नहीं जा पाते। उसके घुँघराले केश मूच्छित करने वाले प्रतीत होते हैं, नहीं तो वे साक्षत प्रेम की श्रृंखला ही प्रतीत होते है जो कि किसी के गर्दन में फन्दा बनकर पड़ना चाहती है। उनके फन्दे का महत्व इतना अधिक है कि दूर बैठा हुआ राजा भी उसमें फँस गया। इन्हीं केशों के फन्दे में तो आठों कला के अ। नाग देवता भी आकर बंधे थे। इस प्रकार इन केशों में मूच्छिंत कर देने वाली शक्ति निहित है.'

विशेष-1. कत्रि ने यह, ख से शिख का वर्णन न करके शिख से वर्णन करना प्रारम्भ किया है। यह शैली फारसी कविया के वर्णन की है।

2. अलंकार-रूपक, हेतूत्प्रेक्षा, आतश्योक्ति, उत्प्रेक्षा ।

लगाकर उने खेल आरम्भ किया कि जो खेलने में हार जाग यह अपना र

साँवली को और गोरी ने गोरी को अपना-अपनी जोड़ी बना लिया। समक्ष मुझ खेल खेलो जिससे कि अपना हार दूसरे के के हाथ न जा सके। आज ही कहाँ होगा? खेल के समापा हो जाने पर फिर कोई कहाँ खेलता है? खेल है।। के आनन्द से यक्ति होता है। वहाँ) प्रभुताई और कुशलक्षेम एक साथ नहीं रह सकते। फिर

पुशल शेष नहीं। कबीर ने भी कहा उत्तारै भुई धरै सो पैठे इति माहि)। मुहम्मद (जायसी) कहते हैं कि प्रेम के जाल में जैसा भावे वैसा ही खेली।प्रकार फूलों हैं से कैसे मिले है

फूलों के साथ मिलकर घरी आलन्द प्राप्त होगा ही, किस तरह की बाजी खेलनी है इससे भ तात्पर्य नहीं। भाव वैसे ही प्रेम की बाजी को खेलो। नहीं। जैसे भाषद में समासोक्ति द्वारा जायररी गड भी संकेत करते है कि मानव का खेल बार-बार नहीं मिलेगा। अतः इसे प्रेम के खेल में लगाओ। ईश्वर से प्रेम करो भाव है।

1. संकेत-

2. नखशिख खण्ड

का सिंगार ओहि बरनौं राजा। ओहि क सिंगार ओहि पै छाजा। प्रथमहि सीस कस्तुरी केसा। बलि बासुकि को औरु नरेसा। भंवर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरहिं लेहिं अरघानी। बेनी छोरि झारु जौं बारा। सरग पतार होइ अंधियारा। कावल कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअंग बिसारे। बेधे जानु मलैगिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा। घुँघुरवारि अलकै बिख भरी। सिंकरी पेम चहहिं गिय परी। अस फैदवारे केस वै राजा परा सीस गिय फाँद। अस्टौ कुरी नाग ओरगाने भै केसन्हि के बाँद ।।11।।

सप्रसंग व्याख्या-तोते ने राजा से उस पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये का हे राजन! मैं उसके श्रृंगार का कहां तक वर्णन करूं? उसका सौन्दर्य तो अनुपम है। उसके सिर पर जो केश हैं वे कस्तूरी के समान काले हैं जिन पर शेषनाग को भी न्योछावर हो जाना पड़द है। फिर राजा तो उसके सामने है ही क्या। पद्मावती उस मालती पुष्प की भाँति है तथा उसके सिर के बाल काले भ्रमर के समान है जो कि उसका मधुपान करने वाले हैं। उसके बाल विषेते सर्प की भाँति लहराने वाले हैं। जब वह उन बालों को खोलकर झाड़ती है तो आकाश एवं पाताल दोनों ही स्थान पर अन्धकार छा जाता है। उसके ये सिर के बार विषैले सर्प हैं। उनको देखकर प्रतीत होता है कि मानो वे पद्मावती को मलयागिरि पर्वत समझ उसकी सुगन्ध लेने के लिये चाहते ओर से मंडरा रहे हैं। उसके शरीर की सुगन्धि ने उन सर्पों को वेंध रखा है। इसी कारण वे अन कहीं नहीं जा पाते। उसके घुँघराले केश मूच्छित करने वाले प्रतीत होते हैं, नहीं तो वे साक्षत् प्रेम की श्रृंखला ही प्रतीत तहोते है जो कि किसी के गर्दन में फन्दा बनकर पड़ना चाहती है। उनके फन्दे का महत्व इतना अधिक है कि दूर बैठा हुआ राजा भी उसमें फँस गया। इन्हीं केशों के फन्दे में तो आठों कला के अनाग देवता भी आकर बंधे थे। इस प्रकार इन केशों में मूच्छित कर देने वाली शक्ति निहित है.

विशेष-1, कवि ने यह, ख से शिख का वर्णन न करके शिख से वर्णन करना प्रारम्भ किया है। यह शैली फारसी कवियाचे वर्णन की है।

2. अलंकार-रूपक, हेतूत्प्रेक्षा, आतिश्योक्ति, उत्प्रेक्षा।

नैन बाँक सरि पूजन कोऊ। मान समुद्र अस उलथर्कि दोऊ। राते केवल करहि अलि भाँ। घूमहिं माँति चहहिं उपसौं। उठहिं तुरंग लेहि नहिं बागा। चाहहि उलथि गगन कहूँ लागा। पवन झकोरहिं देहि हलोरा। सरग लाइ भूई लाइ लहोरा। जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अवार चाह पल माहाँ। जबहि फिराव गैंगन गहि बोरा। अस वै भवर चक्र के जोरा। समुद्र हिंडोर करहि जनु झूले। खंजन लुरहिं मिरिग जनु भूले। सुभर समुंद अस नैन दुइ मानिक भरे तरंग। आवत तौर जाहिं फिरि काल भवर तेन्ह संग।। 103।।

संप्रसंग व्याख्या-तोता कहने लगा कि पद्मावती के नेत्र इतने सुन्दर है कि उनकी समता कोई भी नहीं कर सकता। मान की भावना दोनों हो नेत्रों में उमड़ी पड़ती है। उसके नेत्र लाल रंग से रंगे है, उनमें काली पुतलियाँ ठीक इसी प्रकार प्रतीत होती है कि मानो भौंरे लाल कमल पर मंडरा रहे हों। लगता है मानो उसकी सुगन्ध से आकर्षित होकर वे पहले मंडरा रहे हों और उसका पान कर उड़ जाना चाहते हों। इसके अतिरिक्त उन नेत्रों की उपमा उन मुँहजोर घोड़ों से भी दी जा सकती है जो किसी का कहना न मानकर उल्टे होकर आकाश को छू लेना चाहते हैं। वे पवन को पूर्ण रूप से झकझोर कर पानी में हिलोर पैदा कर देते हैं। इस प्रकार आकाश को पृथ्वी पर उतार कर पुनः लौटा देते हैं। इस प्रकार उसके नेत्रों में चंचलता विद्यमान है। उनके चंचल हो जाने से सारा संसार ही चंचल हो जाता है। एक पल के अन्दर ही वे भरे-भराणे भंडार को पलट देना चाहते हैं। जब राजकुमारी अपने नेत्रों के द्वारा इधर-उधर देखती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह आकाश को पाताल में डुबो देगी। ऐसा उम्र पुतलियों का जोड़ा उसके नेत्रों में विद्यमान है। जब वे नेत्र घुमाये जाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे समुद्र के हिंडोले पर झुलाये जा रहे हों, या खंजन पक्षी पर एक दूसरे से क्रीड़ा करने में व्यस्त हों। इसी प्रकार के नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं मानो भूले हुए मृग के जोड़े हों। उसके दोनों नेत्र जल से भरे होने के कारण समुद्र के समान प्रतीत होते हैं। उसकी लहरें किनारे तक आती है और टकराकर चली जाती है।

विशेष-अलंकार-उपमा और उत्प्रेक्षा।

3. **संकेत- रसना कहाँ जो कह रस बाता। अंबित बच्चन सुनत मन रोता।**
हरै सो सुर चात्रिक कोकिला। बीन बंसि बहु बैनु न मिला।
चात्रिक कोकिल रहहि जो नाहीं। सुनि वह बैन लाजि छपि जाहीं। भरे पेम मधु बोलै बोला। सुनै सो माति घुर्मि कै डोला।
चतुर वेद मति सब ओहि पाहाँ। रिग जजु साम अथर्बन माहाँ। एक एक बोल अरथ चौगुना। इन्द्र मोह बरहा सिर धुना। अमर भारथ पिंगल औ गीता। अरथ जूझ पंडित नहिं जीता।
भावसती व्याकरन सरसुती पिंगल पाठ पुरान।
वेद भेद से बात कह तस जनु लागहिं बान ।। 10811

सप्रसंग व्याख्या-उसकी रचना में इतना मिठास है कि उसके बात करने पर रस का अनुभव होता है। उसके सुधामय बचनों को सुनकर मन प्रसन्न हो जाता है उसकी वाणी ने चातक और कोयल को भी मात दे दी। बीणा और बंशी के स्वर भी इसकी वाणी की मिठास की समता नहीं कर सकते और वे लज्जित होकर छिप जाते हैं। वह जब वचन बोलती है तो वे अमृत से सने हुए होते हैं। जब वह बोलती है तो उसकी बोली सुनकर सभी मतवाले होकर गिर जाते हैं। चारों बेदों का अथाह ज्ञान उसमें भरा पड़ा है उसकी बात में अनेक अर्थ छिपे रहते है जिसके समझने में इन्द्र भी मोहित हो जाता है और ब्रहा भी हार कर बैठ जाता है। अमरकोष, महाभारत,
संस्कृत व्याकरण पिंगल पराण के पाठ करने में यह साक्षात लक्ष्मी है। यह वेद के रहा जानती है। जब उनका उद्घाटन करती है तो सुनने वाले भी दंग रह जाते हैं।

कनक दंड वुड़ भुजा कलाई। जानहुँ फेरि कुँदेरें भाई। कदलि खाँभ की जानहूँ जोरी। औ राती ओहि कैबल हथोरी। जानहूँ रकत हथॉरी बूड़ों। रबि परभात तात वह जूड़ी। हिया कादि जजु लीन्हेसि हाा ँ। रकत भर अँगुरी तेहि साथाँ। औ परेि ं नग जरी अँगूठी। जग बिनु जीव जीव ओहि मूठी। बाँहू कंगन टाड़ सलोनी। डोलति बाँह भाउ गति लोनी। जामहूँ गति बेड़िन देखराई। बाह डोलाइ जीउ लै जाई। भुज उपमा पैबनारि न पूजी खीन भई तेहि चिंत। ठाँवहिं ठाँव बेह थे हिरदें ऊभि साँस लेड़ निंत ।। 112।।

सप्रसंग व्याख्या-उस पद्मावती की कलाइयाँ स्वर्ण-दण्ड के समान हैं। वे इतनी सुकू है मानों उन्हें खराद पर चढ़ाकर बना दिया गया है। वे दोनों मानों केले के खम्भे के समान उसकी हथेलियाँ लाल रंग की हैं जो कमल के सदृश प्रतीत होती हैं। उसकी लालिमा की सच प्रातःकालीन सूर्य से भी नहीं की जा सकती, सूर्य तो गर्म होता है जब कि हथेलियां ठंडी है। उस लालिगा को देखकर लगता है कि 5 न मालूम उसने कितने व्यक्तियों का हृदय निकाल का आनं हाथ में रख लिया है। इसी कारण उसकी अंगुलियाँ रक्त रंजित रहती हैं। उन अंगुलियों में या रत्न-जटित अंगूठियों पहन रखी है। सारा संसार बिना प्राण का ही प्रतीत होता है क्योंकि सबद प्राण तो उसकी हथेलियों में ही रखे हैं। उसकी भुजा में कंगन तथा टिड्डे सुशोभित है। जबक अपनी भुजाओं को इधर-उधर घुमाती है तो उसकी चाल और भी अधिक सुन्दर लगने लगते है। उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कला करने वाली नटिनी अपनी कला की कुशलत दिखा रही हो। वह अपनी इस कला के माध्यम से लोगों का जी तक ले लेती है। उसको मुद की तुलना में पद्मनाल खरी नहीं उतरी, इसी सोच-विचार के कारण वह पतली पड़ गई है।

5. संकेत- लंक पुहुमि अस आहि न काहूँ। केहरि कहाँ न ओहि सरि ताहूँ। बसा लंक बरनै जग झीनी। तेहि तें अधिक लंक वह खीनी। परिहँस विअर भए तेहि बसा। लीन्हें अंक लोगन्ह कहैं डंसा। जानहुँ नलिनि खंड दुड़ भई। दुहुँ बिच लंक तार रहि गई। हिय सों मोरि चलै वह तागा। पैग देत कत सहि सक लागा। छुद्र घंटि मोहहिं नर राजा। इन्द्र अखार आइ जनु साजा। मानहुँ बीन गहे कामिनी। रागहिं सजै राग रागिनी।

सिंघ न जीता लंक सरि हारि लीन्ह बन बासु ।

तेहिं रिसि रकत पिजै मनई कर खाइ मारि के माँसु ।। 116 ।। सप्रसंग व्याख्या-पद्मावती की कमर के समान पृथ्वी पर और किसी की कमर नहीं है। सिंह की कमर की उसकी बराबरी नहीं कर सकती। बर्र की कमर संसार में सबसे अधिक पतली मानी जाती है पर पद्मावती की कमर तो उससे भी पतली है। इसी ईर्ष्या के कारण नभी बरें पीली पड़ गई हैं और अपनी पतली कमर के साथ लोगों को डसती फिरतीं हैं। उसकी कमर को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कमलिनी के टूट जाने पर इसके बीच में दो तार रह गए हैं। वही दो तार उसकी कमर बन गए हैं। वे तार ही उसकी हृदय की गति

के साथ-साथ चलते हैं। यदि वह पैर उठाकर चलेगी तो वे तार उस भार को भी सहन नहीं कर सकेंगे। कमर में जो उसने करधनी पहनी हुई है उसे देखकर अनेक राजा लोग मूर्छित हो जाते हैं। उस किंकणी की ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्द्र का अखाड़ा ही सजा हुआ है। घुंघरुओं की ध्वनि वीणा के सदश प्रतीत होती है। ऐसा लगता है मानो वीणा से अनेक राग और रागनियों बज रहे हैं। सिंह भी उसकी समता में नहीं जीत सका। इसी कारण वह लज्जित होकर वन में छिप गया। उसी क्रोध के कारण वह क्रोधवश मनुष्यों के मांस को खाता है और उसका रक्त पीता है। विशेष-उत्प्रेक्षा अलंकार

3. षटऋतु-वर्णन खण्ड

पद्मावति सब सखीं बोलाई। चीर पटोर हार पहिराई। सीस सबन्हि के सेंदुर पूरा। सीस पूरी सब अंग सेंदूरा। चंदन अगर चतुरसम भरी। नएँ जनहँ कँवल सँग नाएँ चार जानहुँ अवतरी। फूली कुई। कै सो चाँद सँग त तरई उड़ें। धनि पद्मावति धनि तोर नाहूँ। जेहि पहिरत पहिरा सब काहूँ। बारह अभरन सोरह सिंगारा। तोहि सोहइ यह ससि संसारा। ससि सी कलंकी राहुहि पूजा। तोहि निकलंक न होइ सरि दूजा। काहू बीन गहा कर काहूँ नाद स्त्रिदंग। सब दिन अनंद गँवावा रहस कोड एक संग ।।33211

सप्रसंग व्याख्या-पद्मावती ने अपनी सभी सखियों को अपने पास बुलवाया और उन सभी को वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित किया। उसने सभी की माँग में सिन्दूर लगाया। इस माँग के भर जाने से उनका सारा शरीर ही लाल दिखाई देने लगा था। चन्दन, अगर, केसर और कस्तूरी का लेप बनाया गया। उसे देखकर ऐसा लगता था कि इन सबने नया रूप ग्रहण कर लिया है। पद्मावती और उसकी सखियों के इकट्ठे बैठने से ऐसा प्रतीत होता था मानो चन्द्रमा के सहित समस्त नक्षत्र उदय हो गये हों। सखियों ने मिलकर पद्मावती को धन्यवाद दिया और कहा कि हे रानी ! तुम और तुम्हारा पति तुम दोनों ही धन्य हो क्योंकि तुम्हारे सुन्दर वस्त्र पहनने के कारण ही हमें भी सुन्दर-सुन्दर आभूषण और वस्त्र पहनने को मिले हैं। तूर सोलह प्रकार तू बारह प्रकार के आभूषणों के आभूषणों से सुसज्जित है तू सुन्दरता में चन्द्रमा केर समान प्रतीत होती है किन्तु वास्तव में चन्द्रमा भी तेरी बराबरी नहीं कर सकता क्योकि चन्द्रमा में कलंक होता है और तुझ में कलंक भी नहीं लगा हुआ है। तुझे राहु भी नहीं ग्रस सकता। अतः इस संसार में तेरे समान कोई और सुन्दर नहीं है। सखियों में किसी ने वीणा बजानी प्रारम्भ कर दी और किसी ने मृदंग बजाना आरम्भ कर दिया। सारा दिन सब सखियों ने मिलकर नाच गाने के साथ आनन्द से बिता दिया।

विशेष-अलंकार-उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक। संकेत- भै निसि धनि जसि ससि परगसी। राजै देखि पुहुमि फिरिं बसी। भै कातिकी सरद ससि उबा। बहुरि गैंगन रबि चाहै छुवा।

पुनि धनि धनुक भौंहँ कर फेरी। काम कटाख टैंकोर सो हेरी। जानहुँ नहिं कि पैज पिय खाँचौं। पिता सपथ हीँ आजु न बाँचों। काल्हि न होइ रहे सह रामा। आजु करौ राबन संग्रामा। सेन सिंगार महूँ है सजा। गज गति चाल अँचर गति धुजा। नैन समुंद खरग नासिका। सरवरि जूझि को मो सौं टिका। हौं रानी पुदुमाबति मैं जीता सुख भोग।

तू सरबरि करु तासौं जस जोगी जेहि जोग ।।333।।

सप्रसंग व्याख्या-रात्रि के समय पद्मावती चन्द्रमा के समान और भी अधिक सुन्दर प्रत्तीत होती थी। राजा ने भी पृथ्वी के सौन्दर्य को देखा। उसने आकाश में उदित होते हुए शरद

के स्वच्छ चन्द्रमा को देखा जो कि अपने प्रकाश के द्वारा फिर अपने भौह के धनुष को घुमाने में व्यस्त हो गई। लगी। उसने फिर अपने मन में कहा कि मैं नहीं दृढ़ है पर मैं आज अपने पिता की कल की भाँति शान्त नहीं रहना। आज युद्ध करने के लिए सूर्य को छूना चाहता था। वह अपने काम से युक्त कटाओं समझ पाती कि प्रियतम तुम्हारी प्रतिज्ञा तो तम्मों मेरे साथ युद्ध करना ही पड़ेगा श्रृंगार रूपी सेना को सजा लिया है। मेरी ही चाल इस मेरी साड़ी का आँचल ही युद्ध की पताका का कार्य करेगा। आँखें समुद्र तलवार का कार्य करेगी। आज युद्ध में मेरी बराबरी कोई सेना का साथी बन जायेंगी औ भी नहीं कर सकता। मैले मैंने समस्त ऐश्वर्य आदि को अपने वश में कर रक्खा है। मेरी बराबरी तू भी क्या कर है, तू तो अपने समान किसी जागी की ही समता कर सकता है।

विशेष-रूपक अलंकार।

हौं अस जोगि जान सब कोऊ। बीर सिंगार जिते मैं दोऊ। उहाँ त समुँह रिपुन दर माहाँ। इहाँ त काम कटक तुव पाहाँ। उहाँ त कोपि बैरिदर मडौं। इहाँ त अधर अमिअ रस खंडौं। उहाँ त खरग नरिंदन्ह मारौं। इहाँ त बिरह तुम्हार सँघारी। उहाँ त गज पेलौं होड़ केहरि। इहाँ

त कामिनि करसि हहेहरि। उहाँ त लूसौं कटक बँधारू । इहाँ त जितौं तुम्हार सिंगारू। उहाँ त कुंभस्थल गज नावौं। इहाँ त कुच कलसन्ह कर लाौं।

परा बोचु धरहरिया पेम राज कै टेक। मानहिं भोग छहूँ रितु मिलि दूनौं होइ एक ।।33411

सप्रसंग व्याख्या-पद्मावती की इस तीव्र वाणी को सुनकर रत्नसेन कहने लगा किसा जोगी को तो सारा संसार ही जानता है। मैंने वीर और श्रृंगार दोनों रसों पर अधिकार जमा रमा है। युद्ध में तो मेरे सामने शुत्र-दल होता था और श्रृंगार में मेरे सामने कामदेव की सजी से के रूप तुम और तुम्हारे आभूषण और सोलह श्रृंगार होते हैं। युद्ध में तो क्रोध करता है के श्रृंगार में मैं अधरामृत का पान करता हूँ। युद्ध में अपनी तलवार के द्वारा राजाओं को मार का भगा देता हूं पर यहाँ मैं तुम्हारी काम-बासना को शान्त कर देता हूँ। वहाँ मैं सेना और छावनिय को लूटता हूँ और यहाँ तुम्हारे सोलह श्रृंगारों पर विजय प्राप्त कर लूंगा। वहां मेरे हाथ हाथिये के कुभस्थलों पर होते हैं और यहाँ तुम्हारे कुचों पर में हाथ रख संकूगा। इस प्रकार राजा देने के बीच में घहरिया बना हुआ था। दोनों ही विलास की क्रीड़ायें भाँति-भाँति से करने लगे।

विशेष-सांग-रूपक अंलकार।

प्रथम बंसत नवल रितु आई। सुरितु चैत बैसाख सोहाई।

चंदन चीर पहिरि धनि अंगा। सेंदुर दीन्ह बिहँसि भरि गंगा। कुसुम हार उ औ परिमल बासू । बासू । मलयागिरि छिरिका कबिलासू। सौर सुपेती फूलन्ह डासी। । धनि घनि औं कंत मिले सुख बासी। पिउ संयोग धनि जोबन बारी। भँवर पुहुप सेग करहि धमारी। होइ फागु भलि चाँचरि जोरी। बिरह जरा दीन्ह जसि होरी। जेंहि ससि सियरि तपै पिउ सूरू। नखत सिंगार होहिं सब चूरू।

जेंहि घर कंता रितु भली आउ बसता नित्तु । सुख बहरावहि देवहरै दुक्ख न जानहिं कित्तु ।। 33511

सप्रसंग व्याख्या-सबसे पहले सब ऋतुओं में से बसन्त ऋतु का आगमन हुआ। इस सुन्दर ऋतु में चैत और बैसाख दो महीने हैं। पद्मावती ने इस ऋतु में चन्दन का वस्त्र शरी।

पर पहनना और प्रसन्न होकर अपनी माँग को सिन्दूर से भर दिया। स्वर्ग में मलयगिरि के छिड़काव के समान सुगन्धि वाले फलों की माला को अपने गले में धारण किया। सफेद चद्दर बिछा कर उस पर फूलों की शैया उसने बनाई और फिर कहने लगी कि वे पति और पत्नी जो इस प्रकार सुखपूर्वक शैया पर निवास करते हैं। मेरे पति का मेरे गाली दोनों ही सन्म है। परिचय हो गया है। इसलिए वह भ्रमर बनकर मुझ पुष्य का आन्नद रोवर रूपी मारिका आ जाने पर चर्चरी का उछल-कूद भी प्रारम्भ हो गई। मेरा विरह इस मौसम में इस जन आया जिस प्रकार कि इस महीने में होली को जलाया जाता है। पत्नी का अस्तित्व कसे उकार जान के समान और पति सूर्य के समान सदा प्रकाशित रहने वाला है। अतः नदत्य तो ठंडे चन्द्रमा प्रकार के प्रसाधन चूर हो गए। जिस स्त्री के पास उसका पति होता है वहाँ सदैव रूह बी प्रऋतु विराजमान रहता है। घर बैठे सभी प्रकार के सुख प्राप्त हो जाते है। दुःख तो कभी पास

आता ही नहीं। विशेष-कवि ने परम्परानुसार इस पद में बसन्त ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है। बसन्त कालीन वातावरण ठीक इसी प्रकार का होता है।

रितु ग्रीखम कै तपनि न तहाँ। जेठ असाढ़ कंत घर जहाँ।

पहिरें सुरंग चीर धनि झीना। परिमल मेद रहै तन भीना। पद्मावति तन सियर सुबासा। नैहर राज कंत कर पासा। अधर तंबोर कपूर भिवँसेना। चंदन चरिच खाव नित बेना। ओबरि जूड़ि तहाँ सोवनारा। अगर पोर्ति सुख नेति औधारा। सेत बिछावन और सुपेती। भोग करहिं निसि दिन सुख सेती। भा आनन्द सिंघल सब कहूँ। भागिवंत सुखिया रितु छहूँ। बारिवँ दाख लेहिं रस बेरसहिं आँब सहार।

हरियर तन सुवटा कर जो अस चाखनहार ।। 33611

सप्रसंग व्याख्या-जेठ और असाढ़ के महीनों में गर्मी अधिक पड़ती है। जिस घर में पति इन महीनों में रहता है वहाँ गर्मी का नाम भी नहीं रहता। पत्नी गर्मी के कारण रंगीन पतले वस्त्र पहनती है, कस्तूरी का लेप करने के कारण उसके शरीर से कस्तरी की महक आती रहती है। उसका सारा शरीर उससे ठंडा रहता है और साथ ही सुगन्धि से सिक्त रहता है। एक तो पद्मावती का राज्य भी पिता का राज्य था दूसरे उसका पति उसके पास था। इसलिए इसके सुख का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। उसने अपने होठों को कूपरमिश्रित पान के द्वारा लाल कर रखा था। चन्दन तथा खस का शरीर पर लेप किया हुआ था। ठंडे कमरे को उसने अपना शयन कक्ष बनाया। अगर की सुगन्धि से सुवासित उसने चारों और पर्दे लगाये।

बिस्तरे पर उसने सफेद चद्दर बिछाई जिस पर लेटकर पति-पत्नि रति-क्रीड़ाएँ करने लगे। सिंहल में इस समय सभी आनन्दित थे। यहां छहों ऋतुओं का विकास पूर्णरूप से होता था। इस ग्रीष्म ऋतु में अनार और दाख के फलों में रस आ गया था और आम के वृक्षों पर फल आ गये हैं। इन फलों के ऊपर हरे रंग का तोता सदा खाने के लिए बैठा रहता है। ठीक इसी भांति प्रेम से युक्त पद्मावती का रस पान करने के लिए रत्नसेन भी लालायित रहता है। वह रत्नसेन जिसे पद्मावती के साथ रहने का आनन्द प्राप्त हो सका है।

रित पावस बिरसै पिउ पावा। सावन भादौं अधिक सोहावा कोकिल चैंन पाँति बग छूटी। धनि निसरी जेउँ बीर बहूटी।

चमकै बिज्जु खरिस जग सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना। रंग राती पिय सँग निसि जागै। गरजै चमकि चौंकि कंठ लागे। सीतल बुंद ऊँच चौबारा। हरियर, सब देखिअ संसारा।

मलै समीर बास सुख बासी। बेड़लि फूल से सुख डासी। हरियर भुम्मि कुसुंभी चोला। औ पिय संगम रचा हिंडोला। पौन झरक्के हिय हरख लागै सियरि बतास। धनि जानै यह पौनु है पौनु सो अपनी आस 1133711

संप्रसग व्याख्या- यह वर्षा ऋत भी पति के समीप रहने पर अत्यन्त सुखद प्रतीत है। सावन और भादों इन दो महीनों में वर्षा अधिक होती है. इस कारण दोनों की गिनती व किनारे लग जाती है। चारों ओर से निकलती हुई स्त्रियाँ बीर बहटियों के समान प्रतीत होती है। पानी में रहने वाले मेढक भी अधिक शब्द करने लगते है और मोर भी प्रसन्नता के कारण करने लगते हैं। सबकी ध्वनि से चौंक कर पद्मावती प्रेम के रंग में रंगी प्रिय के साथ रात को जग करने लगते है। की गरज और बिजली की चमक से चौक कर वह अपने पति की छाती से ि रहती है। बादल की गरी में ठंडी-ठंडी बूंदे पढ़ती है। सारा संसार वर्षा के कारण हरा-भरा दि जाती है। ऊपर के पवन चारों ओर के बातावरण को सूचित करा दिखाई पड़ा और पड़ता है। एतयार प्रकृति ने बिछा दी है। पृथ्वी चारों और हरी भरी दिखाई पड़ रही है। की शैया चारों ओरधारण किये पद्मावती पति के साथ झूले एक कारण हो रही है। रंग बैंक से उसके हृदय में हर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस हर्ष का कारण वह ठंडी हवा हवा के ही बताती है। यह पर प्रसन्नता तो पति-पत्नी के व्यवहार से है।

आइ सरद रितु अधिक पियारी। नौ कुबार कातिक उजियारी। पद्मावति भै पूनिर्वे कला। चौदह चाँद उए सिंघला।

सोरह करा सिंगार बनावा। नखतन्ह भरे सुरुज ससि पावा. भा निरमर सब धरनिं अकासू। सेज संवारि कीन्ह फुल डासू। सेत विछाबन सौ उजियारी। हँसि हँसि मिलहिं पुरुख औ नारी। सोने फूल पिरिथिमी फूली। पिउ धनि सों धिन पिउ सों भूली।

चखु अंजन दै खंजन देखावा। होइ सारस जोरी पिउ पावा।

एहि रितु कंता पार जैहि सुख तिन्हके हिय माँह।

धनि हँसि लागै पिय गले धनि गल पिय कै बाँह ।।338।।

सप्रसंग व्याख्या-वर्षा के बाद शरद् ऋतु का आगमन हुआ। इस ऋतु में आश्विन औ कार्तिक दो महीनों का अधिक महत्व रहता है। पद्मावती इस समय शरद् की पूर्णिमा के चन्द्रमाई भाँत विकसित हो उठी। उसे देखकर ऐसा लगता था मानो सिंहल में चौदहवीं का चाँद निकल अस हो। जब वह सोलह श्रृंगारों से युक्त हुई तब वह ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो चन्द्रमा अपने सारे तारगण से युक्त हो गया हो। सारी पृथ्वी और आकाश दोनों ही पवित्र दिखाई पड़ रहे थे। शैयर अच्छी प्रकार संभाल कर उस पर फूल बिछा दिये गये थे। पद्मावती का बिस्तर श्वेत था और पर भी शरद की चाँदनी का प्रकाश उस पर पड़ रहा था। पति पत्नी दोनों आपस में हँस कर मिल रहे थे। पृथ्वी पर चारों और सोनजुही विकसित हो रही थी, उसे देखकर लग रहा था कि मां इन फूलों के माध्यम से पृथ्वी खिलखिला कर हँस रही हो। रत्नसेन और पद्मावती ऐसे वाताबर में आपस में इतने विभोर हो गये थे कि वे एक दूसरे के समान अपने को भूल गए थे। आँखों में लगे रहने के कारण पद्मावती के नेत्र खंजन पक्षी के समान प्रतीत हो रहे थे। वह अपने पति के समी • बैठी इस प्रकार लग रही थी जैसे सारस पक्षी की जोड़ी बैठी हो। इस ऋतु में जिस स्त्री का पी उसके पास होता है, उसके हृदय में सुख ही रहता है। पत्नी तोहँस कर पति के लगे से लिपट कर चाहती है और पति की बाहें भी अचानक पत्नी के गले में पड़ जाती हैं।

4. नागमती-वियोग (खण्ड)

नागमती चितउर पँथ हेरा। पिठ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा। नागरि नारि काहुँ बस परा। तेहैं बिमोह मोसौं चितु हरा। सुवा काल होई लै गा पीऊ। घिउ नहिं लेत लेत बरु जीऊ। भएउ नरायन बावन करा। राज करत बलि राजा छरा। करन बान लीन्हेउ करि छंदू। भर्थरि भएठ छल मिला अनंदू। मानत भोग गोपीचंद भोगी। लै उपसवा जलंधर जोगी। लै कान्हहि भा अकरूर अलोपी। कठिन बिछोउ जिजै किमि गोयी। सारस जोरी किमि हरी मारि गएउ किन खग्गि।

झुरि झुरि पाँजरि थनि भई बिरह के लागी अग्नि ।। 341 ।। संप्रसग व्याख्या-राजा के बहुत दिनों तक न आने से रानी नागमती को बहुत चिन्ता हुई।

वह उसके मार्ग में बैठकर प्रतीक्षा करने लगी। वह अपने आप ही सोचने लगी कि मेरा पति जब से गया है तब से अभी तक वापिस नहीं आया। लगता है कि वहाँ किसी होशियार नारी ने उसकों अपने वश में कर लिया है। इसी कारण उसको मेरा ध्यान नहीं रहा, वह तोता मेरे पास क्या आया कि वह मुझसे मेरे पति को ही छीन कर ले गया। यदि वह मेरे पति के बदले मेरे प्राण ले जाता तो अधिक अच्छा होता। उसने मेरे साथ धोखा किया। वह उस वामन के समान निकला जिसने बलि को छल लिया था। कर्ण की मृत्यु के लिए भी इन्द्र ने धोखे से राजा कर्ण से उनके वाणों को ले लिया था। राजा भूर्तहरि भी आनन्द से छला गया। राजा गोपीचन्द को भी जालन्धर योगी ने सुख से नहीं रहने दिया। अक्रूर के कृष्ण को ले जाने पर गोपियों को बिरह-वेदना का भार सहना पड़ा था। जब इतने बड़े-बड़े लोगों को भी विरह सहना पड़ा तो भला मैं विरह के कारण कैसा जीवित रह सकती हूं। न मालूम किसने छुरी मार कर सारस के जोड़े को वियुक्त कर दिया। वह नागमती वियोग की पीड़ा में घुल-घुलकर कृश-काय हो गई थी। उसका शरीर अब हड्डियों का पिंजड़ा बन गया था

और उसके अन्दर विरह की अग्नि लगी हुई थी। विशेष-कवि ने नागमती के विरह का अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से चित्रण किया है।

चढ़ा असाढ़ गैंगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।

घूम स्याम धौरे घन धाए। सेत धुजा बगु पाँति देखाए। खरग बीच चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरिसै धन घोरा। अद्रा लाग बीज भुई लेई। मोहि पिय बिन को आदर देई। श्रौतें घटा आई चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी। दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेझ घट रहै न जीऊ। पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाँह मंदिर को छावा। जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्व।

कंत पियारा बाहिरें हम सूख भूला सर्व ।।34411

सप्रसंग व्याख्या-कवि ने नागमती के विरह-वर्णन को मार्मिक बनाने के लिये बारहमासे का भी वर्णन किया है। प्रत्येक ऋतु का प्रभाव विरहिणी पर मार्मिक पड़ता है। इस बारहमासे का प्रारम्भ आषाढ़ मास से किया गया है।

आषाढ़ मास में बादलों ने गरजना आरम्भ कर दिया। इसी मास में विरह का दुःख भी अधिक बढ़ गया। धुंधले और श्वेत रंग के बादलों से आकाश भर गया। चारों ओर लगी हुई गुलों की पंक्ति इस प्रकार लग रही थी मानो श्वेत पताका लगी हो। आकाश में चमकती हुई बजली तो लगता था मानो तलवारें चमक रही हों। वर्षा होने पर प्रतीत होता था कि चारों ओर बाण चल रहे हों। आर्द्रा नक्षत्र के लगते ही बिजली चमकने लगंती और वर्षा होनी आरम्भ हो जाती है। ऐसे वातावरण में नागमति कि पति के बिना इस को पति का वियोग बहुत अखरता है। ओर पिरे मौसम में और भला मुझे कौन आदर देगा? चारों कामदेव की सेना प्रतीत हो रहे थे। इसलिये वह प्रिय से याचना कर रही थी कि वह आ बचा ले। मेढक कोयल एवं पपीहे की आवाज अब उसे हृदय को बंधने वाली प्रतीत है। थी। वह सोच रही थी कि न मालूम अब प्राण जिन्दा भी रह सकेंगे या नहीं नक्षत्र में पति के बिना मेरी रक्षा भला कौन कर सकता है? आज के दिन वे हैं जिनके पति समीप हैं। मेरा पति तो मुझसे बहुत दूर है। इसलिए मेरे सभी सुख नष्ट होगी। रह पायेगे।

सौभ भर भार्दी दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अँधियारी। मंदिल सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा। रहाँ अकेलि गहें एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी। चमकि बीज धन गरजि तरासा। बिरह काल होड़ जीठ गरासा। बरिसै मधा झंकोरि अँकोरि। मोर दुइ नैन चुबर्हि जस ओरी। पुरवा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी। धनि सूखी भर भार्दी माहाँ। अबहुँ आइ न सींचसि नाहाँ। जल थल भरे अपूरि सब गैंगन धरति मिलि एक। धनि जोबन औगाह महँ दे बूड़त पिय टेक ।।346 11 सप्रसंग व्याख्या-अब नागमती कहती है कि यह भादों मास मेरे लिए अत्यंत ३५

है। अंधेरी रातें काटने पर भी नहीं कट पातीं। मेरा सारा घर प्रिय के अभाव में सूना रहा है। अपनी शैया अब मुझे नागिन के समान काट खाती प्रतीत होती है। मैं अपनी है के एक कोने में पड़ी रहती हूँ। सारी रात नींद न आने के कारण आँखे खोले ही पड़ी हूँ। मुझे बिजली चमक और बादल गरज के द्वारा भयभीत करते हैं। विरह मेरे प्राणों को के के लिए तत्पर हैं। मघा नक्षत्र आ जाने से वर्षा झड़ी लगातार हो रही है। मेरे नेत्रों से निगला आँसुओं की वर्षा होती है। वह अश्रु धारा निरन्तर अविरल गति से बहती हुई खपरैलों से हुई वर्षा की धारा प्रतीत होती है। पुरवा नक्षत्र लगते ही सारी पृथ्वी जल-मग्न हो जाती है। मैं आक और और जवास के पेड़ की भाँति कृश हो गई हूँ। आकाश और पृथ्वी तो वर्ष माध्यम से संयोग-सुख का आनन्द लेने में मग्न है लेकिन नागमती का विरह अभी समाप्त हुआ है। वह अपने आश्रय के लिए अपने पति को पुकार रही है।

5. नागमती-सन्देश खण्ड

तासौं दुख कहिए हो बीरा। जेहि सुनि कै लागै पर पीरा। को होड़ भीबँ अँगबै परगाहा। को सिंघल पहुँचावै चाहा। जहाँ सो कंत गए गए होइ ड़ जोगी। हौं किंगरी भै झरौं बियोगी। ओहूँ सिंगी पूरै गुरु भेंटा। हौं भै भस्म न आइ समेटा। कथा जो कहै आइ पिय केरी। पाँवरि होउँ जनम भरि चेरी। ओहि के गुन सँवरत भै माला। अबहुँ न बहुरा उड़िगा छाला। बिरह गुरुङ्ग खप्पर कै हिया। पबन अधार रहा होड़ जिया।

हाड़ भए झुरि किंगरी नसें भई सब ताँति।

रोवँ रोवँ तन धुनि उठै कहेसु विथा एहि भाँति ।।361 ।।

सप्रसंग व्याख्या-नागमती ने पक्षी से कहा कि हे भाई ! अपने दुःख का निवेदन से उसी के सम्मुख जाकर करना चाहिए जो दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट समझे। ऐसा कौन है जे भीम बनकर राजा दंगव का कष्ट अपने सिर ले ? मेरा सन्देश सिंहल तक कौन पहुँचा सकत है ? मेरा पति वहीं जोगी होकर चला गया है। मैं अपने पति के वियोग में सारंगी के समान पतली हो गई हूँ। मेरे पति ने अपने हाथ में श्रृंगी ले रखी है। वह गुरु से मिला हुआ रहता है पर मैं उसके विरह में भस्म हो रही हूँ। वह मुझ से आकर मिलता भी नहीं है। जो यहीं जाकर मेरे पति के जोगी होने की कथा को मुझसे आकर कहेगा मैं उसकी जीवन भर सेवा स्मृति करके और उसके गुणों का बखान करके माला के सदृश ही बन गई हूँ, पर यह इतना निमीडी है कि अब तक लौटा ही नहीं है। वह उड़ने वाली मृगछाला पर बैठ कर यहाँ उसका हृदय कठोर खप्पर के समान बन गया है। केवल साँसों के आदान-प्रदान पर ही मेरा यह जीव आधारित है। मेरे शरीर की समस्त हड्डियों किंगरी बन गई हैं और सारी नसें उस सारंगी की तार बन गई हैं। मेरे रोयें-सेयें से उस पति का नाम ही निकलता है। हे पक्षी । तुम मेरी इस विरह-व्यथा का सन्देश मेरे पति तक अवश्य पहुँचा देना।

रतनसेनि बन करत अहेरा। कीन्ह ओहि तरुवर तर फेरा। सीतल बिरिछ समुद के तीरा। मति उतंग औ छाँह गंभीरा। तुरै बाँधि कै बैठु अकेला। औरु जो साथ करें सब खेला। देखेसि फरी जो तरुवर साखा। बैठि सुनहिं पाँखिन्ह कैं भाखा। उन्ह महँ ओहि बिहुँगम नामा। नागमती जासौं दुख कहा। पूँछहि सबै विहंगम नामा। अहो मींत काहे तुम्ह स्यामा। कहेसि मींत मासक दुइ भए। जंबू दीप तहाँ हम गए। नगर एक हम देखा गढ़ चितउर ओहि नाउँ । लो दुख कहाँ कहाँ लगि हम दाधे तेहि टाउँ ।।364।।

व्याख्या-राजा रत्नसेन अब सिंहलद्वीप में रह रहे थे। जब वे वन के शिकार को निकले तो अचानक शिकार खेलते-खेलते वे उस वृक्ष के नीचे पहुँच गये जिस पर कि वह पक्षी बैठा था। समुद्र का किनारा होने से उस पेड़ की छाया अत्यन्त ठंडी थीं। वृक्ष भी काफी ऊँचा था। इसी कारण उसकी छाया पर्याप्त गम्भीर थी। उसने उस घोड़े को अपने पास ही बाँध लिया और पेड़ की छाया में बैठ गया। उसके सभी साथी केल करने लगे थे। रत्नसेन ने जब पेड़ के ऊपर दृष्टि डाली तो देखा कि एक फल युक्त शाखा पर सभी पक्षी बैठे हुए बातें सुनने में व्यस्त हैं। उनमें से एक पक्षी नागमती के विरह की बातें कर रहा था। सभी पक्षियों ने उस पक्षी से पूछा कि तुम काले क्यों हो गये हो ? तो इस बात का उस पक्षी ने उत्तर दिया कि दो मास के करीब मैं जम्बू द्वीप गया था। उस द्वीप के चित्तौड़गढ़ नामक शहर में हम गये तो वहीं हम जल गए। मैं अपने उस दुःख का वर्णन करने में असमर्थ हूँ।

6. सिहल-दीप-वर्णन खण्ड

सिंघल दीप कथा अब गावौ। औ सो पदुमिनि बरनि सुनाौं। बरनक दरपन भाँति बिसेखा। जेहि जस रूप सो तैसेइ देखा। धनि सो दीप जहँ दीपक नारी। औ सो पदुमिनि दइअँ अवतारी। सात दीप बरनहिं सब लोगू। एकौ दीप न ओहि सरि जोगू। दिया दीप नहिं तस उजियारा। सराँ दीप सरि होइ न पारा। जैब दीप कहाँ तस नाहीं। पूज न लंक दीप परिछाहीं। दीप कुसस्थल आरन परा। दीप महुस्थल मानुस हरा।

सब संसार परथमैं आए सातौं दीप।

एकौ दीप न उत्तिम सिंघल दीप समीप ।। 25 ।।

व्याख्या-अब मैं सिंघल द्वीप की कथा कहता हूँ और उस पद्मिनी का वर्णन सुनता हूँ। वर्णन की विशेषता दर्पण की तरह होती है। जैसे दर्पण में जो जैसा होता है वैसा ही दिखाई देता है ऐसे ही वर्णन में जो वस्तु जैसी होती है वैसी ही वर्णन से जानी जाती है। वह द्वीप (सिंघल द्वीप धन्य है जहाँ दीपक के समान सौन्दर्य का प्रकाश करने वाली स्त्रियों हैं और ईश्वर पचिनी को अवतरित किया है। जिन सात द्वीपों का लोगों ने वर्णन किया है उनमें से एक ही भी उस द्वीप (सिंघल द्वीप) के समान नहीं है। दिया द्वीप में वैसा उजाला नहीं है। सरन ही उसके बराबर नहीं हो सकता। जब द्वीप को

कहता है कि वह भी वैसा नहीं है। लंकाद्वी उसकी परछाई जैसा भी नहीं है। कुश-स्थल द्वीप में जंगल पड़ा भी नहीं रहते। हुआ है। मरूस्थल। सबसे प्रथम संसार में ये ही सातों द्वीप आते थे परन्तु इनमें से एक द्वीप भासिल के समान उत्तम नहीं है।

विशेष-उपर्युक्त सातों द्वीपों का कथन पद्मावती के विभिन्न अंगों की सुन्दरता प्रकर करने के लिए भी कुछ विद्वानों ने प्रयुक्त हुआ माना है।

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाषा। करहि हुलास देखि कै साखा। भोर होत बासहिं घुहुचुही। बोलहिं पाँडुक एकै तुहीं। सारौ सुआ सो रहचह करहीं। गिरिहिं परेवा औ करबरहीं। घिउ पिउ लागै करै पपीहा। तुही तुही कह गुडुरू खीहा। कुहू कुहू कोइल करि राखा। औ भिंगराज बोल बहु भाषा। दही दही के महरि पुकारा। हारिल बिनबै आपनि हारा। कुलकहिं मोर सोहावन लागा। होड़ कोराहर बोलहिं कागा।

जाबत पंखि सहे सब बैठे भरि अँबराउँ। आपनि आपनि भाषा लेहिं दइअ कर नाउँ ।।2911

व्याख्या- वहाँ बहुत से पक्षी बसते हैं और बहुत सी बोलियाँ बोलते हैं। उन शाखाओं

को देखकर वे उल्लास प्रकट करते हैं। प्रातःकाल होते ही चुहचुही बोलने लगती है। पांडुर

पक्षी 'एकै तुहीं' की ध्वनि बोलता है। मैना और तोता चहचहाते हैं। कबूतर उड़कर कहते है और गुटरगूँ की ध्वनि करते हैं। पपीहा पिउ-पिउ करने लगता है और गुडुरू पक्षी खीझकर तुही तुही करता है। कोयल कुहू कुहू की रट लगाती है और भृंगराज बहुत-सी बोलियाँ बोलता है। ग्वालिन चिड़िया 'दही-दही' की पुकार करती है और हारिल अपने हाल का निवेदन करती है। कुहकते है और बड़े सुहावने लगते हैं। कौए बोलते हैं तो कोलाहल होने लगता है।

मोर ऊपर जितने पक्षी कहे है, सारे आम के बाग में बैठे हुए हैं। अपनी-अपनी भाषा बोलकर वे मानो ईश्वर का नाम ले रहे हैं।

विशेष (1) पक्षियों के नाम परिंगणन के साथ कवि ने उनकी बोलियाँ भी व्यक्त की हैं जिससे काव्य सौन्दर्य बढ़ गया है। (2) 'सारौ सुवा सो' 'तथा कुहू कुहू कोइल करि' आदि पंक्तियों में अनुप्रास अलंकार की छटा है। अन्तिम पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

3 संकेत- मानसरोदक देखिअ काहा। भरा समुंद अस अति अबगाहा। पानि मोति अस निरमर तासू। अंब्रित बानि कपूर सुबासू । लंक दीप कै सिला अनाई। बांधा सरवट घाट बनाई। खंडखंड सीढ़ी भई गरेरी। उतरहिं चड़हिं लोग चहुँ फेरी। फूला कैवल रहा होड़ राता। सहस सहस पंखुरिन्ह कर छाता।

उथलहिं सीप मोंति उतिराही। चुगहिं हंस ओ केलि कराहीं।

करन पंखि पैरहि अति लोने। जानहु चित्र सँवारे सोने।

ऊपर पाय चहूँ दिसि अंब्रित फर सब रूख ।

देखि रूप सरवर कर गई पिआस औ भूख ।। 31 ।।

व्याख्या-मानसरोवर का तो देखना ही क्या? वह तो इतना गहरा है जैसे कि समुद्र

ही भरा इजा हो। उसका पानी पोती जैसा निर्मल है। यह अमृत के समान है और की सुगन्धि से युक्त है। लंका द्वीप से शिलाएँ मेंगाई गई है और उनसे तालाब के चाट कराने गए हैं। उसके खण्ड-खण्ड में घुमावदार सीढ़ियों बनी हुई है। इनमें जब लोग उतरते-चढ़ते हैं तो चारों ओर को फिरते जाते हैं (घुमावदार होने के कारण) तालाब में लाल कमल फूल रहे हैं। उनके सहत्रों पंखुड़ियों के छप्त हैं। साथियों के उलट जाने से तालाब में मोती गिर पड़ते है और तैरने लगते हैं। हंस उन्हें चुगते हैं और बहुत क्रीड़ा करते हैं। वे अपने सुनहरे पंखों से तालाब में तैरते हुए बड़े सुन्दर लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो सोने के द्वारा संचाल कर चित्र बनाए हों।

तालाब के ऊपर की ओर चारों ओर ऊंचे किनारे हैं और उन पर अमृत के फलों से युक्त वृक्ष हैं। ऐसे तालाब के रूप को देखकर सबकी प्यास और भूख मिट जाती है। विशेष-अलंकार-उपमा, उत्प्रेक्षा (जनहु चित्र सँवारे सोने)।

पुनि फुलवारी लागि चहुँ पासा। बिरिख बेधि चंदन नै बासा। बहुत फूल फूली घन बेली। केवरा चंपा कुंद कुंद चंखेली। सुरंग गुलाल कदम औ कूजा। सुगंध बकौरी गंध्रष पूजा। नागेसरि सद बरग नेवारि। औ सिंगारहार फुलवारी। सोन जरद फूली सेवती। रूप मंजरी औ मालती।

जाही जूही बंकचुन लावा। पुहुप सुदरसन लाग सोहावा। बोलसिरी बेइलि औ करना। सबहि फूल फले बहु वरना। तेन्ह सिर फूल चढ़हिं वै जेन्ह थे मनि भागु। आछहिं सदा सुगंध भे जनु बसंत औ फागु ।। 35 11

व्याख्या-फिर चारों ओर वहाँ फुलवारी लगी हुई है। वृक्षों में प्रविष्ट करके चंदन की सुगन्धि व्याप्त हो गी है। घनवेली, केवड़ा, चम्पा, कुन्द, चमेली बहुत से फूलों से फूली हुई हैं। लाल गुलाल, कदम्ब, कुब्जक और (सुगन्धित गुलबकावली से गन्धर्वसेन पूजा करते हैं। नागकेसर, गेंदा, नेवारी, हारसिंगार, सोनजरद, सेवती, रूपमंजरी, मालती, जाही, जूही आदि के फूलों के समूह लगे हुए हैं। सुदर्शन का फूल सुशोभित हो रहा हा है। मौलश्री, बेला और करना आदि सभी फूल बहुत से रंगों के फू फूले हुए हैं।

ये. फूल उन्हीं के सिर पर चढ़ते हैं जिनके मस्तक पर मणि है अर्थात् जो सौभाग्यशाली हैं। इन फूलों में सुगन्धि सदैव रहती है मानो वहाँ सदैव बसन्त और फागुन रहता हो।

गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी। पानी भरहि जैसे दुरुपदी। और कुंड एक मोतीचूरू। पानी अंद्रित कीच कपूरू। ओहि क पानि राजा पै पिआ। बिरिधि होइ नहि जौ लहि जिआ। कंचन बिरिख एक तेहि पासा। जस कलपतरु इन्द्र कबिलासा। मूल पतार सरग ओहि साखा। अझर बेलि को पाव को चाखा। चाँद पात औं फूल तराई। होइ उजिआर नगर जहँ ताई। वह फर पावै तपि कै कोई। बिरिघ खाइ नब जीवन होई।

राजा भए भिखारी सुनि वह अंबित भोग। जेइँ पावा सो अमर भा ना किछु किछु ब्याधि न रोग ।। 43 ।।

व्याख्या-उस गढ़ पर जब और दूध की दो नदियां है। वहाँ द्रोपदी जैसी सुन्दर स्त्रियां पानी भरती हैं। वहां एक और कुंड है जिसे मोतीचूर (मोती के चूर्ण से संयुक्त) कहते हैं। उसका पानी अमृत है और कीचड़ कपूर है। परन्तु उसका पानी राजा पीता है। वह जब तक जीता है

नहीं होता। उसके पास एक सोने का पूरा है। वह ऐसा है जैसा कि स्वर्ग में इन्द्र है। उसकी जड़ पाताल में है और शाखा वर्ग में है। उस पर अगर है और कौन चख सकता है? चन्द्रमा उसके पते हैं और उसके फूल है। उसक यहां तक होता रहता है जहाँ तक कि यह नगर है। कोई तपस्या करके ही उसकी है। फिर यदि वृक्ष भी उसेखाले तो नव यौवन से सम्पन्न हो जाय। उस अमृत भोग के विषय में सुनकर उरी पाने के लिए राजा लोग भिखारी होग उसे पा लेता है वह अमर हो जाता है। उसे फिर व्याधि अथवा रोग नहीं रहते।

साजा राममंदिर कविलासू। सोने कर सब पुहुमि अकासू। सात खंड धौराहर साजा। उहै संवारि सकै अस राजा। हीरा ईट व कपूर गिलावा। औ नग लाइ सरग लै लावा। जाँवत सजै उरेह उरेहे। भाँति भाँति नग लाग उबेहे। भा कटाव सब अनबन भाँती। चित्र होत गा पाँतिहि पाँती। लांगे खंभ मनि मानिक जरे। जनहु दिया दिन आछत बरे। देखि धौरहर कर वैजियारा। छपि गे चाँद सूर औ तारा। सुने सात बैकुंठ जस तस साजे खंड सात। बेहर बेहर भाउ तेन्ह खंड खंड ऊपर जात ।। 48 ।।

व्याख्या-राजमन्दिर में राजा का कैलाश (अन्तःपुर) सुसज्जित है। इसके नीचे और ऊपर सर्वत्र सोना ही सोना है। महल के सात खंड हैं। ऐसा राजा ही उसे संभाल कर रख सकता है। उसमें हीरे की ईटें हैं और कूपर का गारा है। नग लगा कर उसे स्वर्ग (आकाश) तक ऊँचा पहुंचाया गया है। जितने भी चित्र हो सकते हैं वे सब वहां पर चित्रित हैं। उनमें तरह-तरह के नग लगाये गये हैं। फिर उसमें भाँति-भाँति के बहुत-से कटाव हैं। चित्र पंक्ति में बनाये गये हैं। जो खंभे लगे हुए हैं उनमें मणि और माणिक जड़ें हुए हैं। वे ऐसे लगते है जैसे दिन होते हुए भी दिये जल रहे हों। उस धवलगृह की चमक को देखकर तारे, चाँद और सूर्य फीके पड़ गये।

वैकुण्ठ, सात सुने जाते हैं। वैसे ही उस महल में सात खण्ड सजे हुए हैं। जैसे-जैसे ऊपर खंडों में जाते हैं वैसे-वैसे उनमें अलग-अलग भाव दिखाई देते हैं।

2.9 सारांश

जायसी सूफी काव्य-परम्परा के एक प्रमुख कवि ही नहीं थे, प्रमुख सूफी तत्व-चिन्तक भी थे। इस्लाम में सूफी शब्द रहस्यवादी का पर्याय माना जाता है। अतः उनके 'पद्मावत' में रहस्य भावना का सहज, सरल और तात्विक रूप पाया जाना स्वाभाविक है। 'काव्य की उस मार्मिक भावाभिव्यक्ति को रहस्यवाद' कहते हैं, जिसमें एक भावुक कवि अव्यक्त, अगोचर एवं अज्ञात सत्ता के प्रति अपने प्रेमोद्‌गार प्रकट करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है, उसे रहस्यवाद कहते हैं।' और दूसरी ओर डॉ. श्यामसुन्दर दास का अभिमत है कि "चिन्तन के क्षेत्र का ब्रह्मबाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर रहस्यवाद का रूप पकड़ता है।' स्पष्ट है कि रहस्यबाद के अन्तर्गत कवि किसी अलक्ष्य, अगोचर सत्ता तादात्म्य स्थापित करने के प्रयास में अपने प्रेमोद्‌गार व्यक्त करता है। इसीलिए उसके

दुख-सुख, आशा-निराशा और प्रेम-बिरह एक अमूर्तता ग्रहण कर जाते है जिसमें विलीन होकर कवि असीम आनन्द की अनुभूति करता है। काव्य में यह रहस्यवाद अनेक रूपों में उपलब्ध होता है। यथा-प्रेम-साधना परक, प्रकृतिमूलक, आध्यात्मिक अथवा यौगिक रहस्यबाद आदि। जायसी के 'पद्मावत' में रहस्यवाद के इन सभी रूपों का अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी निदर्शन देखने को मिलता है।

जायसी के 'पद्मावत' में भारतीय फारसी मिश्रित अद्वैती भावात्मक रहस्यवाद दृष्टिगोचर होता है। इस दर्शन में रहस्यवादी साधक ईश्वर को अपना परम साध्य अथवा प्रियतम स्वीकार करता है। प्रेम उसका वह मार्ग है जिसके द्वारा वह अपने परम प्रियतम तक पहुँचता है और आत्मा- परमात्मा का चिर-मिलन होता है। पद्मावती के रूप-सौन्दर्य में जायसी ने उसी अलक्ष्य सत्ता के असीम सौन्दर्य की झाँकी प्रदर्शित की है, जिसमें अलौकिक दीप्ति है-

2.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- "अपभ्रंश काव्य के बाद 'पद्मावत' हिन्दी का प्रथम महत्वपूर्ण महाकाव्य तो है ही, भारतीय जनजीवन को चित्रित करने वाला भी पहला महाकाव्य है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? सोदाहरण तर्क सम्मत उत्तर दीजिए।
- जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' का तत्कालीन संस्कृति की पृष्ठभूमि में मूल्यांकन कीजिए।
- "यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊँची कोटि की है।" इस मत के आधार पर जायसी के रहस्यवाद का विवेचन कीजिए।
- जायसी के रहस्यवाद की विशेषताएँ बताइए।
- जायसी की रहस्यानुभूति पर प्रकाश डालिए।
- "जायसी ने रहस्यबाद को भावात्मक रूप में प्रस्तुत करके हिन्दी साहित्य को बहुत बड़ी निधि प्रदान की है।" इस शक्ति के परिप्रेक्ष्य में जायसी के रहस्यवाद पर प्रकाश डालिए।
- "जायसी ने रहस्यबाद को भावात्मक रूप में प्रस्तुत करके हिन्दी साहित्य को बहुत बड़ी निधि प्रदान की है।" इस शक्ति के परिप्रेक्ष्य में जायसी के रहस्यवाद पर प्रकाश डालिए।
- "यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊँची कोटि की है।" इस मत के आधार पर जायसी के रहस्यवाद का विवेचन कीजिए।
- "बिरह-वर्णन में जायसी ने मसनवी-पद्धति का अधिक अनुसरण किया। जावमी का विरह-वर्णन कहीं-कहीं अत्यन्त अत्युक्तिपर्ण होने पर भी के इस मत के परिप्रेक्ष्य में जायसी के विरह-वर्णन की समीक्षा कीजिए।
- मलिक मुहम्मद जायसी के बिरह-वर्णन की उत्कृष्टपरता पर सोदाहरण प्रक डालिए।
- पद्मावत में प्रेम-व्यंजना का मूल्यांकन कीजिए।
- सिद्ध कीजिए कि "पद्मावत के माध्यम से जायसी ने लौकिक प्रेम के वर्णन द्वारा अलौकिक प्रेम की मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत की है।"
- "लौकिक प्रेम के वर्णन द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की गम्भीर व्यंजना ही जायसी का मुख्य उद्देश्य है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
- "अपभ्रंश काव्य के बाद 'पद्मावत' हिन्दी का प्रथम महत्वपूर्ण महाकाव्य तो है ही, भारतीय जनजीवन को चित्रित करने वाला भी पहला महाकाव्य है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? सोदाहरण तर्क सम्मत उत्तर दीजिए।
- अथवा
- जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' का तत्कालीन संस्कृति की पृष्ठभूमि में मूल्यांकन कीजिए।
- जायसी का 'पद्मावत' एक अन्योक्ति है अथवा समासोक्ति ? सोदाहरणविवेचना कीजिए।

2.11 पठनीय पुस्तकें

1 कबीर ग्रंथावली- सं. डॉ० श्याम सुंदर दास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2 जायगी ग्रथावली सं आचार्य रामचंद्र शुक्ल- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

3 हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि- डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना- श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

4 हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ० नगेन्द्र व डॉ० हरदयाल मयूर मुक्र, नई दिल्ली

5 विद्यापति पदावली आनंद प्रकाश दीक्षित साहित्य मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर

6 हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

7 पद्मावत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

इकाई – 3

विद्यापति, कबीर और जायसी से संबंधित आलोचनात्मक प्रश्न।

रूपरेखा

3.1 प्रस्ताबना

3.2 उद्देश्य

3.3 शब्द सम्पदा

3.4 मुक्तक काव्य की परम्परा

3.5 विद्यापति का श्रृंगार वर्णन

3.6 कबीर और जायसी के तुलनात्मक रहस्यवाद

3.7 सारांश

3.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

3.9 पठनीय पुस्तकें

3.1 प्रस्ताबना

अग्नि-पुराण में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है 'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षमः सताम।" अर्थात् मुक्तक रचना उसे कहते हैं जो अपना अर्थ व्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो। हींगल का कथन है कि जब विश्व-हृदय में प्रवेश करके कवि अपनी आत्मानुभूति को प्रकट करता है, उसे प्रकट करने में वह चित्त-वृत्तियों के अनुसार एक कविता का सृजन करके उसमें काव्योचित मधुरता और कोमलता का समावेश करता है, तो उसे 'गीति' कहते हैं। अर्नेस्ट राइस के अनुसार एक सफल मुक्तक वही है जिसमें "भाव या भावात्मक विचार की भाषा में स्वाभाविक स्पष्टीकरण हो।" महादेबी बर्मा के शब्दों में सच्चा और सफल गीत वह है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। अनुभूति को तीव्र बनाये रखने तथा उसको दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाव की अभिव्यक्ति पर थोड़ा संयम भी आवश्यक हो जाता है। जब बँधी हुई नाली में ही गति के साथ बह सकता है। यह नियन्त्रण और संयम बाहर से नहीं, वरन् स्वयं ही प्राप्त हो जाता है।" मुक्तक या प्रगीत काव्य में व्यक्तिगत अनुभूति की प्रधानता होती है। अतः गीतिकाव्य की रचना उसी समय होती है, जिस समय भाव घनीभूत होकर आवेश के साथ काव्योचित भावा में अभि- व्यक्त किये जाते हैं। भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य या मुक्तक का कोई अलग विभाजन नहीं; क्योंकि काव्य गेय ही होता है। इसलिए हिन्दी में उनको 'पद' नाम से पुकारा जाता है। अंग्रेजी में गीत को 'लिरिक' नाम दिया गया है; अर्थात् वह कविता जो 'लायर' पर गाई जा सके। किन्तु कालान्तर में गीत की यह विशेषता लुप्त हो गई और उसमें शब्दों का माधुर्य और लय को ही गीत मान लिया गया। कुछ समय उपरान्त अन्तःकरण की अभिव्यक्ति को ही गीत और मुक्तक की संज्ञा प्रदान की गई। इस प्रकार व्यक्तिगत भावना को ही मुख्य रूप से गीतिकाव्य की विशेषताओं में प्रधान माना गया है।

3.2 उद्देश्य

1. कबीर- कबीर ग्रंथावली को जान सकेंगे |
2. विद्यापति को जान सकेंगे |
3. जायसी को जान सकेंगे

3.3 शब्द सम्पदा

विद्यापति

कबीर

जायसी

3.4 मुक्तक काव्य की परंपरा

मुक्तक काव्य की परिभाषा और विकास-विद्यापति ने जो प्रसिद्धि प्राप्त की है, वह अपनी मुक्तक-रचना पदावली द्वारा ही की है। मुक्तक और गीत का साहित्य में बड़ा उच्च स्थान है। मुक्तक काव्य में प्रबन्ध काव्य की तरह कथा के द्वारा रसाभिव्यक्ति नहीं होती। उसमें प्रत्येक पद अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है। एक पद, एक ही भाव का सृजन करता है। प्रबन्ध काव्य और खण्ड काव्य से मुक्तक की रचना कठिन होती है, क्योंकि उसमें भाव की अभिव्यक्ति, मानसिक वृत्तियों की संक्षिप्तता के साथ व्यक्त करना तथा स्वाभाविक एवं सहज उद्‌गारों का सृजन और कोमलकांत पदावली आदि सभी विशेषताओं का ध्यान रखना पड़ता है। एक गीतिकार की सफलता तभी है जब कि वह उपर्युक्त तत्वों का निर्माण ठीक तरह से कर सके। महाकवि विद्यापति की पदावली के गीतों में ये सम्पूर्ण गुण विद्यमान हैं जिनको आगे हम उदाहरण देकर प्रस्तुत करेंगे। अब प्रश्न यह उठता है कि गीतिकाव्य या मुक्तक काव्य क्या है, उसका मूल- स्त्रोत क्या है और हिन्दी साहित्य का प्रथम गोतिकार कौन है। अभिनव गुप्ताचार्य ने मुक्तक की व्याख्या इस प्रकार है-

"मुक्तसन्येन् नालिङ्गतम् मुक्तकम्। तस्य सैज्ञायांकन्। पूर्वापर निरपेक्षणापि हियेन रसचर्वण क्रियते तदेव मुक्तकम्।।"

अर्थात् जिसका किसी भी पद या कविता से कोई पूर्वापर सम्बन्ध न हो, किन्तु फिर भी उससे रसानुभूति हो, उसे 'मुक्तक काव्य' कहते हैं।

कुछ विद्वानों ने मुक्तक की परिभाषा इस प्रकार दी है, "मुक्तक काव्य यह है, जिसमें हमारी वैयक्तिक भावना और अनुभूति संगीत युक्त होकर कोमलकांत पदावली के माध्यम से व्यक्त होती है।

अग्नि-पुराण में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है 'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षमः सताम।" अर्थात् मुक्तक रचना उसे कहते हैं जो अपना अर्थ व्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो। हींगल का कथन है कि जब विश्व-हृदय में प्रवेश करके कवि अपनी आत्मानुभूति को प्रकट करता है, उसे प्रकट करने में वह चित्त-वृत्तियों के अनुसार एक कविता का सृजन करके उसमें काव्योचित मधुरता और कोमलता का समावेश करता है, तो उसे 'गीति' कहते हैं। अर्नेस्ट राइस के अनुसार एक सफल मुक्तक वही है जिसमें "भाव या भावात्मक विचार की भाषा में स्वाभाविक स्पष्टीकरण हो।" महादेबी बर्मा के शब्दों में सच्चा और सफल गीत वह है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। अनुभूति को तीव्र बनाये रखने तथा उसको दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाव की अभिव्यक्ति पर थोड़ा संयम भी आवश्यक हो जाता है। जब बँधी हुई नाली में ही गति के साथ बह सकता है। यह नियन्त्रण और संयम बाहर से नहीं, वरन् स्वयं ही प्राप्त हो जाता है।" मुक्तक या प्रगीत काव्य में व्यक्तिगत अनुभूति की प्रधानता होती है। अतः गीतिकाव्य की रचना उसी समय होती है, जिस समय भाव घनीभूत होकर आवेश के साथ काव्योचित भावा में अभि- व्यक्त किये जाते हैं। भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य या मुक्तक का कोई अलग विभाजन नहीं; क्योंकि काव्य गेय ही होता है। इसलिए हिन्दी में उनको 'पद' नाम से पुकारा जाता है। अंग्रेजी में गीत को 'लिरिक' नाम दिया गया है; अर्थात् वह कविता जो 'लायर' पर गाई जा सके। किन्तु कालान्तर में गीत की यह विशेषता लुप्त हो गई और उसमें शब्दों का माधुर्य और लय को ही गीत मान लिया गया। कुछ समय उपरान्त अन्तःकरण की अभिव्यक्ति को ही गीत और मुक्तक की संज्ञा प्रदान की गई। इस प्रकार व्यक्तिगत भावना को ही मुख्य रूप से गीतिकाव्य की विशेषताओं में प्रधान माना गया है।

ऊपर गीतिकाव्य की जितनी भी परिभाषाएँ दी गई हैं, उनमें परस्पर कोई विशेष अन्तर नहीं, किसी में व्यक्तिगत भावना को मुख्य माना गया है, तो किसी में कोमलकांत पदावली और मधुरिमा के साथ-साथ लय द्वारा गाये जाने वाली कविता को ही 'गीत' की संज्ञा दी गई है। कुछ विद्वानों ने मानव-हृदय की कृतियों के भावावेशमय चित्रण को ही गीत माना है। इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गीतिकाव्य में निम्नलिखित विशेषताओं का होना आवश्यक है-

(1) यह स्वतन्त्र पद रचना होती है। (2) इसमें वयक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति होती है, जिसमें मानव-हृदय की सम्पूर्ण वृत्तियों का चित्रण हो सकता है। (3) संगीतात्मक और उसी के उपयुक्त कोमलकांत पदावली और सरल शब्दों का प्रयोग। (4) संक्षिप्तता और भावों का एकीकरण। (5) अपरिचित और मनगढंत शब्दों का प्रयोग अथवा दार्शनिक गुत्थियों को रखना गीतिकाव्य के लिए उपयुक्त नहीं। (6) भाषा और भावों की स्पष्टता गीतिकाव्य के लिए एक आवश्यक गुण है।

गीतों के भेद-इन गीतों को कई रूपों में देखा जा सकता है। जिन गीतों में प्रेम की सुन्दर और सफल अभिव्यक्ति होती है, उन्हें 'प्रेम गीत' कहा जाता है। इनमें प्रेमी और प्रेमिका वियोग और संयोग-दोनों अवस्थाओं के अपने उद्‌गारों को प्रकट करते हैं। प्रेम-गीत साहित्य की सबसे प्राचीन विधि है। मुक्तक काव्य की रचना अधिकतर प्रेम के रूप में ही की गई थी।

दूसरे वर्ग में व्यंग्य गीतों का स्थान है। हिन्दी साहित्य में इन गीतों का प्रचलन अधिक नहीं है। कबीर आदि सन्त और उपदेशकों ने इन गीतों को अपना कर अपने मत की पुष्टि में सहायता ली। तीसरे प्रकार के गीतों में भक्ति सम्बन्धी गीत है। तुलसी तथा अन्य भक्त कवियों ने इनको अपना कर अपने इष्टदेव की महत्ता को प्रकट किया है।

शोक गीतों की प्रथा भी अब हिन्दी में प्रचलित हो गई है। अनेक कवियों ने अपनी हृदयगत बेदना को गीत के रूप में निस्सारित किया है। युद्धगीत भी हिन्दी साहित्य की प्राचीनतम निधि है। वीरगाथा काल के अनेक कवियों वीर और योद्धाओं को उत्साहित करने के लिए अनेक गीतों का सृजन किया था। गीतिकाव्य की परिभाषा देने के उपरान्त यह आवश्यक है कि हम उसकी परम्परा के मूलस्को को भी देखें और साथ ही यह देखें कि हिन्दी ने इस क्षेत्र में प्रथम प्रयास करने वाला कौन था। मुक्तक काव्य की परम्परा-गीतिकाव्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। मनुष्यों में अपने व्यक्तिगत सुख-दुख की भावना को व्यक्त करने की प्रवृत्ति आदिकाल से रही होगी। हमारे पूर्वज ने तो गीत को इतना महत्व दिया कि एक वेद की रचना संगीत-कला के लिए ही की। सामवेद संगीतात्मकता से ओत-प्रोत है।

'गीत' शब्द का पूर्ण महत्व श्रीमद्भगवत्‌गीता में आकर प्रस्फुटित हुआ। गीत की रचना भी गेय होने के लिए ही हुई। 'गीता' का अर्थ भी यही है जो गाया जा सके।

वैदिक-कालीन साहित्य के उपरान्त बौद्धकालीन साहित्य में गीतों को प्रमुख स्थान मिला। ौद्धों की 'धेर' गाथाएँ भी गीत ही हैं। उनमें वैराग्य के प्रति हृदय की भावुकता और उत्साह के दर्शन मिलते हैं।

'गाथा' शब्द से भी गीतों का ही अर्थ लिया जा सकता है। वैदिक साहित्य में दो प्रकार

के गीतों की चर्चा है- 'ऋक' और 'गाथा'। ऋक उन गीतों को कहा गया है, जिनमें देवताओं

और ईश्वर की प्रार्थना की जाती है, किन्तु गाथाओं में मनुष्य और राजाओं का वर्णन होता है। जिस प्रकार अंग्रेजी में 'बैलेड्‌स' में प्रसिद्ध राजा या वीर का वर्णन मिलता है, उसी प्रकार संस्कृत और प्राकृत की 'गाथाएँ' मनुष्य के साहसिक कार्यों का वर्णन करने वाले गीत ही हैं। अपने समय में इनको वही महत्व प्राप्त था जो जन-समाज में गीतों को मिलना चाहिए।

कालिदास की रचना 'मेघदूत' खण्डकाव्य के अन्तर्गत ही मानी जाती है, किन्तु फिर भी उसमें व्यक्तिगत अनुभूति की प्रधानता है। संगीतात्मकता भी उसमें पर्याप्त है। इसलिए कुछ

विद्वानों का मत है कि 'मेघदूत' खण्डकाव्य होते हुए भी मुक्तक के गुणों से विभूषित है।

प्रकृति और अपभ्रंश में भी गीतों की परम्परा अक्षुण्ण रही। अनेक कवियों ने युद्ध के अवसर पर गीतों का ओजपूर्ण वर्णन किया। प्रेम के गीत भी अनेक लिखे गये। किन्तु वीरता सम्बन्धी गीतों की रचना भावना की न्यूनता के कारण साहित्य में अच्छा स्थान नहीं पा सकी। वीर-गीतिकार कवि अपने आश्रयदाताओं का यश गाया करते थे। वीरों को युद्धोत्साहित करना ही उन गीतों का कार्य था। राजपूत काल में इन वीर-गीतों का साहित्य में बड़ा प्रचलन रहा, किन्तु भारतवर्ष की दासता के साथ-साथ यह वीर-गीत भी लुप्त हो गये। अब इनका स्थान राष्ट्रीय गीतों ने ले लिया है। संस्कृत में यदि वास्तविक गीतिकाव्य के लक्षणों को देखें, तो हमको वे जयदेव के 'गीत- गोविन्द' में मिलेंगे। जयदेव ने मन को को मुग्ध करने वाली कोमलकान्त पदावली का व्यवहार करके गीतों में एक अद्भुत माधुर्य और सौन्दर्य भर दिया। जयदेव एक सफल गीतिकार के रूप में अवतीर्ण हुए। उन्होंने अपने गीति में अपनी आत्मा की इतनी सरस और मार्मिक अभिव्यक्ति की कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उसकी तुलना नहीं। जयदेव ने संयोग और वियोग-दोनों अवस्थाओं का चित्रण अपनी सूक्ष्म दृष्टि से ऐसा किया कि हम मन की सम्पूर्ण स्थितियों को उनके काव्य में चित्रित हुआ पा सकते हैं। जयदेव ने राधा और कृष्ण के विलास और क्रीड़ाओं का ऐसा सुन्दर चित्रण किया कि बाद के कवियों को बराबस हो उनका अनुकरण

करना पड़ा। जयदेव के 'गीत-गोविन्द' में कृष्ण का चित्रण एक ऐसे नायक के रूप में हुआ जो काम-कला में पूर्ण रूप से चतुर है। राधा भी एक पूर्ण युवती है और स्वयं को कृष्ण के ऊपर न्यौछावर करती है। कति ने राधा के अंग-प्रत्यंग का इतना सुन्दर चित्रण किया है जो अपनी समता नहीं रखता। जपदेव ने अपनी कविता को कोमलकान्त पदावली में लिखकर इतना माधुर्य और गेय बना दिया कि आज भी संस्कृत न समझने बाले भी उनके कुछ पदों को गाते हुए देखे जाते है। जयदेव ने अपने पदों में श्रृंगार रस को ही प्रमुख स्थान दिया है। कवि ने काव्यों को बिना किली सामाजिक और नैतिक बन्धन की परवाह किए व्यक्त किया है। राधा और कृष्ण के प्रत्येक क्रिया-कलाप को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर कवि ने उन्हें स्वतन्त्रता पूर्वक अभिव्यंजित कर दिया है।

जयदेव की इस रचना को वैष्णव भक्तों ने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुरूप ही माना है। उनका कथन है कि जयदेव ने कृष्ण की लीलाओं को ही अपनी रचना में स्थान दिया है। के बल्लभ-सम्प्रदाय में कृष्ण की लीलाओं को प्रमुख स्थान दिया गया है, किन्तु वे लीलाएँ कृष्ण बालरूपकी भी होती है और उनके जीवन के अन्य रूपों का चित्रण भी होता है। किन्तु जयदेव ने अपने काव्य में कृष्ण को एक प्रेमी के रूप में ही देखा है। उन्होंने प्रारम्भ में ही कह दिया है कि यदि विलास-कला के साथ-साथ हरि स्मरण करना हो, तो जयदेव की सरस्वती, अर्थात् गीत-गोविन्द द्वारा करना चाहिए। अतः जयदेव के गीतों को वैष्णवों ने अपना लिया और कीर्तन में प्रमुख स्थान दिया। विद्यापति का स्थान-विद्यापति ने जयदेव के अनुकरण पर ही अपनी 'पदावली' की रचना की। जयदेव के ही भाव और भाषा को अपने सम्मुख रखकर महाकवि विद्यापति ने अपनी लेखनी उठाई। विद्यापति ने जयदेव के मुक्तक काव्य की सरलता और माधुर्य का अनुकरण कर अपने काव्य में भी माधुर्य भर दिया। कोमलकान्त पदावली को अपना कर विद्यापति ने अपने पदी से ऐसा रस प्रवाहित किया कि समस्त उत्तर भारत उस रस में निमज्जित हो उठा। वे मुक्तक काव्य के सम्पूर्ण गुणों का अपने काव्य में समावेश करके गीतिकाव्य की परम्परा के प्रतिनिधि कवि बन गये। उन्होंने अपनी पदावली की रचना लोक-भाषा में करके उसमें जयदेव से भी अधिक मधुरना और कोमलता भर दी। उन्होंने स्वयं कहा-

'देसिल बअना सब जन मिट्ठा'

माधुर्य और कोमलता विद्यापति के गीतों की आत्मा है। उन्होंने अनुप्रासों का प्रयोग भी इसलिए किया कि उनके प्रयोग से मधुरता की वृद्धि होती है। विद्यापति ने अपने काव्य में कोमलकान्त पदावली का प्रयोग जयदेव के समान ही अपनाया। विद्यापति को अपनी भाषा पर गर्व भी था-

बालचंद बिज्जावई भाषा, दुहु नहि लागइ दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हर-सिंह सोहइ, इ निच्चय नाअर मन मोहइ ॥

अर्थात् बालचन्द्र और विद्यापति की माषा पर दुर्जनों को हँसी नहीं आ सकती, क्योंकि चन्द्रमा शिवजी के मस्तक पर विराजमान है और विद्यापति की भाषा नागरिकों के मन को मोहित करती है। विद्यापति को उपर्युक्त टक्ति से भी ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने पथ-प्रदर्शक जयदेव के निम्नलिखित श्लोक के कारण ही यह बात कही हो-

साध्वी माध्यीक चिन्ता न भवति भवतः, शर्करेकर्कशासि ।
द्राखे द्रक्षयन्ति के तवाममृत मृतमसि, क्षार नीरं रसस्ते ॥
माकन्द क्रन्द, कान्ताधर धरणि तल गच्छ पच्छन्ति भाव।
यावच्छङ्गार सार स्वतमिह जयवदेस्थ विण्वग्वचांसि ॥

अर्थात् जब तक श्रृंगार रस से ओत-प्रोत जयदेव के वचन विद्यमान हैं, तब तक हे महुए की मंदिरा। मुझे कोई नहीं चाहेगा। शक्कर तुम कर्कश हो, अंगूर अब तुमको भी कौन देखेगा ? अमृत तुम भी अब मृतवत हो। दूध तुम्हारे अन्दर भी पानी के अथर तुम भी पाताल चले जाओ। ही है, पके आम तुम भी अब रोओ, स्त्रियों जयदेव माधुर्य को अपनी कविता का सबसे बड़ा गुण समझते थे और यह सच भी है, क्योंकि उसी माधुर्य के कारण ही उनका नाम आज तक संस्कृत के प्रमुख गीतिकारों में लिया जाता है। विद्यापति ने भी माधुर्य को अपने गीतों का सबसे बड़ा गुण माना है।

विद्यापति ने अधिकतर प्रेम-गीत ही लिखे हैं। उन्होंने अपने गीतों में श्रृंगार-रस के दोनों पक्ष-संयोग और वियोग की सम्पूर्ण अवस्थाओं को लेकर ही विद्यापति ने अपनी कविता के मधुर स्त्रोत से हिन्दी साहित्य को आप्लावित कर दिया। एक सफल गीत में जिन-जिन विशेषताओं का होना आवश्यक होता है, वह सब महाकवि विद्यापति के पदों में पाई जाती हैं।

मुक्तक रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक पद एक-दूसरे से स्वतन्त्र होना चाहिए। विद्यापति की पदावली के सम्पूर्ण पद एक-दूसरे से पूर्वापर का कोई सम्बन्ध नहीं रखते। एक पद में केवल एक ही भाव को चित्रित किया गया है। विद्यापति को पदावली का प्रत्येक पद एक

सम्पूर्ण चित्र है। किन्तु प्रत्येक चित्र में भिन्नता को प्रमुखता दी है, सब चित्र अलग- अलग दृश्यों को उपस्थित करते हैं। कहीं-कहीं तो एक ही पद की एक-एक पंक्ति में भी विभिन्न भावों का द्योतन कराया गया है।

हम यहाँ प्रेम-प्रसंग के दो पद उद्धृत कर पदावली के पदों में जो भाव-स्वातन्त्र्य हैं, उसका प्रदर्शन करेंगे। दोनों ही एक-दूसरे के साथ हैं, किन्तु दोनों के भाव में कोई तारतम्य नहीं। दोनों पदों का अपना-अपना स्वतन्त्र स्थान है। यही स्वतन्त्रता मुक्तक की सबसे बड़ी विशेषता है-

पथ-गति नयन मिलल राधा कान।

दुहु मुख हेरइत दुहू भेल भोर।

इसी के नीचे का दूसरा पद यह है-

सजनी भल कए पेखल न भेल।

मेल-माल सँग तड़ित-लता जनि।।

हिरदय सेल दई गेल। आध आँचरि खस, आध बदन हँस।

आधिहि नयन तरंग।

आध उरज हेरि आध आँचर भरि ।।

तबधरि दगधे अनंग।

ऊपर के दोनों पदों का एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रथम पद में राधा और कृष्ण के राज-पथ में मिलने का दृश्य अंकित है। किस प्रकार उनके नेत्रों का मेल हुआ और किस प्रकार उन दोनों के हृदय में काम का संचार हुआ, तत्पश्चात् किस प्रकार वे प्रेम-विभोर हुए, इस सम्पूर्ण चित्र को प्रथम पद में चित्रित किया गया है। किन्तु दूसरे पद में कृष्ण के हृदय पर राधा के रूप सौन्दर्य को देखकर जो प्रभाव पड़ा है, उसका वर्णन है। एक पद के भाव का दूसरे पद के भाव से कोई सम्बन्ध नहीं। यही मुक्तक काव्य के पदों की स्वतन्त्रता का रूप है। विद्यापति एक सफल मुक्तककार हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण पदों में यह भाव स्वातन्त्र्य सर्वत्र रखा है। यद्यपि सम्पूर्ण पदावली की रचना श्रृंगार रस में ही की गई है, किन्तु फिर भी एक पद में दूसरे पद के भावों का सम्मिश्रण नहीं हुआ। गीतिकाव्य का दूसरा गुण यह है कि उसमें व्यक्तिगत भावनाओं को ही प्रमुख स्थान दिया जाता है। विद्यापति की पदावली में इस विशेषता का भी निर्वाह पूर्णरूपेण किया गया है। सम्पूर्ण पदावली के भाव एक व्यक्ति के ही भाव है। राधा और कृष्ण-दोनों ही अपने व्यक्तिगत प्रेम के विरह-मिलन के झोकों में झूलते हैं। जब मिलन के झूले पर वे झूलते हैं, उस समय उनके हृदय में आनन्द के अनेक स्रोत उमड़कर प्रवाहित होने लगते हैं। इस आनन्दातिरेक में उनके भावों में सुख और हर्ष के अनेक रूपों का दर्शन होता है। किन्तु फिर वही राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी विरह यातना से दुखी होकर अपनी वेदना को नाना रूपों में व्यक्त करती है। राधा की वेदना-उसकी अपनी वेदना है, उसका संसार के लोगों से कोई भी सम्बन्ध नहीं। यदि उसका प्रियतम उससे अलग है, तो उरस्के हृदय में नाना प्रकार की भाव-लहरियों तरंगित होने लगती हैं और इस प्रकार राधा अपने व्यक्तिगत भावों को कभी अपनी सखी से कहती है, तो कभी अपनी दासी के सम्मुख प्रकट करती है।

दुहु मन मनसिज पुरल संधान।।

समय न बूझए अचतुर चोर ।।

विद्यापति की पदावली में इस प्रकार की व्यक्तिगत भावनाओं के ताने-बाने को ही बुना गया है। कभी राधा आनन्द में है, तो वह अपने अतीत और संयोग की अनेक स्मृतियों और कल्पनाओं को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है। वियोगावस्था में विरहिणी के हृदय का तार-तार झकृत हो जाता है। उसे हृदय में अनेक भावों का उदय होता है कभी वह अपने प्रियतम की स्मृति में रोने लगती है, तो कभी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में चकोर की तरह व्याकुल हो उठती है। इस प्रकार महाकवि विद्यापति ने सुख और दुःख के छोटे से छोटे भावों का चित्रण बड़ी मार्मिक और सुन्दर प्रणाली से किया है। आदि से लेकर अन्त तक अनेक रंगों से अपने व्यक्तिगत दुख-सुख की भावनाओं को रंगा गया है। सम्पूर्ण पदावली इसी प्रकार के चित्रों का एक संग्रह-मात्र है। संयोग की अनेक दशाओं का चित्रण पहले किया है और उसके पश्चात् वियोगावस्था को उन दशाओं का भी चित्रण किया है जो संसार के भावों की अमूल्य निधि है। संयोगावस्था में राधा और कृष्ण के व्यक्तिगत भावों की अनेकरूपता के दर्शन कवि की सफलता के परिचायक है। पदावली का प्रथम पद ही एक प्रेमी की उस उत्सुकता को व्यंजित करता है जो वह अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा करने के अवसर पर प्रकट करता है-

"नन्दक नंदन कदम्बक तरु-तर धिरे धिरे मुरली बजाव।

समय संकेत-निकेतन बइसल बेरि-बेरि बोलि पठाव ।।
सामरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उद्‌वेगल, फिरि-फिरि ततहि निहारि ।।
गोरस बेचए अबइत जाइत, जनि-जनि पुछ बनमारि ।"

कृष्ण के हृदय की व्याकुल अवस्था का कितना सुन्दर चित्रण है। कृष्ण राधा की प्रतीक्षा कर रहे है और वंशी को धीरे-धीरे बजाकर राधा को बुलाने का उपक्रम करने में तल्लीन हैं। वह राधा के लिए प्रत्येक क्षण व्याकुल हैं। वे यमुना के समीप के उस वन की ओर, जिधर से राधा के आने की सम्भावना है, बार-बार देख रहे हैं। इस दृश्य में एक प्रेमी की भावना का कितना सच्चा चित्रण है। प्रत्येक प्रेमी को अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए जो उत्सुकता होती है उसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कर दिया गया है। यद्यपि कृष्ण की उत्सुकता उनकी व्यक्तिगत उत्सुकता है, किन्तु कवि ने उसको प्रत्येक प्रेमी की उत्सुकता बना दिया है।

वयः सन्धि की दशा में प्रत्येक नवयुवती की यही दशा होती है। कवि ने कितनी सरलता के साथ नायिका की इन भावनाओं और क्रियाओं का चित्रण किया है। प्रत्येक नवयुवती की यह व्यक्तिगत भावना ही होती है। वह इसी प्रकार के भावों का प्रदर्शन भी करती है। नायक ऐसी नवयुवती को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाता है और उसके मुख से अचानक ही एक ऐसे भाव का प्रस्फुटन होता है जो स्वाभाविक है। प्रत्येक युवक की दशा इसी प्रकार की होती है। कवि अपनी अभिव्यंजना शक्ति द्वारा उस युवक के हृदय के भावों को हमारे सम्मुख इस प्रकार रख देता है, मानो वह संसार के प्रत्येक युवक के भाव हों-

कि आरे ! नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ,
छओ अनुपम एक ठामा ।।

एक युवक के हृदय में इस प्रकार के भाव का प्रस्फुटन होना स्वाभाविक ही है। 'कि आरे' शब्द में भाव कितना घनीभूत हो उठा है। कवि ने यह पूर्णतः दिखा दिया है कि नायिका का नव- प्रस्फुटित यौवन आम्बर्य की वस्तु है। यौवन की प्रशंसा कवि ने यह कहकर की है 'जत देखल तत कहए न पारिअ' अर्थात् उस नायिका के यौवन और रूप-सौन्दर्य से नायक इतना प्रसन्न है कि उसने उसको अनिर्वचनीय ही घोषित कर दिया है।

संगीतात्मकता और संक्षिप्तता विद्यापति के गीतों का मुख्य गुण है। ऊपर करत किये समस्त पदों में संगीत की लय तनिक से प्रयास है ही आ जाती है। शब्दों का चुनाव किय कोमल है। कोई भी कर्कश शब्द कवि की किसी भी पंक्ति में नहीं है-

नन्दक मन्दन कदम्बक तरुतर,
धिरे धिरे मुरलि बजाब।

इन पंक्तियों में अनुप्रास की कितनी सुन्दर छटा है। साथ ही, शब्दों में कोमलता और माधुर्य है। संगीतात्मकता स्वतः ही पद में आ गई है। कृष्ण की प्रतीक्षा के चित्र को 10 पंक्तियों में ही चित्रित करके महाकवि विद्यापति ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। है। सम्पूर्ण पदावली में कोई भी विकृत या कर्कश शब्द ढूंढे के नहीं मिलेगा। जहाँ पर कवि को प्रेमानुभूति को व्यजित करना है, वहाँ तो कवि ने मधुरता और कोमलता को इतना अधिक स्थान दिया है कि वैसा अन्यत्र पाना कठिन है। वियोग वर्णन में विद्यापति के गीतों को भाव की दृष्टि से जो सफलता मिली, वह संयोग श्रृंगार में नहीं। संयोग में हृदय की वह दशा नहीं होती जो वियोग में होती है। विरहिणी का हृदय बेदना से तप्त होकर पारे के समान चढ़ता-उतरता रहता है। उस समय संसार की सम्पूर्ण बेदना को विरहिणी के हृदय में ही स्थान मिलता है। नीचे वियोग वर्णन के कुछ पदों को उद्धृत करके हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि विद्यापति के इन गीतों में मुक्तक की वह सम्पूर्ण विशेषताएँ मिलेंगी, जिनकी चर्चा हम कर चुके हैं-

विद्यापति की पदावली में अधिकतर पद इतने सुन्दर हैं कि उनको किसी भी समय इस प्रकार गाया जा सकता है, जैसे कि गीत और भजनों को गाया जाता है। पदावली की इन संगीतात्मकता के कारण ही उनको वैष्णव भक्तों ने अपने यहाँ कीर्तन में स्थान दिया और आज तक इन पदों को भक्त लोग बड़े आनन्द के साथ गाते हैं। चैतन्य और अन्य वैष्णव भक्तों की तो इन पदों को गाते समय ऐसी अवस्था हो जाती थी कि उनको अपने शरीर की सुधि भी नहीं रहती थी।

विद्यापति के पदों की माधुरता और कोमलता के कारण ही हिन्दी में गीतों की परम्परा चली। वैष्णव भक्तों ने, जो बंगाल से आकर ब्रजभूमि में इन पदों को गाया करते थे, बल्लभ सम्प्रदाय के अन्य भक्तों को भी प्रभावित किया। सूरदास ने अपने पदों की रचना विद्यापति के अनुकरण पर ही की।

उन्होंने कृष्ण की लालाओं को अपने पदों में गाया। सूरदास के पदों के भावों का कहीं-कहीं तो विद्यापति के पदों के भावों से इतना सोम्य है कि यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि सूर ने विद्यापति के अनुकरण पर ही मुक्तक रचना प्रारम्भ की।

सूर के पश्चात् तो मुक्तक रचना का समुद्र-सा उमड़ पड़ा। अष्टछाप के अन्य कवियों ने अपने हृदय के उद्‌गारों को गीतों में ही प्रकट किया। मीराँ भी कृष्ण-भक्तों में अपने मुक्तक- काव्य के कारण ही अमर हो गई।

अतः इन गीतों की परम्परा का श्रेय हमको विद्यापति को ही देना पड़ेगा। विद्यापति ने ही सबसे पहले अपनी पदावली की रचना की ओर उसके उपरान्त अनेक कवियों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। विद्यापति मुक्तक-काव्य की परम्परा के जनक हैं। उन्होंने अपनी पदावली में मुक्तक को जो रूप दिया, उसी को आगे के लोगों ने अपनाया। उनके गीतों में सफल गीतों के सम्पूर्ण लक्षणों का समावेश है। हृदय की वृत्तियों का जितना सुन्दर चित्रण विद्यापति ने किया, उतना सूर और मीरों के अतिरिक्त हिन्दी के अन्य कवियों में नहीं मिलता। संगीत विद्यार्षात के गीतों में पूर्ण रूप से है। संक्षिप्तता और मधुरता भी इनके पदों में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। इसलिए विद्यापति को एक सफल गीतकार मानने में हम गौरव का अनुभव करते हैं।

3.5 "विद्यापति का श्रृंगार वर्णन

विद्यापति की 'पदावली' के अध्ययन एवं मनन करने के उपरान्त तथा कुछ प्रमाणों के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि विद्यापति महाकवि कालिदास के समान शैव-श्रृंगारी भावना को अंकित करने वाले हैं। भारतीय साहित्य के आदि-युग में संयम और त्याग की शालीनधारा प्रवाहित थी। आने वाले युग में यह धारा ऐसी नहीं रही। श्रृंगार की मनोहारी धारा का उसमें संगम हुआ और संस्कृत के अनेक प्रतिभाशाली कवि भक्ति-मिश्रित श्रृंगार की रचनाएँ प्रस्तुत करने लगे। विद्यापति को यह प्रवाह विरासत में मिला और वे इस प्रवाह से अछूते न रह सके। शिव-पार्वती तथा राधा-कृष्ण की श्रृंगारी कथाएँ उनके लिए उर्वरा भूमि प्रस्तुत करने लगीं। श्रृंगार के भीतर शिव, गंगा, दुर्गा के प्रति उनकी उदात्तता और महानता स्थान-स्थान पर प्रकट होती है। किन्तु उनकी परिष्कृत भक्ति का उज्जवल उदाहरण गंगा के वर्णन में अत्यन्त सरल बन पड़ा है-

गंगाजी की उपासना करने वालों का कोई अलग सम्प्रदाय नहीं। गंगाजी के प्रति कवि ने जो अपनी भक्ति-भावना प्रकट की है, वह शिव-भक्ति के ही अन्तर्गत माननी चाहिए। इसी प्रकार की भक्ति-भावना विद्यापति ने शिव के प्रति व्यक्त की है-

कखन हरब दुख मोरे हे भोलानाथ।

दुखहि जनम भेल दुखहि गमाओल सुख सपनहु नहिं भेल, हे भोलानाथ।

एहि भव-सागर थाह कतहु नहि भैरव घरु करुआर, हे भोलानाथ। भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति देहु अभय यर मोहि, हे भोलानाथ।

इस प्रकार विद्यापति में शिव के प्रति भक्ति भावना अदम्य एवं उज्जवल रूप में व्याप्त है। कवि अपनी इस भक्ति-भावना को श्रृंगार के पार्श्व में अभिव्यक्त करके अत्यन्त सरस, निर्मल और रमणीय बना देता है। कवि ने पशुपति-भामिनी माया का दैत्य-संहारक रूप भी चित्रित किया है। उन्होंने अपनी पदावली में स्थान-स्थान पर कालिदास की भाँति सौन्दर्य-प्रदर्शन के लिए शिव के रूप का आलंकारिक प्रयोग किया है। कुछ उदाहरणं यहाँ पर्याप्त होंगे;

यथा- नायिका के बक्षस्थल पर मोतियों की माला पड़ी हुई है। विद्यापति को इस सौन्दर्य के वर्णन में जो सफलता मिली है, वह हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। विद्यापति को शम्भु के शीश मर ढलती हुई गंगा का स्मरण हो आता है-

गिरिबर-गरुन पयोधर-परसित, गिम गज-मौक्तिक हारा। काम कम्तु

भरि कनक सम्भु पर, ढारत सुरसरि धारा ॥

उपासना में भक्त शिव के शीश पर जल ढारता है। यहाँ ग्रीवा ही कम्बु बन गई है, जिससे काम-रूप मुख (स्कन्ध) गज-मुक्ताओं को गंगा जल के समान स्वर्ण-शम्भु रूपी कुचों पर ढार रहा है। इसमें विद्यापति की सम्पन्न भावुकता, सहृदयता तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति संगीत माधुरी के साथ विद्यमान है। जिस भाव या परिस्थिति का चित्र वे अर्थ की व्यंजना और शब्दों के नाद सौन्दर्य तथा उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपकों के सहारे करते हैं, वह गत्यात्मक रूप में सजीव होकर पाठक की कल्पना के सामने आ जाता है।

एक स्थल पर रमणी और अपने कुचों को अपने कमल-करों से झाँप लेती है, तो कवि को नखों में चन्द्रमा, हाथों में कमल और कुचों में (कनक शम्भु) शिव का अद्भुत सौन्दर्य भासमान होता है-

अम्बर बिघटु अकामिक कामिनि, कर कुच झाँपु सुछन्दा। कनक-सम्भु जनि अनुपम सुन्दर, दुइ पंकज दस-चंदा॥

सहृदय पाठक प्रथम दृश्य को हृदयंगम करके आनन्द-मग्न हो जायेगा। निम्न धरातल के पाठकों के मन में यह चित्र विकृत भावनाओं को ही जाग्रत कर सकेगा। परन्तु विद्यापति आगे इस उत्तेजनकारी सौन्दर्य को शांत स्निग्ध एवं शीतल बनाने के लिए नारी-सौन्दर्य को दिव्य- सौन्दर्य के रूप में अंकित कर देते हैं। कवि अपनी इस कला द्वारा पाठकों को आनन्द-लोक में पहुँचा देता है। विद्यापति अपनी इसी विशेषता के कारण श्रृंगार-वर्णन में रीतिकालीन कवियों से ऊपर उठ जाते हैं।

नारी-सौन्दर्य में, विशेषकर नारी वे वक्ष-सौन्दर्य के चित्रण में विद्यापति की विशेष रुचि एवं अनुराग रहा है। इस अनुराग के साथ वे अपनी प्रबल-शिव भक्ति को अंकित कर देते हैं। इस प्रकार के विधान में कवि के काव्य में यह विशेषता आ जाती है कि उनकी भक्ति भावना कला-सौन्दर्य के अधीन होकर व्यक्त होती है। उसका सौन्दर्य कभी नष्ट नहीं होने पाता।

शिव और शक्ति के रूप-सौन्दर्य का उपयोग विद्यापति ने जैसे मानवीय सौन्दर्य के उपमानों के लिए किया है, उसी प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य के भीतर भी। नायिका के घने काले बाल अस्त- व्यस्त होकर वक्षस्थल पर अपनी शोभा बिखेर रहे हैं। वक्षस्थल पर मोतियों की माला उन बालो के साथ क्रीड़ा-सी कर रही है। मोतियों की इस चमक में कवि एक दूसरा ही रूप पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है-

कुच जुग उपर चिकुर फुजि परसल,
ता अरुझाएल हारा।
जनि सुमेरु उपर मिलि ऊगल
चाँव बिहिन सब तारा ।।

कबि ने श्रृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का बड़ा ही रमणीय वर्णन किया है, जिसको पढ़ने से विद्यापति की कवित्व-शक्ति का पता चलता है। कवि ने शास्त्रीय पद्धति के अनुसार नायिका की वयःसंधि, नखशिख निरूपण, सद्यः रनाता, अभिसार आदि के अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किये हैं। पवन के स्पर्श से नायिका का अम्बर खिसक गया है और उसकी देह दीख गई है। कवि इसका रमणीय चित्र पाठकों के सामने अत्यन्त सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। कवि की इस भावना में अवगाहन करने से श्रृंगार भावना में अत्यन्त निर्मल एवं हृदयस्पर्शी उद्‌गार के दर्शन मिलते हैं-

ससन-परस खसु अम्बर रे, देखल धनि देह।
नव जलधर-तर चमकए रे,
जनि बिजुरि रेह।

कवि ने नवीन बादलों के मध्य संचरण करती हुई बिजली के उपमान द्वारा नायिका की देह का सजीब वर्णन प्रस्तुत करके पाठकों को चमत्कृत एवं तन्मय कर दिया है। एक-दूसरे स्थल परमका किती करने से जलती हुई पारेका उसके रूपरमार है

आज पेच्खाल भत्रि आइत रे, भोषि उपजल रेम। कनकलता अनि संचर है, परि फिर अवलन्‌।

मानो पृथ्वी पर स्वर्णलता निराधार हो संचारित हो रही है। इस प्रकार को रूप-योजना में कम होकर पातक अपने आप को भूल जाता है।

विद्यापति उच्च श्रेश सुन्दरी की एक-एक मानसिक भावभंगियों और काषिक चेक्षाओं को सफलतापूर्वक चित्रित करते हैं-

मेलि कामिनि गजद्द गाभिनि, बिहसि पलरिं निहारि। इन्द्रजालक कुसुम सायक, कुरिकि भेलि भर चारि। जोरि भुज जुग भोरि बेडल, ततहि बदन सुकन्द। दाम चायक काम पूजत्र, जहत्ते सारद चन्द। उरहि अंचल ज्ञापि चंचल, आध पयोधर हेरु। पौन पराभव सरद-धन जानि, बेकत कएल सुभेरु।

इस प्रकार के सजीव वर्णन सहदय पाठकों को मोह लेते हैं। इन वर्णनों के अतिरिक्त विद्यापति नागिका को चगः सन्धि वर्णन के सिद्ध कलाकार है। रीतिकालीन कवियों ने यद्यपि चयः सन्धि के अत्यन्त चमत्कारी वर्णन प्रस्तुत किये है, परन्तु विद्यापति के वर्णन में जो रस-मानता है, वह उनमें नहीं मिलती। जैकन और चौक्न एक-दूसरे से युद्ध कर रहे हैं। एक नायिका के केशों को बाँध देता है और दूसरा उन्हें अस्त-व्यस्त कर देता है। यदि एक उसके मुख पर हास्य की रेखाओं को अंकित करता है, तो दूसरा उसके मुख को अंचल से आवृत्त कर देता है। एक उसको आँखों को कोणों में फेंक देता है, तो दूसरा उसके अंचल को धूल-धूसिरत कर देता है। इस प्रकार गुत्थनमुत्था के प्रतिफल को स्वरूप गौवन की विजय होती है। चरणों का चांचल्य नेत्रों में समा जाता है और दर्पण लेकर नायिका का अब नित्य श्रृंगार करती है। वह बड़े ध्यान से काम-कथा सुना करती है। इस प्रकार कवि ने मूर्तिमत्ता इस के साथ गतिशीलता का संचार करके श्रृंगार को अत्यन्त भव्य एवं संवेदनीय रूप में प्रस्तुत किया है।

वि विद्यापति कला को पूर्ण बनाने में कुशल कवि है। उनके समान ऐसा कोई सफल चितेरा ना हिन्दी साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। विद्यापति ने संयोग के वर्णनों में ही अपनी वृत्ति अधिक रमाई है और ये वर्णन इतने अनूठे, रमणीय और मनोहर है कि पाठक को सम्भय किये बिना नहीं छोड़ते। वियोग-वर्णन में विद्यापति अधिक रमते हुए दिखाई नहीं देते। परन्तु वियोग का श्रेष्ड एवं मुग्धकारी वर्णन करने में वे पूर्ण सफल रहे हैं। एक चित्र देखिए- "अनुखन माधव-माधब सुमरइत सुन्दरि भेलि मधाई।" आदि

अस्तु, उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि "विद्यापति श्रृंगार-प्रधान भाबुक भक्त कवि है। अन्तःसलिला सरिता के रसमान श्रृंगार की बालुका-राशि से आवृत्त रहने पर भी ये सबंदा सुन्दर, सरस तथा शीतल है।"

1. संकेत-

नंदक-नंदन कदम्बक-तरु तर, धिरे धिरे मुरलि बजाव। समय संकेत निकेतन बड़सल, बेरि-बेरि बोलि यठाव ॥ सामरि, तोरा लागि, अनुखन, बिकल मुरारि। जमुनाक तिर उपबन उदवेगल, फिरि-फिर ततहि निहारि ॥ गोरस बेच्चए अबइत-जाइत, जनि-जनि पुछ बनमारि। तोहे मतिमान सुमति मधुसूदन, बचन सुनह किछु मोरा। भनड़ विद्यापति सुन बर जौबति, बंदह नैद किसोरा ॥॥ ॥

प्रसंग-श्रीकृष्ण निश्चिः समय पर निर्धारित गुप्त स्थान पर बैठे हुए हैं, पर राधा के वहां न पहुँचने के कारण अत्यन्त विफर हो रहे हैं। उनकी विफलता का वर्णन करती हुई राधा के सखी अथवा कृष्ण की दूती राधा को वहाँ जाने के लिए प्रेरित कर रही है।

व्याख्या-हे राधिका, नन्द का पुत्र कदम्ब वृक्ष के नीचे बैठकर धीरे-धीरे मुरली बज रहा है। पूर्व निश्चित मिलन-स्थल पर निर्धारित समय के अनुसार पहुँच गया है और वहाँ बैठकर बार-बार मुरली के माध्यम से, मुरली के स्वर में, तेरा नाम ले-लेकर तुझे बुला रहा है। हे श्यामा, मुरारि तेरे लिए प्रतिक्षण व्याकुल है और तू है कि अभी तक अपने वचनानुसार उसके निकट नहीं गई। यमुना के तीर पर उस उपवन में उद्विग्नता के साथ बार-बार वह उसी ओर देख रहा है, जिस ओर से तेरे वहाँ जाने की सम्भावना है, जो भी गोपिका गोरस बेचने के लिए उधर से आती जाती है, वह बनमाली उसी से तेरे बारे में पूछता है। हे बुद्धिमती राधा, श्री कृष्ण तुझ में हो लबलीन है, अतः तू कुछ मेरी बात भी सुन। (विद्यापति कहते हैं) हे श्रेष्ठ युवती सुन, नन्दकिशोर की वन्दना कर। (उसे स्वयं को समर्पित करके उसकी व्याकुलता को दूर कर)।

विशेष (1) इस पद के शब्द-चयन अत्यन्त समृद्ध एवं भावानुकूल है। 'नंदक-नंदन' में नंदन शब्द कृष्ण के व्यक्तित्व को साकार बना रहा है। (2) 'तोहे मतिमान सुमति मधुसूदन' में राधा और कृष्ण के प्रेम को औचित्य बताया गया है। (3) 'मधुसूदन' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग होने से 'परिकर अलंकार' है। (4) 'सामरि' शब्द के प्रयोग से राधा के अपार सौन्दर्य और तज्जन्य आनंद का बोध होता है। 1

2. संकेत-

देख-देख राधा रूप अपार।

अपरुब के बिहि आति मिलाओल, खिति तल लाबनि-सार ॥

अंगहि अंग अनंग मुरछाएत, हेरए पडए अथीर। मनमथ कोटि मथन करु जे जन, से हेरि महि-मधि गीर।।

कत-कत लखिमि चरन-तल नेओछए, रंगिनि हेरि बिभोरि।

करु अभिलाख मनहि पद पंकज, अहनिसि कोर अगोरि ॥ 2 ॥ प्रसंग-इन पंक्तियों में कवि ने राधा के विलक्षण सौन्दर्य का वर्णन करके उनकी वंदना की है-

व्याख्या-राधा के अपार सौन्दर्य की ओर तो देखिए। न जाने किस नवीन ब्रह्मा ने पृथ्वो पर इस सौन्दर्य-तत्व की रचना की है? कहने का भाव यह है कि जिस ब्रह्मा ने इस सम्पूर्ण सृष्टि को रचना की है उसने राधा की रचना नहीं की, क्योंकि वह इतने सौन्दर्य की रचना नहीं कर सकता। राधा की रचना करने वाला तो कोई और ही नवीन ब्रह्मा है। राधा के प्रत्येक अंग की शोभा को देखकर कामदेव चंचल हो जाता है और मूच्छित हो जाता है। जो कृष्ण करोड़ों कामदेवों को भी अपने सौंदर्य से लज्जित करने वाले हैं, वे भी राधा के अपार सौन्दर्य को देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, अर्थात राधा के विलक्षण सौन्दर्य के प्रभाव को वे भी सहन नहीं कर पाते। सुन्दरी राधा के सौन्दर्य को देखकर न जाने कितनी-कितनी लक्ष्मी बेसुध होकर उनके चरणों पर न्यौछावर होती है और मन ही मन यह अभिलाषा करती हैं कि वे राधा के चरण कमलों को दिन-रात संभालकर अपनी गोदी में रखें।

विशेष- (1) राधा के लोकातीत सौन्दर्य का वर्णन करके कवि ने राधा की असाधारणता की ओर संकेत किया है। (2) 'देख-देख' शब्दों की आवृत्ति से राधा का अपार सौन्दर्य और उसे दिखाने की आतुरता साकार हो उठी है। (3) 'अंगहि अंग' के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि राधा सर्वांग सुन्दरी थी।

3. संकेत- कनक-भूधर-शिखर वासिनि चन्द्रिका-चारु-हासिनी दशन-कोटि-विकास-बंकिम-तुलित-चंद्रकले। क्रुद्ध-सुररिपु-बलनिपातिनि महिष-शुम्भ-निशुम्भ-घातिनी भीत-भक्त-भयोपनोदन-पाटव-प्रबले । जय देवि दुर्गे दुरिततारिणी दुर्ग-मारि-विमर्द-कारिणी भक्ति-नम्न-सुरासराधिप-मंगलायतरे।

गगन-मंडल-गर्भगाहिनी समर-भूमिषु सिंहवाहिनी

परशु-पाश-कृपाण-सायक-शंख-चक्र धरे। अष्ट-भैरवि-संग शालानि स्वकर-कृत्त-कपाल-कदम्ब-मालिनि।

दनुज-शोणित-पिशित-वर्द्धित-पारणा-रभसे।

संसारबंध-निदानमचिनि चंद्र-भानु कृशानु-लोचनि योगिनी-गण-गीत-सोभित नृत्यभूमि रसे।

जगति पालन-जनन-मारण-रूप-कार्य-सहस्त्र-कारण

हरि-विरंचि-महेश-शेखर चुम्ब्यमान पदे ।

सकल-पापकला-परिच्युति सुकवि विद्यापति-कृत-स्तुति तोशिते षिबसिंह-भूपति-कामना फलदे ॥ 41

प्रसंग-इस छंद में दुर्गा देवी की प्रार्थना है।

व्याख्या-स्वर्ण पर्वत की चोटी पर निवास करने बाली, चाँदनी के समूह के समान सुन्दर हास्य बाली, युद्ध में क्रोधित होकर असुरों के बल को नष्ट करने बाली, महिष, शुम्भ और निशुम्भ राक्षसों का वध करने वाली, डरे हुए भक्तों के प्रबल भय-समूह का नाश करने में समर्थ, पापों को नष्ट करने वाली दुर्गस्थ शत्रुओं का मद चूर्ण करने वाली दुर्गा देवी की जय हो। भक्ति से नम्र बने हुए देवता और राक्षसों के अधिषों का भी कल्याण करने बाली, गगन-मंडल के रहस्य को जानने वाली, समर-भूमि में सिंह की सवारी करने वाली, परशु, पाश, कृपाण, बाण, शंख और चक्र को धारण करने वाली उस दुर्गा की जय हो जिसके साथ अनुचर की भाँति सदैव आठों भैरवियों रहती हैं, जो अपने ही हाथों से काटे हुए मुडों की माला धारण किए रहती है। राक्षसों के खून और माँस के भोजन को आनन्दपूर्वक करने वाली, संसार के बन्धनों का पूर्णतया नाश करने वाली, चन्द्रमा, -सूर्य और अग्नि के समान ज्योतियुक्त नेत्रों वाली, सरस नृत्य भूमि में योगिनियों के समूह के गीतों में सुशोभित, संसार की उत्पत्ति, उसका पालन और नाश करने वाली, सहस्रों कार्य की कारण-स्वरूपा, ब्रह्मा, विष्णु और महेश जिसके चरणों की पूजा करते हैं, जो समस्त पापों से मुक्त करने वाली है. उस दुर्गा देवी की जय हो। सुकवि विद्यापति के द्वारा उसी की स्तुति की गई है। यह देवीं राजा शिवसिंह को सन्तुष्ट करने वाली तथा उनकी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। संकेत- जय जय संकर जय त्रिपुरारि। जय अध पुरुष जयति अध नारि।

आध धाल ननु आधा गारा

। आध सहज कुच आध कटोरा।

आध हड़माल आध गजमोती। आध चानन सोह आध विभूती। आध चेतन मति आधा बोरा। आध पटोर आध मुंज-डोरा। आध जोग आध भोग विलासा। आध पिधान आध दिग-बासा। आध चाप आघ सिंदूर सोभा। आध बिरूप आध जग लोभा। भने कबिरतन विधाता जाने। दुहु कए बाँटल एक पराने ॥ 5 ॥

प्रसंग-इस छंद में शंकर की स्तुति है। अर्थ-हे शंकर ! हे असुरों के शत्रु । तुम्हारी जय हो। हे अर्द्ध नारीश्वर । तुम्हारी जय हो। तुम्हारा आधी शरीर तो स्वच्छ अर्थात् उज्जवल है और आधा गौर वर्ण का है। तुम्हारे शरीर के एक भाग में तो स्तन हैं और दूसरा भाग स्तन रहित है। तुम्हारे गले में जो माला है वह भी आधी अस्थियों की और आधी गज मुक्ताओं की है। शरीर के एक भाग में चन्दन का लेप है, दूसरे भाग में विभूति रमाई हुई है। तुम्हारा बुद्ध भो आधी चेतन है और उन्मत है। तुम्हारे शरीर का आधा भाग तो रेशमी वस्त्रों से ढका हुआ है और आधे में केवल पूँज की मेखला ही लिपती हुई है। हे अर्द्धनारीश्वर ! तुम्हारा आधा शरीर योगी है और आधा भोग-विलास में लिप्त है। तुम्हारा आधा शरीर बस्त्रों से बढका हुआ है और आधा कबल हाथी के चर्म को पहने हुए है। तुम्हारे मस्तक पर आधे में चन्द्रमा और आधे में सिन्दूर शोभा पाता है। तम्हारा आधा रूप तो जनक है और आधा जग को मोहित करने वाला है। कविरत्न विद्यापति कहते हैं कि यह तो केवल भगवान ही जानता है कि उसने एक प्राण को दो भागों में

क्यों बाँट दिया है। विशेष शिव-पूजा में अर्द्धनारीश्वर के रूप में भी उसकी पूजा का विधान है। कवि ने इस पद में शिव की अर्द्धनारीश्वर के रूप में ही स्तुति की है।

अलंकार-शिव के अनेक गुणों का वर्णन होने से उल्लेख अलंकार।

5. संकेत-

तातल सैकत बारि-बिन्दु सम, सुत-मित-रमनि-समाज।

तोहे बिसारि मन ताहे समरपिनु, अब मझु हब कौन काज।

माघब, हम परिनाम निरासा।

तुहुँ जगतारन दीन दयामय, अतय तोहर बिसबासा।

आध जनम हम नींद गमायनु, जरा सिसु कत दिन गेला। निधुबन रमनि रभस रंग मातनु, तोहें भजब कोन बेला।

कत चतुरानन भरि भरि जाओत, नतुअ आदि अबसाना।

तोहे जनमि पुन तोहे समाओत, सागर लहरि समाना।

भनइ विद्यापति सेष समन भय, तुअ बिन गति नहिं आरा।

आदि अनादिक नाथ कहओसि, अब तारन भार तोहरा ॥ 8 ॥

प्रसंग अपने उद्धार के लिए कवि अथवा कोई भक्त कृष्ण से प्रार्थना कर रहा है। व्याख्या-तप्त बालू पर पड़ी हुई पानी की बूँद के समान मेरा मन भी पुत्र, मित्र, रमणी और समाज से घिरकर अस्तित्वहीन हो गया है। मैंने आपको भुलाकर अपना मन उनको समर्पित कर दिया। मुझे समझ में नहीं आता कि अब मेरा क्या उपाय होगा। हे कृष्ण! हमें तो परिणामस्वरूप निराशा ही मिली है, हे प्रभु । तुम दीनों पर दया करने बाले और जगत का उद्धार करने बाले हो। मैंने तो तुम्हारा ही विश्वास किया है। हे प्रभु! मैने आधा जीवन सोकर बिता दिया और बुढ़ाप तथा शैशव में भी कितने ही दिन व्यर्थ खो दिए। अपना यौवन मैंने सुन्दरियों के साथ रास-रंग में बिता दिया। तुम्हारा भजन मैं किस समय करूँ ? चतुर्मुख वाले ब्रह्मा कितने ही जन्म लेते है और कितने मरते हैं, लेकिन तुम्हारा न आदि है, न अन्त है। तुम्हीं से सभी जन्म लेते हैं और तुम्ही में उसी प्रकार समा जाते हैं, जिस प्रकार सागर में लहरें समा जाती हैं। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे कृष्ण । तुम्ही मेरे भय को दूर करो। तुम्हारे सिवा मेरा कोई दूसरा नहीं तुम आदि और अनादि के नाथ कहलाते हो। अब मेट उकार करने का भार तुम पर ही है।

सैसब जीबन दहु मिलि गेल। स्रवनक पथ दुहु लोचन लेल ॥ बच्चनक धातुरि लहु-लहु हास। धरनिये चाँद कएल परगास ॥ मुकुर हाथ लए करए सिंगार। सखि पूछए कइसे सुरत-बिहार।। निरजन उरज हेरए कत बेरि। बिहुँसए अपन पयोधर हेरि।। पहिले बदरि-सम पुन नवरंग। । दिन-दिन दिन-दिन अनंग अगोरल अंग ॥ माधव पेखल अपरुब बाला। सैसब जोबन दुहु एक भेला ॥ विद्यापति कह तोहें अगेआनि। दुहु एक जोग एह के कह सयानि ॥ 9 ॥

प्रसंग नायिका (राधा) की वयः सन्धि का वर्णन करती हुई राधा की सखी अथवा दूती से कह रही है। श्रीकृष्ण व्याख्या-वयः सन्धि में राधा के बचपन और यौवन दोनों परस्पर मिल गए हैं। दोनों नेत्रों ने कानों का मार्ग ले लिया है, अर्थात् नेत्र विशाल होकर कानों की ओर बढ़ने लगे हैं। वचनों की ती चतुरता मंद-मंद हँसी में बदल गई है, अर्थात् वह बोलती कम है और नेत्रों को अधिक चलाती है। उसकी हँसी इतनी निर्मल और मधुर है, रहै, मानो धरती पर चन्द्रमा प्रकाश कर रहा हो, अर्थात् पृथ्वी पर स्वच्छ चाँदनी छिटकी हुई पड़ती हो। अब वह हाथ में दर्पण लेकर श्रृंगार करती है और अपनी करजी से पूछती है कि प्रेम-लीला कैसी होती है? बार-बार निर्जन स्थान में अपने उरोजों को देखती और अपने उरोजों को देखकर वह हँसती है अर्थात् अपने बढ़े हुए उरोजों को देखकर उसे हर्ष होता है। जो उरोज पहले बेर के फल के समान छोटे थे, वे अब नारंगी के समान बड़े बन गए हैं। प्रतिदिन कामदेव उसके अंगों पर पहरा दिए हुए हैं, अर्थात् उसके अंग-अंग में काम वासना प्रतिदिन बढ़ती जाती है। हे कृष्ण । मैंने ऐसी वयः सन्धि से युक्त वह अपन वाला देखी जिसमें शैशव और चैवन दोनों मिलकर एक हो गये हैं। विद्यापति कहते हैं कि तू तो मूखा है। भला कान चतुर स्त्री कह सकती है कि ये दोनों-शैशव और यौवन-एक साथ रह सकते हैं। भाव यह है कि यद्यपि वयः सन्धि में शैशव और यौवन दोनों मिले हुए होते हैं, फिर भी यौवन का ही प्रभाव अधिक होता है। विशेष-वयः सन्धि में नायिका में अनेक परिवर्तन आ जाते हैं। उन परिवर्तनों का वर्णन भी इस 7. पद में बड़ी सफलता से किया गया है। संकेत- माधव, की कहब सुन्दरि रुपे। कतेक जतन बिहि आनि समारल देखल नयन सरुपे ॥ पल्लवराज चरन-जुग सोभित गति गजराजक भाने। कनक कदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने ॥ भेरु उपर हुई कमल फुलायल नाल

बिना रुचि पाई। मनिमय हार धार बहु सुरसरि तओ नहिं कमल सुखाई ।। अधर बिंबसन दसन दाड़िम-बिजु रबि-ससि उगथिक पासे। राहु दूर बस नियर न आवथि तँ नहिं करथि गरासे ।। सारंग नयन बयन पुनि सारंग सारंग तसु समधोन। सारंग ऊपर उगल दस सारंग केलि करथि मधुपाने ।। भनइ विद्यापति सुन बर जोबति एहन जगत नहिं आने।

राजा सिबसिंघ रूप नारायण-लखिमा देइ पाति रमाने ।। 13 ।। प्रसंग नायिका (राधा) की सखी अथवा दूती कृष्ण की नायिका (राधा) की और आकर्षित करने के लिए उससे नायिका के सौन्दर्य का वर्णन कर रही है।

व्याख्या-हे कृष्ण ! उस सुन्दरी के रूप को किस प्रकार कहा जाये ? अर्थात् वह इतनी सुन्दर है कि उसके सौन्दर्य का वर्णन ही नहीं किया जा सकता। उसको प्रत्यक्ष देखकर ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मा ने अनेक यत्न करके उसके सौन्दर्य को संवारा है। उसके दोनों चरण कमल के समान सुशोभित है, उसकी चाल हाथी की चाल के समान मतवाली है। उसकी सोने के केले के समान सुन्दर जंघाओं पर सिंघ की कटि के समान सूक्ष्म कटि स्थित है; अर्थात् उसकी जंघाएँ सुन्दः और कमर पतली है। उसकी पतली कटि पर सुमेरु पर्वत के समान उसका उन्नत वक्षस्थल हैं। उर पर दो कमल के समान उसके दो पयोधर हैं। जो खिले हुए है और बिना नाल के के ही शोभा बक्षस्थल पर सम्पन्न बने हुए हैं। उसके वक्षस्थल पर पड़े हुए मणियों के हार की लड़ियाँ पर्वत से निकली हु। गंगा की अनेक धाराओं के समान है। इन्हीं धाराओं के कारण तो कमल रूपी पयोधर सूखते नह हैं। कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार धाराओं के बीच आया हुआ कमल सूखता नहीं है, उसे प्रकार हार की लड़ियों के कारण उसके पयोधरों की शोभा नित्य-प्रति बढ़ती जाती है। उसके अधा बिंबाफल के समान लाल है। उसके दाँत अनार के बीजों (दानों) के समान हैं। उसके मस्तक पा लगे हुए सिंदूर का लाल टीका ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सूर्य और चन्द्रमा आस-पास उग आये हों। उसके केश-रूपी राहु इनसे दूर ही रहता है, उसके पास नहीं आता, इसी कारण वह इन्हें प्रस नहीं पाता। भाव यह है कि उसके केश सदैव सँवरे हुए रहते हैं। वह हरिण के समान सुन्दर नेत्र वाली, कोकिल के समान मृदुभाषिणी है उसके कटाक्ष कामदेव के संधान के समान है, अर्थात् वह जिस पर भी कटाक्ष करती है वही काम-भावना से पीड़ित हो जाता है। उसके मुख-रूपी कमल पर अनेक भ्रमर-रूपी लटें मंडरा रही हैं, जो ऐसी ज्ञात होती हैं मानो भ्रमर मधु का पान करके केलि कर रहे हैं। विद्यापति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ युक्ती! सुनो, इस संसार में लखिमादेवी के पति राज शिवसिंह के अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है, तो तुम्हारे सौन्दर्य के रहस्य को समझ सके।

विशेष-1. भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता। 2. परम्परागत उपमानों का प्रयोग। 3. अपना अभिप्राय गूढ़ रीति से व्यक्त करने के कारण व्यंग्य-विदग्धा सखी।

8. संकेत-

चाँद-सार लए मुख घटना करु, लोचन चकित चकोरे।

अमिय धोए आंचर धनि पोछल, दह दिसि भेल उंजोरे। जुग जुग के बिहि बूढ़ निरस उर, कामिनी कौन गढ़ली ? रूप सरूप हमे कहए न पारिअ, लोचन लागि रहली। गुरु नितम्ब भरे चलए न पारए, माझहि खीनी निमाई। भाँगि जाइति नमसिज धरि राखलि, त्रिबलि लता अरुझाई। भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक, ई सब वचन सरूपे।

रूपनरायन ई रस जानथि, सिबसिंह मिथिला खूपे ।। 14 ।। प्रसंग नायिका (राधा) की सखी अथवा दूती नायक (कृष्ण) से उसके सौन्दर्य का कर रही है।

वर्णन व्याख्या-ब्रह्मा ने चन्द्रमा का सौन्दर्य-तत्व लेकर उसके (राधा के) मुख की रचना का है। चकोर के नेत्रों की कंचलता लेकर उसके नेत्रों को बनाया है। वह बाला जब अपने मुख का अमृत से धोकर आँचल से पोंछती है तो उसकी मुख-कांति से दसों दिशाओं में प्रकाश फैल जाता है। कहने का भाव यह है कि उसका मुख बहुत ही कांति वाला है। इस सृष्टि की रचना करने बाला ब्रह्मा तो युग-युग से बूढ़ा और नीरस हृदय वाला है, फिर न जाने इतनी तनी सुन्दर बाला को किसने गढ़ा है? उसके सौन्दर्य के स्वरूप का वर्णन हमसे नहीं हो पा रहा है। उसका सौन्दर्य हमारे नेत्रों में लगकर ही रह गया है; अर्थात् उसका सौन्दर्य हमारे नेत्रों में तो पूर्णरूप से बसा हुआ है, पर हम उसका वर्णन करने में असमर्थ हैं। अथवा, उसके सौंदर्य का वर्णन हमसे इसलिए नहीं होता है कि उसके सौन्दर्य पर हमारे नेत्र जहाँ पड़ते हैं, वे कहीं के हो रहते हैं। वह बाला अपने भारी नितम्बों के कारण चल भी नहीं पाती। विधाता ने उसको मध्य से क्षीण बनाया है। अर्थात् उसकी कटि पतली है। कहीं उसका शरीर बीच में से टूट न जाय, इस भय से कामदेव ने उसकी त्रिवली-रूपी लताओं से बाँध रखा है। विद्यापति कहते हैं कि उसके इस प्रकार के सौन्दर्य का वर्णन अद्भुत कौतुक-सा

ज्ञात हो सकता है, पर ये सब वम्लन हैं सत्य ही। मिथिला के राजा रूपनारायण शिवसिंह इस रस को जानते हैं, अर्थात् वे ऐसे अपूर्व सौन्दर्य के पारखी है।

9. संकेत-

कबरी-भय चामरि गिरि-कंदर, मुख-मय चाँद अकासे। हरिनि नयन-भय स्वर-भय कोकिल, गति-भय गज बनबासे । सुन्दरि, काहे मोहे संभासि न मासि ? तुअ उर इह सब दूरहि पलाएल, तुहुँ पुनु काहि डरासि ? कुच-भय कमल-कोरक जल मुदि रहु, घट परबेस हुतासे । दाड़िम सिरिफल गगन बांस करु, सम्भु गरल करु ग्रासे। भुज-भय पंक मृनाल नुकाएल, कर-भय किसलय काँपे।

विद्यापति कह कत कत ऐसन, कदब मदन परतापे ॥ 17 ॥ प्रसंग-नायिका (राधा) की सखी नायिका से उसके सौन्दर्य की प्रशंसा कर रही है अथवा नायक (कृष्ण) नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा नायिका से कर रहा है-

पहाड़ व्याख्या-हे बाला ! ! तुम्हार केश इतने सुन्दर है कि उनकी सुन्दरता के भय से चामरी की गुफा में छिप गई है। तुम्हारे मुख के सौंदर्य के भय से चन्द्रमा आकाश में चला गया है। तुम्हारे नेत्रों के सौंदर्य के भय से हिरन मधुर स्वर के भय से कोयल तथा मस्त गति के भय से हाथी बन में निवास करता है। कहने का भाव यह है कि तुम्हारे नेत्र हिरन के नेत्रों से भी अधिक सुन्दर हैं, तुहारा स्वर कोयल के स्वर से भी अधिक मीठा है और तुम्हारी चाल हाथी की चाल से भी अधिक मस्ती से भरी हुई है। हे सुन्दरी! तुम मुझसे संभाषण करके (बातें करके) क्यों नहीं जाती हो ? तुम्हारे डर से तो इतने प्राणी (हिरन, चामरी, कोयल, हाथी) दूर भाग गये हैं, तो तुम फिर किससे डरती हो ? अर्थात् तुम्हें तो किसी से भी भय करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे कुचों के भय से कमल की कली जल में छिपकर रहती है और घड़ा आग में प्रवेश करता है। तुम्हारे दाँतों की शोभा से डरकर अनार तथा कुचों की शोभा से भयभीत होकर श्रीफल आकाश में निवास करते हैं। तुम्हारे शरीर ने गौर वर्ण की समता न कर सकने के कारण ही महादेव ने विष का पान कर लिया है। तुम्हारी भुजाओं की सचिक्वणता से भयभीत होकर कमल-नाल कीचड़ में छिप गई है और कोमल हाथों के भय से कोमल पत्ते काँपते है। विद्यापति कहते हैं कि ऐसा कहाँ तक हो सकता है, इसे तो कामदेव का प्रताप ही समझना चाहिए। भाव यह है कि कामदेव के कारण ही तुम्हारे शरीर के अंगों में ऐसा अपार सौन्दर्य आ गया है।

विशेष-परम्परागत उपमानों का प्रयोग करके भी विद्यापति ने जिस नवीन ढंग से उन्हें संजौया है, यह उनकी काव्य-प्रतिभा का ही परिचायक है।

अलंकार-प्रसिद्ध उपमानों का अपकर्ष वर्णित होने से प्रतीप अलंकार। 10. संकेत- सहजहि आनन सुन्दर रे भौंह सुरेखल आँखि ।

पंकज मधुपिबि मधुकर रे उड़ए पसाइल पाँखि ॥ ततहि धाओल दुहु लोचन रे जतहि गेल बर नारि। आसा लुबुधल न तेजए रे कृपन क पाक्छु भिखारी ॥ इंगित नयन तरंगित रे बाम भँओह भेल भंग। तखने ना जानल देखर रे, गुपुत मनोभव रंग॥ चंदने चरचु पयोधर रे, ग्रिम गज मुकुताहार। भसमे भरल जनि संकर रे, सिर सुरसरि जलधार ॥ बाम चरन आगुसारल रे, दाहिन तेजइते लाज॥ तखने मदन सर पूरल रे, गति गंजये गजराज ॥ आज जाइते पथ देखलि रे, रूप रहल मन लागि। तेहि खन सयें गुन गौरव रे, सब धैरज गेल भागि॥ रूप लागि मन घाओल रे, कुच-कंदन-गिरि साँधि।

तै अपराधे मनोभव रे, ततहि धएल छनि बाँधि ॥

विद्यापति कवि गाओल रे, रस बूझये रसमंता।

रूपनरार्थन नागर रे, लखिमा देविक सुकंता 1120 11

प्रसंग-कृष्ण ने राधा को देखा और उसके अपार सौन्दर्य पर वे मोहित हो गये। राधा के सौन्दर्य का तथा अपनी अवस्था का वर्णन वे राधा की सरखी अथवा अपने अन्तरंग मित्र से कह रहे है। व्याख्या-राधा का मुख स्वभाव से ही सुन्दर था, इसलिए उसे सज्जित करने के लिए अन्य उपकरणों की आवश्यकता न थी, इस पर भी उसकी आँखें उसकी भौहों से सज्जित थी । कहने का भाव यह है कि उसकी सुन्दर आँखों के कारण उसके मुख की स्वाभाविक शोणा और भी अधिक बढ़ गई थी। उसके मुख पर ये आँखें इस प्रकार प्रतीत होती थीं, मानों कमल का मधु पीकर भौर उड़ने के लिए अपने पंख फैलाये हुए हों। जिस प्रकार आशा के लोभ से अर्थात् आशा के वशीभूत होकर भिखारी कंजूस का पीछा नहीं भी वह श्रेष्ह युवती गई, मेरे नेत्र भी उधर ही दौड़े। भाव यह छोड़ता है, उसी प्रकार जिधर है कि उसके रूप में इतना अधिक आकर्षण था कि उससे नैन हटाये नहीं हटते थे। मुझे देखकर उसके मन में भी अनुराग का के लिए उसके नेत्र चंचल हो उठे और उसकी संचार हुआ, जिसे प्रदर्शित करने के लिए शंकेत के लिए भौहें वक्र हो गयीं, किन्तु उस समय कोई तीसरा प्राणी कामदेव के इस गुप्त रंग को न जान सका। उसके कच-चंदन से चर्चित थे और वह ग्रीवा में गजमुक्ताओं का हार पहने हुए थी। उसके कुचों पर चंदन का लेप और गले में गज-मुक्ताओं की माला ऐसी दिखाई देती थी, मानो शंकर भस्म से

विभूषित हों और उनके सिर पर गंगा की धारा बह रही हो। उसने मुझसे मिलने के लिए अपना बाम पैर आगे बढ़ाया, किन्तु दाहिना पैर लज्जा के कारण न उठाएका, अर्थात उसे भय लगा कि कहीं कोई देख न ले, इस कारण यह आगे न बढ़ सकी। उसी समय कामदेव ने अपना बाण चलाया, अर्थात् उसमें काम भावना का संचार हुआ और वह इतनी मस्त गति से आगे बढ़ी कि उसकी गति ने हाथी की गति को भी हीन बना दिया, मात कर दिया। इस प्रकार की सुन्दरी युवती को मैने आज पथ पर जाती हुई देखा और मेरा मन उसके रूप के मोह में फंस गया उसी क्षण से मेरा गुण गर्व तथा धैर्य सभी नष्ट हो गये। मेरा मन उसके रूप के वशीभूत होकर उसके कुचरूपी स्वर्ण पर्वतों के मध्य भाग की ओर दौड़ा। इसी अपराध के कारण कामदेव ने उसे वहीं दौड़कर बन्दी बना लिया। कहने का भाव यह है कि मैं उसके अर्द्धनग्न कुचों को निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा और उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। विद्यापति कहते हैं कि सौन्दर्य के इस रहस्य को रस-मर्मज्ञ ही जान सकते हैं। लखिमादेवी के चतुर पति रूपनारायण शिवसिंह ही ऐसे रस के मर्मज्ञ है।

विशेष इस पद में कवि की सभी कल्पनाएँ बड़ी भावपूर्ण एवं सरस हैं।.....

11. संकृत अवनत आनन्कए हम रहलिड्डु बारल लोचन-चोर।

पिया मुख-रुचि पिवए घाओल, जनि से चाँद चकोर ।। ततहु सबै हुठे हुटि मोयें आनल, बएल चरन राखि।

मधुप माताल उड़ए न पारए, तइअओ पसारए पाँखि ।।

नाधब बोललि मधुर बानी, नी, से सुनि मुटुं मोयें कान। ताहि अवसर बिहि बाम भेले, धरि धरि धनु पंचकान।।

तनु पसेब पसाहनि भासलि, पुलग तइसन जागु।

चूनि-घूनि भए काँचुअ फाटलि, बाहु बलआ भागु ।।

भन विद्यापति कम्पित अन्तर, बोलन बोलल जाए। राजा शिवसिंह रूपनरायन, साम सुन्दर काए ।। 24 ।।

प्रसंग-राधा की अचानक कृष्ण से भेंट हो गई। उस समय उसकी जो वर्णन वह अपनी अन्तरंगिनी सखी से कर रही है। स्थिति हुई, उसक व्याख्या है सखि । कृष्ण के सामने मैं मीचा मुख किये रही, लौचनरूपी चोरों को रोका, अर्थात् लोचन चोरी से उनके मुख के सौन्दर्य को देखना चाहते थे, पर मैंने उन्हें रोक लिया। फिर भी ने प्रियतम के मुख के सौन्दर्य की ओर उसी प्रकार दौड़ पड़े, जिस प्रकार चकोर चन्द्रमा की ओर दौड़ता है। मैंने वहाँ से उन्हें बलपूर्वक हटाया और उनके चरणों में स्थित कर दिया, अर्थात् इच्छा होते हुए भी मैं अपने नेत्रों को को छ झुकाए रही और प्रियतम के चरणों को देखती रही। फिर भी वे कृष्ण के मुख का सौन्दर्य देखने की इस प्रकार चेष्टा कर रहे थे, जिस प्रकार मधु-पान से उन्मत्त होकर भ्रमर उड़ तो नहीं सकता, पर उड़ने के लिए पंख पसार कर उड़ने का प्रयत्न करता रहता है। कृष्ण ने मधुर वाणी में मुझसे बातें की, लेकिन उनकी बातें सुनकर मैंने अपने कान बन्द कर लिये, अर्थात् उनकी बातों को भी नहीं सुन पाई। उसी अवसर (पर विधि शत्रु हो गया और कामदेव ने अपना धनुष धारण कर लिया, अर्थात् मन में काम जसना जागृत हो गई। काम-वासना के जागृत होने पर शरीर में पसीना आ गया, जिससे शरीर का सारा अंगराग भीग गया और शरीर में ऐसी पुलक जागी कि कंचुकी चिथड़े-चिथड़े हो गई और हाथ की चूड़ी टूट गई। भाज यह है कि प्रेम के अतिरेक के कारण शरीर फूल उठा जिससे चोली फट गई और चूड़ियों फूट गई। विद्यापति कहते हैं कि हे सखि । मेरा हृदय काँप रहा है, बात नहीं कही जाती। राजा रूपनारायण शिवसिंह की श्याम तथा सुन्दर देह है, अर्थात् वे भी कृष्ण के समान सौन्दर्यशाली हैं। कत न बेदन मोह देसि मदना। करहिं बला मोहि जुबति जना ।।

विभूति-भूमन नहि चांदनक रेनु। बघछाल नहि सिर नेता बरान ।।

नहि मोरा जटा-भार चिकुरक बेनी। सुरसरि नहि सिर कुसुमक स्रेनी ।। चांदनक बिंदु मोरी नहि इन्दु छोटा'। ललाट पाबक नहि सिंदुरक फोटा ।।

नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु। फनियति गहि मोरा मुकुता हारू ।

भनइ विद्यापति सुन देव कामा। एक पए दूखन नाम मोर बागा 1125 10

प्रसंग-विरहिणी राधा विरह से दुखी होकर कामदेव को सम्बोधित करते हुए कह रही है। व्याख्या-हे कामदेव ! तू मुझको कितनी पीड़ा नहीं दे दे रहा है ? अर्थात् तू मुझे बहुत अधिक पीड़ा दे रहा है। मैं शिव नहीं हूँ, बल्कि युवती नारी हूँ। यह विभूति-भूषण नहीं है, वरन् चंदन की धूल है। है। यह बाघछाला नहीं है, वरन् मेरे सिर का नवीन तथा महीन वस्त्र है। यह जटा- भार नहीं है, वरन् मेरे केशों की वेणी है। यह गंगा नहीं है, वरन् कुसुमों की पंक्तियाँ हैं। यह द्वितीया का चन्द्रमा नहीं है, वरन् मेरा चन्दन का बिन्दु है। यह शिव के तृतीय नेत्र से निकलने वाली आग नहीं है, वरन् मस्तक पर लगा हुआ मेरा सिन्दूर का टीका है। यह विष नहीं है, वरन सुन्दर कस्तूरी है। यह सर्प नहीं, बरन् मेरा मोतियों का हार। विद्यापति कहते हैं कि

विरहिणी कामदेव से कहती है कि हे कामदेव सुनो, मेरा केवल यही दोष है कि मेरा नाश बामा (नारी) है जो शिव के बामदेव नाम से मिलता-जुलता है। भाव यह है कि विरहिणी को यह संशय हो गया है कि कामदेव ने भ्रम से उसे शिव मय लिया है। उसने उसकी चन्दन की धूल को राख की भस्म, आँचल को बाधछाला, केशों को गटा, फूलों की पंक्तियों को गंगा, चन्दन के बिन्दु का चनन्द्रभा सिन्दूर के टीके को पादकमय को द्वितीया नेत्र, चिबुक पर लगे हुए कस्तूरी के टीके को विष और मोतियों के हार को सर्प समझ लिया है। शिव का शत्रु होने के कारण वह उसे दुख देना चाहता है, इसलिए गधे उस विरहिणी को शिव समझकर उसे दुख दे रहा है। विरहिणी उसके भ्रम का निवारण करती है कि यह शिव नहीं है , वरन् युवती है, अतः वह उसे दुख देना छोड़ दे।

विशेष-कहा जाता है कि एक बार जब कामदेव ने शिन के तप को भंग करने का प्रयत्न किया तो उन्होंने क्रुद्ध होकर उसे अपने ललाट पर स्थित तृतीय नेत्र की आग से भस्म कर दिया। पति का नाश देखकर उसकी स्त्री रति ने शिव की बहुत अनुनय विनय की। तब शिव ने कामदेव को कर दिया कि यह शरीरजीन तो बना रहेगा, पर अपनी इस स्थिति में भी वह तीनों लोकों को बीतने में समर्थ होगा। तभी से कामदेव का नाम 'अतन' पड़ गया और तभी से यह शिव से राउत मानने लगा। कामदेव और शिव को सत्रुता का वर्णन भारतीय साहित्य में प्रचुरता से हुआ है। 13. संकेत आएल रितुपति राज बसंत। माओल अलिकुल माघबि-पंथ ॥ दिनकर किरन भेल पौगंड। केसर कुसुम भएल हेमदंड॥ वृष-आसन नब पीतल पात। कोचन कुसुम छत्र धरु माथ ॥ सौलि रसाल-मुकुल भेल ताय। समुखहि कोकिल पंचम गाय ॥ सिखिकु ल नाचत अलिकुल यंत्र। द्विजकुल ऑनिपढ़ आसिख मंत्र ॥ चन्द्रातप उड़े कुसुम पराग। मलय पबन सह भेल अनुराग ॥ कुंदचल्ली तरु धएल निसान। पाटल तून असोकदल बान॥ किसुक लवंग-लता एक र संग। हेरि सिसिर-रित भेल दल भंग॥ सैन साजल मधु-मखिका कूल। सिसिरक सबहु कएल निरमूल ॥ उधारल सरसिज पाओउ प्रान। निज नव दल करु आसन दान ॥ नच सुंदावन राज बिहार। विशापति कह समयक सार ॥ 52 11 प्रष्टंग बसन्त ऋतु पर राजा का आरोप करके उसके आगमन का वर्णन है।

व्याख्या-ऋतुपति राजा बसन्त आया। भौरों का समूह बासन्ती पुष्पों की ओर दौड़ने लगा। सूर्य की किरणे कुछ तीव्र हो गई। केशर के फूलों ने सोने का डण्डा धारण कर लिया, अर्थात् केशा के फूल सोने की तरह चमकने लगे। पीपल के नवीन पत्ते ही राजा बसन्त का आसन बने। चम्या के फूल उसके मस्तक के छत्र बने। अमों की मंजरी उसके लिए मुकुट बनी। उसके सामने ही कोयल पंचम स्थर में गाकर उसकी स्तुति करने लगी। मोरों का समूह नाचने लगा। भौरों का समूह बाजे बजाने लगा। पक्षियों का समूह आशीर्वादों से भरे मन्त्र पढ़ने लगा। चन्दोवे से फूलों का पराग उड़ने लगा और उसका मलग-पवन के साथ प्रेम हो गया। भाव यह है कि मलय-पवन फूलों का पराग लेकर तलने लगा। कुन्दबल्ली वृक्ष ने पताका का रूप धारण किया। पाटल के पत्ते तूणीर और अशोक के पत्ते बाण बन गये। पलाश के पत्तों ने धनुष का और लवंग-लताओं ने प्रत्यंचा का रूप ले लिया तथा एक साथ मिल गये। बसंत राजा के इन आयुधों को देकर शिशिर ऋतु की सेना भंग हो गई अर्थात् पराजित होकर भागने लगी। मधुमक्षिकाओं के समूह ने बसन्त की ओर से सेना सजाई, जिसने शिशिर ऋतु का अर्वस्व ही निर्मूल कर दिया; अर्थात् शिशिर ऋतु का सब कुछ नष्ट कर दिया। बसन्त ये अपल का उार किया और उसने फिर से जीवन पा लिया जो कमल शिशिर ऋतु में सुख गया। श्रा, बसन्त ऋार के आरे पर वह फिर हरा-भरा हो गया और उसने अपने नवीन पत्तों से बसन्त राजा के लिए उस धनाया। मृन्दावन को नया रूप देकर बसन्त राजा उसमें विहार करने लगा। विद्यापति कावि कहते है कि यही समसार है, अर्थात् सबसे उत्तम ऋतु है। १८.

ति बाजत द्रिगि ट्रिगि। धौद्रिम द्रिमिया।

नटति कलावति पाति श्याम संग, कर करताल प्रबंधक ध्वनियाँ ॥

डम डम डंफ डिमिक डिग मादल, रुन-झुन मंजीर बोल। किंकिन रनरनि बलआ कनकनि, निधुबन रास तुमुल उनमोल ॥ बीन, रवाब, मुरज, स्वरमंडल सारगिमपधानिसा बहुबिधि भाव। घटिता घटिता धुनि मृदंग गरजनि, चंचल स्वर-मण्डल कस राव ॥ स्रम भर गलित लुलित कबरीयुत, मालति माल बिथारल मोति। समय बसन्त रास-रस बर्मन, विद्यापति मति छोभित होत 1157 ॥

प्रसंग निधुबन में होती हुई रास-लीला का वर्णन कोई गोपी अपनी सखी से कर रही है। व्याख्या-अनेक प्रकार के बाजे मधुर ट्रिंग-द्रिग और द्रिम-ट्रिम शब्दों में बज रहे हैं।

हथेलियों से ताली बजाती हुई तथा मनोरम ध्वनियाँ पैदा करती दुई कलाओं में निपुण नारियाँ उन्मत होकर कृष्ण के साथ-साथ नाच रही हैं, रास लीला कर रही हैं। डम्फ डम-डम, मादम डिम-डिम और मंजीर रुन-झुन शब्द कर रहे हैं। किंकिणी रण-रण और बालय कण-कण कर रहे हैं। इस प्रकार निधुबन में रास लीला पूर्ण उत्साह के साथ हो रही है। बीन, खाब और मुरज से सातों स्वर अनेक प्रकार के भावों में बज रहे हैं। मृदंग से

'घटित घटिता' शब्द निकल रहे हैं तथा बदु भांति के स्वर गरज रहे हैं। बाजों को बजाने के श्रम से उत्पन्न पसीने से भरी हुई तथा खुली हुई केश-राशियों से मालीत माला के फूल मोतियों की भांति बिखर रहे हैं। विद्यापति कहते हैं कि बसंत- काल में होने वाली इस रास-लीला का वर्णन करते हुए मेरी मति भी चंचल हो उठी है।

विशेष (1) नाद-सौन्दर्य इस पद की महती विशेषता है। (2) उक्त पद व्यंजना अलंकार, छकानुप्रास अलंकार एवं उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है। में ध्वन्यर्थ

15. संकेत - सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज की सरसिज बिनु सूरे। जौवन बिनु तन, तन बिनु जौबन की जौवन पिय दूरे ॥ सखि हे, मोर बड़ इदैव विरोधी।

मदन बेदन बड़ पिया मोर बोलछड़, अबहु देह परबोधी। चौदिस भ्रमर भम कुसुम-कुसुम रम, नीरसि माँजरि पीबें। मंद पबन वह पिक कुह-कुह कह, र सुनि बिरहिनि कइसे जीबे ॥ सिनेह अछूते जत हमे भेल न टूटत, बड़ बोल जत सब थीर। अइसन के बोल दहु निअ सिम तेजि कहु, उछल पयोनिधि नीर ॥ भनइ विद्यापति अरेरे कमलमुखि, गुन-गाहक पिया-तोरा। राजा सिबसिंह रूपनरायन, सहजे एको नहि भोरा ॥ 59 ॥

प्रसंग-विरहिणी नायिका (राधा) अपनी विरह-वेदना का वर्णन अपनी सखी से कर रही है।

व्याख्या- हे सखि । जिस प्रकार कमल के बिना तालाब, तालाब के बिना कमल और कमल के बिना सूर्य की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार यौवन के बिना शरीर, शरीर के बिना यौवन और प्रिय से दूर यौवन शोभा सम्पन्न नहीं बनता। कहने का भाव यह है कि उसी रमणी से सौन्दर्य की सार्थकता इसी में है कि उसका प्रियतम निरन्तर उसके पास रहे और उसके यौवन का उपयोग करता रहे। हे सखि । मेरा भाग्य मेरे बहुत ही प्रतिकूल है। कामदेब की वेदना असह्य है। मेरा प्रियतम झूठ बोलने वाला है। इस पर भी तुम मुझे बहला देना चाहती हो। भौरों का समूह चारों ओर घूम-घूमकर प्रत्येक पुष्प पर रमण कर रहा है और उसकी मंजरियों के रस को पीकर उन्हें नीरस बना रहा है। पवन धीरे-धीरे चल रही है। कोयल कूक रही है। ऐसी दशा में विरहिणी कैसे जीवित रहे ? कहने का भाव यह है कि प्रकृति द्वारा निर्मित उद्दीपक वातावरण को देखकर कोई भी विरहिणी जीवित नहीं रह सकती। जितना प्रेम उन्हें मुझ से था, उसे देखकर मैं कह सकती हूँ कि उनका प्रेम मुझ से कभी नहीं टूट सकता, क्योंकि बड़े लोगों की बातें सदैव स्थिर होती हैं। समुद्र का पानी अपनी सीमा को छोड़कर उछलने लगता है, ऐसी बात कोई नहीं कहता। भाव यह है कि जिस प्रकार समुद्र का पानी अपनी मर्यादा में बंधा रहता है, उसी प्रकार बड़े लोगों की बातें अटल होती हैं। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी । तुम्हारा प्रिय गुण-ग्राहक है। रूपनरायन राजा शिवसिंह किसी को सहज ही नहीं भूला देते।

16. संकेत- लोजन धाए फेधाएल, हरि नहि आएल रे। सिब-सिब जिबओ न जाए, आस अरुझाएल रे।।

मन करे तहाँ उड़ि जाइभ, जहाँ हरि पाइअ रे। प्रेम-परसिमनि जानि, आनि उर लाइभ रे।। सपन हु संगम पाओल, रंग बढ़ाओल रे।

से मोर बिहि विघटाओल, निंदओ हेरा ओल रे ॥

भनड़ विद्यापति गाओल, धनि धड्गरज घर रे। अचिरें मिलत तोहि, बालम पुरत मनोरच रे ॥ 61 ||

प्रसंग-विरहिणी नायिका (राधा) अपनी सखी से अपनी बिरह वेदना का वर्णन कर रही है।

व्याख्या- हे सखि । कृष्ण की राह देखते-देखते मेरे नेत्र भी सूज गए, पर वे नहीं आए। हे शिव । अब तो जीवित भी नहीं रहा जाता क्योंकि मिलन की सारी आशा ही समाप्त ही गरी है। मेरी यह इच्छा होती है कि जहाँ मुझे कृष्ण मिलें, में उड़कर वहाँ चली जाऊँ और उन्हें प्रेम की पारसमणि जानकर अपने हृदय से लगा लें। पहले स्वप्न में कृष्ण से मिलन पाकर रत्ति क्रीडा का आनन्द प्राप्त कर लेती थी पर अब तो भाग्य ने वह भी नष्ट कर दी, क्योंकि उसने मेरी नींद का हरण कर लिया है। कहने का भाव यह है कि विरह बेदना के कारण मुझे अब नींद भी नहीं आती है। विद्यापति कहते हैं कि हे नारी। तुम धैर्य धारण करो, क्योंकि तुम्हें शीघ्र ही तुम्हारे प्रियतम मिलेंगे और तब तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे।

विशेष-विरहिणी नायिका के भावों का सजीव एक मनोवैज्ञानिक चित्रण है। अलंकार-उक्त पद में पर्यायोकि जलेकार, वीप्सा अलंकार, रूपक एवं काव्यार्थापति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

17 . संकेत- सजनी, के कह आओब मधाई ?

बिरह-पयोधि पार किए पाओब, मझु मन नहि पतिआई।

एखन-तखन करि दिबस गमाओल, दिबस दिबस करि मासा।

मास-मास करि बरस गमाओल, छाड़लि जीबन-आसा।

बरस बरस करि समय गमाओल, तेजल कान्हक आसे।
हिमकर-किरन नलिनि जदि जारब, कि करब माधव मासे।
अंकुर तपन-ताप जदि जारब, कि करब बारिद मेहे।
इह नब जौबन बिरह गमाओव, कि करब से पिया गेहे।
मनइ विद्यापति सुनु बर जौबति, आब नहि होअह निरासे।
से ब्रजनंदन हृदय-आनंदन, तोरित मिलब तुअ पासे ॥ 67 ॥
प्रसंग-विरहिणी राधा अपनी सखी से अपनी विरह-व्यथा कह रही है।
व्याख्या-हे सखि । कौन कहता है कि कृष्ण आयेंगे? मेरे मन में यह विश्वास ही नहीं होता कि मैं इस विरह के सागर को पार कर जाऊँगी। अब-तब करके मैंने इतने दिन व्यतीत किए। दिन-दिन करके महीने, और महीने महीने करके वर्ष भी बिता दिए। अब तो मैंने जीवित रहने की आशा ही छोड़ दी है। वर्ष वर्ष करके समय बिताकर मैंने कृष्ण से मिलन की आशा ही त्याग दी है, अर्थात् अब मुझे यह विश्वास ही नहीं रहा कि कृष्ण कभी आकर मुझसे मिलेंगे, चन्द्रमा की किरणें ही यदि अंकुर को जलाने लगें तो बसंत ऋतु क्या कर सकती है? सूर्य की आग ही यदि अंकुर को जला डाले तो बादल और वर्षा क्या कर सकते हैं? इस यौवन को यदि मैंने बिरह में ही बिता दिया तो फिर प्रियतम के घर लौट आने से क्या लाभ ? विद्यापति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ युवति ? सुनो, अब निराश मत हो, क्योंकि हृदय को आनन्द देने वाले श्रीकृष्ण शीघ्र ही आकर तुमसे मिलेंगे।
विशेष-नवीन दृष्टान्तों के द्वारा भाषाभिव्यंजना को प्रभावोत्पादक बनाने में कवि पूर्ण रूप से सफल हुआ है।
18. संकेत-
सरदक ससबर मुख-रुचि सोंपलक, हरिनक लोचन लीला।
कैस-पास लए चमरिक सॉपलक, पाए मनोभव पीला।
माधव, जानल न जिअति राही।
जतबा जकर लेले छलि सुंदरि, से सब सोंपलक ताही ॥
दसन-दसा दाड़िमक सोंपलक, बंधुर अधर-रुचि देली। देह-दसा सौदामिनि सोंपलक, काजर सनि धनि भेली ॥
भाँहक भंग अनंग-चाप देल कोकिलक देल बानी। केबल देह नेह लओले, एतबा अएलहुँ जानी॥ भनइ विद्यापति सुन बर जौबति, चित झाँखह जनु आने। राजा सिबसिंह रूपनरायन, लखिमा देइ रमाने ॥ 72 ॥
प्रसंग-बिरह के कारण राधा अत्यन्त दुर्लब एवं कांतिहीन हो गई है। उसकी इसी दशा का वर्णन दूती कृष्ण से कर रही है-
व्याख्या-हे कृष्ण ! कामदेव के द्वारा पीड़ित होकर राधा ने अपने मुख की शोभा शरदकालीन चन्द्रमा को और नेत्रों की चंचलता हिरन के नेत्रों को दे दी है। अपना केश-पाश उसने चमरी गाय को सौंप दिया है। मैं नहीं जानती कि राधा अभी भी जीवित है। कहने का भाव यह है कि वह इतनी दुर्बल हो गई थी कि संभवतः अब जीवित भी नहीं रही होगी। उस सुन्दरी राधा ने जिससे जितना रूप लिया था, वह सब उसने उन्हीं को दे दिया है। दाँतों की शोभा अनार को सौंप दी है, अधरों की शोभा बंधुर के फूल की दे दी है। शरीर की कांति बिजली को सौंप दी है, और अब वह काजल के समान काली बन गई है। भौंहों की भंगिमा उसने कामदेव के धनुष को और वाणी की मधुरता कोयल को दे दी है। मैं तो इतना ही जानकर आई हूँ कि केवल तुम्हारा प्रेम ही उसके शरीर में बचा हुआ है। विद्यापति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ युवती । सुनो अपने मन में और बात मत लाओ, अर्थात् निराश मत बनो। लखिमादेवी के पति रूपनारायण राजा शिवसिंह इस मर्म को समझते हैं। विशेष-विरहिणी की विरह-दशा के लिए नवीन कल्पनाओं की सृष्टि कवि की कवि- प्रतिभा को व्यक्त करती है। इन कल्पनाओं से वर्ण्य विषय बहुत ही सजीव एवं मर्मस्पर्शी बन गया है।
19. संकेत- अनुखन माधब माधब सुमरइते, सुंदरि भेलि मधाई।
ओ निज भाब सुभाबहि बिसरल, अपनेहि गुन लुबुधाई।
माधब, अपरूप तोहर सिनेह।
अपनेहि बिरह अपन तनु जरजर, जिबइते भेल संदेह।
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि, छल-छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटइत, आधा आधा कहु बानि।

या समें जब पुन तहि माधव, माधब समें जब राधा। राधा
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत, बाढ़त बिरहक बाधा।
गुड्डु दिस दारु दहन जैसे दगधड़, आकुल कीट पराना। ऐसन बल्लभ हरि सुधामुखि, कवि विद्यापति भान ॥ 74 ॥
प्रसंग-राधा की दूती उसकी बिरह-दशा का वर्णन कृष्ण से कर रही है।
व्याख्या-निरन्तर कृष्ण का स्मरण करते-करते राधा स्वयं कृष्णमय हो गई है और अपने भाव एवं स्वभाव को छोड़कर वह अपने ही गुणों पर मोहित हो गई है। भाव यह है कि राधा का प्रेम उस चरम सीमा पर पहुँच गया है, जहाँ प्रेमी और प्रेमिका का द्वैतभाव समाप्त हो जाता है और सदाकारता की स्थिति आ जाती है। हे कृष्ण। तुम्हारा प्रेम अपूर्व है। राधा इस प्रेम में बँधकर और स्वयं को कृष्ण समझकर अपने ही विरह में अपने शरीर को जर्जर बना रही है। अब तो उसके जीवित रहने में भी संदेह हो गया है। विह्वल होकर कातर दृष्टि से अपनी सखियों की ओर देखकर वह आंखों से छल-छल आँसू बहाती है और अस्पष्ट स्वर में निरन्तर 'राधा-राधा' रटती रहती है। जब वह राधा से स्वयं को कृष्ण और कृष्ण से स्वंय को राधा, समझने लगती है तो इन दोनों ही दशाओं में भी उसका दारुण प्रेम समाप्त नहीं होता, बल्कि बिरह की बेदना और अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि राधा के रूप में कृष्ण का और कृष्ण के रूप में राधा का वियोग उसे कष्ट देता रहता है। जैसे, दोनों
ओर से जलती हुई लकड़ों की आग में, उसमें स्थित आकूल कीट के प्राण जलते रहते हैं, विद्यापति कहते हैं कि उसी प्रकार सुधामुखी राधा के प्राण भी दोनों ही स्थितियों में- राधा के रूप में भी और कृष्ण के रूप में भी विरह-विदग्ध बने रहते हैं।
20. संकेत- सखि हे, कि पुछसि अनुभब मोय।
सोइ पिरिति अनुराग बखानिअ, तिल-तिल नूतन होय । जनम-अबधि रूप निहारल, नयन न तिरपित भल। सोइ मधुर बोल स्त्रबनहि सूनल, खुति पथ परस न गेल। कत मधु जामिनी रभसे गमाओलि, न बूझल कइसन केल। लाख लाख जुग हिय हिय राखल, तइओ हिय जुड़न न गेल। कत बिदगध जन रस अनुमोदए, अनुभब काहु न पेख।
विद्यापति कह प्रान जुड़ाइते, लाखे न मीलल एक ॥ 78 ॥ प्रसंग-नायिका (राधा) अपनी सखी से कह रही है। व्याख्या-हे सखि ! मुझसे क्रास-क्रीड़ा के अनुभव के विषय में (श्रृंगार रस के विषय में क्या पूछती है ? अर्थात् मैं इसके साचा और, स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकती। जो क्षण- क्षण नवीन होती है, उसे ही प्रीति तथा अनुराग कहना चाहिए। मैं जन्म-भर प्रियतम के रूप को देखती रही, फिर भी मेरे नेत्र तृप्त नहीं हुए। प्रियतम के मधुर वचनों को जीवन-भर कानों से सुनती रही, फिर भी वे जैसे कर्णगोचर ही नहीं हुए, निरन्तर सुनने की आशा बनी रही। अनेक बसन्त-रातें आनन्द-क्रीड़ा में बिता दी, पर यह नहीं जान पाई की काम-क्रीड़ा कैसी होती है। चिरकाल तक प्रियतम के हृदय को अपने हृदय में रखा, फिर भी उसे जुड़ा नहीं पाई। कितने ही रसिक जनों ने रस का उपभोग किया, उसका पूर्ण अनुभव कोई भी प्राप्त न कर सका। विद्यापति कहते हैं कि कृष्ण को पाकर मेरे मन को अत्यधिक आनन्द मिला है, क्योंकि कृष्ण जैसा रसिक लाजों में एक भी नहीं मिला।
विशेष-प्रेम-स्वरूप के विवेचन की दृष्टि से यह पद बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें प्रेम लौकिक धरातल से उठकर अलौकिक बन गया है।
21. संकेत- खने खने नयन कोन अनुसरई। खने खने बसन धूलि तनु भरई। खने खने दसन-जटा छुट हास। खने खने अघर आगे गहु बास ॥
चऊँकि चलए खने खने चलु मंद। मन मथ-पाठ पहिल अनुबंध ॥ हिरदय-मुकुल हेरि-हेरि थोर। खने आँचर बए खने होए भोर ॥
वाला सैसब-तारुन भेद। लखए न पारिअ जेठ कनेठ ॥
विद्यापति कह सुनु बर कान। तरुनिम सैसब चिहन न जान।। प्रसंग-वयः संधि प्राप्त होने पर नायिका में शारीरिक और मानसिक स्तर पर अनेक प्रकार के परिवर्तन आ जाते हैं। इस पद में राधा की सखी अथवा दूती श्रीकृष्ण से वयः संधि को प्राप्त राधा के इन्हीं शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों का वर्णन कर रही है।
व्याख्या-वयः संधि के प्राप्त होने पर वह नायिका (राधा) प्रतिक्षण कटाक्ष करती है। उसका आँचल धूल में भर जाता है जो उसके शरीर को धूल से भर देता है। कहने का भाव यह है कि जब उसमें शैशव-प्र शव-प्रवृत्ति जगती है तो उसे अपने आँचल का ध्यान नहीं रहता और वह छूटकर पृथ्वी पर गिर जाता है, पर जब उसे अपने नवागम यौवन का ध्यान आता है तो वह लज्जा के कारण उस आँचल को उठाकर उससे अपना शरीर ढंक लेती है। इस प्रकार धरती की धूल उसके शरीर से लग जाती है। क्षण-क्षण में उसके दाँतों की ख्योति हँसी के साथ फैलने लगती है, अर्थात् बह क्षण-क्षण बाद मुस्कराती रहती है और फिर लज्जा के कारण अपनी मुस्कुराहट को छिपने के लिए क्षण-क्षण में अपने होठ के आगे वस्त्र लगा लेती है; अर्थात् अपनी मुस्कान को छिपाने के लिए वह अपना मुँह अपने आँचल से बँक लेती है। एक क्षण तो वह चौंककर ठेकों से चलती है और दूसरे

ही क्षण मन्द गति से चलने लगती है। यह तो कामदेव के पाठ की पहली ही उस पर कामदेव का पहली भूमिका है, अर्थात् अभी तो बार ही प्रभाव पड़ा है और कारण उसमे इकन रिवर्तन आ गए है। वह हृदय-रूपी दर्पण में अपने उरोजों को थोड़ा- रक्षण भर में ही इन्हें लज्जा के कारण आँचल के आवरण से बँक देती है। और आनन्द- विभोर हो जाती है। उस बाला के शरीर में शैशव और तारुण्य का इस प्रकार मिलन हुआ है कि उसमे कोई भी बड़ा तथा छोदा नहीं दिखाई देता, अर्थात् दोनों ही एक-दूसरे पर हावी होने का प्रयान कर रहे हैं, इसीलिए उसके भावों में कभी शैशव की प्रधानता होती है और कभी यौवन की। विद्यापति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ कृष्ण सुनो, उस माथिका के शरीर में यौवन और हिचाने नहीं जाते, क्योंकि वे दोनों एक-दूसरे से मिल गए है। शैशव ससन-परस खसु अम्बर रे, देखल धनि देह। नव जलभर तर अमकर रे, जन बीजुरी-रेह।। आज देखल बनि जाइते रे, मोहि उपजल रंग। ऊपक-लता जनि संचरु रे, महि निर अबलम्ब ।। अपरुब देखल रे, कुच-जुग बिवसित नहि। हे किछु कारन रे, अरबिंद । सोझा मुख-चन्द ।। विद्यापति कवि गाओल रे, रस बुझए रसमंत। देवसिंह नृप नागर रे, हासिनी देव कंत ।।

प्रसंग- नायक (कृष्ण) ने कहीं पर नायिका (राधा) को देख लिया था। वह उसके अपार सौन्दर्य पर तत्क्षण मुग्ध हो गया। इसी का वर्णन वह नायिका की सखी से या दूती से या अपने अंतरंग सखा से कर रहा है।

व्याख्या-हवा के स्पर्श से उसका वस्त्र (आँचल) खिसक गया और तब मैंने उस सुन्दरी (राधा) के सुन्दर शरीर को देखा। उसका वह सुन्दर शरीर ऐसा लगता था, मानो नवीन बादलों के नीचे बिजली की रेखा चमक रही हो भाव यह है कि वह जो वस्त्र पहने हुए। र थी, उसमें से उसके शरीर की कांति इस प्रकार चमक रही थी जैसे बादल के नीचे बिजली चमक चमकती है। । आज जब मैंने उस बाला को जाती हुई देखा, तभी उसके लिए मेरे मन में प्रेम उत्पन्न हो गया। वह मार्ग में जाती हुई ऐसी प्रतीत होती थी, मानो सोने की लता बिना किसी सहारे के पृथ्वी पर संचरण कर रही हो, चल-फिर रही हो। इस पर भी मैंने उसके दोनों कुच-रूपी अपूर्ण कमलों को देखा, जो किसी कारण से खिले हुए नहीं थे। उनके न खिलने का कारण यही है कि मुख-रूपी चन्द्रमा के सामने वे खिल नहीं पा रहे थे। कहने का भाव यह है कि वह अपने उरोजों को आँचल से बैंके हुए थी और उसका मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर था। विद्यापति कहते हैं कि कोई रस- मर्मज्ञ हो इस रस को समझ सकता है, अर्थात् इस सुन्दर बाला के सौन्दर्य के महत्व को जान सकता है और ऐसे रस-मर्मज्ञ रानी हासिनीदेवी के पति देवसिंह हैं। 23.

संकेत- माधव, तोहें जनु जाह बिदेस।

हमरो रंग रभस लए जएबह, लएबह कओन संदेस। हीरा मनि मानिक एको नहि माँगब, फेरि माँगब पहु तोरा। जखन गमन करु नयन नीर भरु, देखिओ न भेल पहु ओरा। एकहि नगर बसि पहु भेल पर-बस, कइसे पुरत मन मोरा। बनहि गमन करु होएति दोसर मति, बिसरि जाएब पति मोरा। पहु संग कामिनि बहुत सोहागिनि, चंद निकट जइसे तारा।

भनइ विद्यापति सुनु बर जौबत, अपन हृदय धरु सारा। प्रसंग-विदेश-गमन के लिए तत्पर कृष्ण को रोकने का प्रयास करती हुई राधा उनसे बिनती कर रही है।

व्याख्या-हे कृष्ण । तुम विदेश मत जाओ। विदेश जाते समय तुम मेरे आमोद-प्रमोद

अपने साथ ले जाओगे, किन्तु उनके बदले में कौन सन्देश लाकर मुझे दोगे? कहने का भाव गा है कि तुम्हारे विदेश जाने से मुझे जो हानि होगी, संसार की कोई भी वस्तु उसकी पूर्ति नहीं कर सकती। बन को गमन करते हो तुम्हारी बुद्धि बदल जाएगी और तुम मुझे भूल जाओगे। मैं तुमसे हीरा, मफि माणिक्य कुछ भी नहीं माँगती। हे प्रभु । मैं केवल तुम्हारा वापिस आना माँगती हूँ। जिस समय पह भी तुमने बाहर के लिए गमन किया था, उस समय मेरी आँखें आँसुओं से भर गई थीं और मैं तुम्हा और देख भी नहीं सकी थी। हे प्रभु। हम दोनों एक ही नगर में रहे है। जब एक ही नगर में रहते हुए तुम दूसरी नायिका में आसक्त हो गए तो विदेश जाकर तुम अन्य रमणियों से प्रेम न करोगे, इसमें मेरा मन कैसे आश्वस्त हो सकता है? कहने का भाव यह है कि विदेश जाकर तुम निश्चय ही अल रमणियों में आसक्त होकर मुझे भूल जाओगे। जैसे चन्द्रमा के समीप रहकर तारे की शोभा होत है, उसी प्रकार अपने स्वामी के साथ रहकर ही नारी परम सुहागिनी समझी जाती है। विद्यापति कहरे हैं कि हे श्रेष्ठ युवति ! सुनो, अपने हृदय में धैर्य धारण करो। विशेष (1) नारी मन की स्वाभाविक आशंकाओं का चित्रण करके विद्यापति में नारी मनोविज्ञान का रहस्य प्रस्तुत कर दिया हैरें2) नायिका बार-बार 'पहु' शब्द का प्रयोग करके प्रियतम के प्रति अपनी घनिष्ठ आत्मीयता व्यक्त कर रही है। 24. संकेत- सखि हे हमर दुखक नहि ओर।

इ भर बादर माह भादर सून मंदिर मोर।

ड्राँषि घन गरजंति संतत भुवन भरि बरसंतिया।

कंत पाहुन काम दारुन सघने खर सर हंतिया।

कुलिस कत सत पात मुरित मयूर नाच मातिया। मत्त दादुर डाक डाहुक फाटि जाएत छातिया।

तिमिर दिग भरि जोर जामिनि अथिर बिजुरिक पाँतिया।

तिमिर दिग भरि जोर रजामिनी अधिर बिजुरिक पाँतिया।

विद्यापति कह कइसे गमाओब हरि बिना दिन रतिया।

प्रसंग-विरहिणी नायिका (राधा) का विरह भादों मास आने पर और भी अधिक मर्मान्तक बन गया है। इसी का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है। व्याख्या-हे सखि ! मेरे विरहजन्य दुख की कोई सीमा नहीं है, वह अपार है। इस भादो मास में पानी से भरे हुए बादल आ गये हैं, पर मेरा घर प्रियतम के अभाव में सूना है। बादल पृथ्वी को ढंककर अर्थात् पूरी तरह से छाकर गर्जता हुआ लगातार बरसता है और सारे संसार को पानी से भर रहा है। मेरा प्रियतम परदेशवासी है। निर्दयी कामदेव मुझे अपने नितान्त तीक्ष्यण बाण से मार रहा है। सैकड़ों बार बज्र गिर रहा है। मोर मस्त और प्रसन्न होकर नाच रहे हैं। मस्त मेंढक और डाहुक जोरों से बोल रहे है जिनकी आवाज सुनकर मेरा हृदय फटा जा रहा है। अंधकार से दिशाएँ भर गई है। रात्रि भयानक है जिसमें बिजली की चंचल पंक्तियाँ चमक रही है। विधापति कहते हैं कि विरहिणी अपनी सखी से पूछती है कि तुम्ही बताओ- कृष्ण के बिना मैं ये दिन और रातें किस प्रकार बिताऊँ।

विशेष- 1. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण। 2. भादों मास का परम्परागत 25. संकेत कुसुमित कानन हेरि कमलमुखि, मुंदि रहु तुअओ नयान। वर्णन।

कोकिल कल-रब मधुकर धुनि सुनि, कर लए झाँपए कान।

माधव, सुन सुन बच्चन हमारा। तुअ गुन सुंदरि अति भेलि दूबरि, गुनि-गुनि पेम तोहारा। धरनी धरि धनि कत बेरि बड़सए, पुन नहि उठए न पारा। कांतर दिठि करि चौदिस हेरि-हेरि, नयन कारए जल-धारा। तोहर बिरह दिन छन-छन तनु छिन, चौदसि चाँद समान। भनई विद्यापति सिबसिंह नरपति, लखिमा देइ रजान।

प्रसंग-राधा की दूती उसकी विरह-दशा का वर्णन कृष्ण से कर रही है। व्याख्या-हे कृष्ण । वह कमलमुखी राधा फूलों से भरे हुए बन को देखकर दोनों आँखों को मूंद लेती है। कोयल का मधुर स्वर तथा भौर की गूंज को सुनकर वह अपने हाथों से अपने कान बन्द कर लेती है। हे कृष्ण! मेरी बात सुनो। तुम्हारे गुणों को तथा प्रेम की याद कर-करके सुन्दरी राधा अत्यन्त दुबली हो गई है। वह बड़ी कठिनता से पृथ्वी को पकड़कर बैठ तो जाती है, परन्तु फिर उठ नहीं पाती। दीनता भरी दृष्टि से चारों ओर देख-देखकर यह निरन्तर आँसु बहाती रहती है। तुम्हारे विरह में उसका शरीर चतुर्दशी के चन्द्रमा के समान प्रति दिन और प्रति क्षण-क्षीण होता जा रहा है। कवि विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह इस रहस्य को जानते हैं। विशेष-नायिका की विरह-दशा से जनित उसकी कृशता का भावपूर्ण वर्णन है।

मधु सम बचन कुलिस सम मानस, प्रथम जानि न भेला। अपन चतुरपन पिसुन हाथ देल, गरुअ गरब दुर गेला ।।

सखि हे, मंद पेम परिनामा। बड़ कए जीवन कएक पराधिन, नहि उपसम एको ठामा ।। झांपल कूप देखहि नहि पारल, आरति चललिहुँ बाई। तखा गरुअ लहे किछु नहि गूनल, अब पछतावक जाई ।। एत दिन अछलिहुँ आन भान हमे, आब बुझल अबगाहि। अपन मूँड़ अपनेहि हम चाँछल, दोख देब गए काहि ।। भनइ विद्यापति सुनु बर जौबति, चिते गनब नहि आने।

पैमक कारन जीब उपेखिर, जग जन के नहि जाने ।। प्रसंग-राधा अपनी किसी अंतरंगिनी सखी से अपनी मनोव्यथा प्रकट कर रही है।

व्याख्या-हे सखि ! कृष्ण के वचन मधु के समान और हृदय ब्रज के समान कठोर है, इस बात को मैं पहले ही नहीं जान सकी। अपनी चतुराई को उस छली कृष्ण के हाथ सौंपकर मेरा भारी गर्व नष्ट हो गया। हे सखि ! मैं अब जान पाई हूँ कि प्रेम का परिणाम कष्टकारक होता है, अर्थात् प्रेम करके अन्त में दुख सहना पड़ता है। अपने जीवन को मैंने पूर्ण रूप से पराधीन बना दिया है, मैं पूरी तरह से कृष्ण के वश में हो गई हूँ, इसलिए किसी भी स्थान पर मुझे शांति नहीं मिलती। मै डॅके हुए कुएँ को देख नहीं सकी और अत्यन्त उद्विग्न होकर दौड़ पड़ी। कहने का भाव यह है कि मैं कृष्ण के वास्तविक स्वभाव को न समझकर प्रेमांध होकर उनके वश में हो गई। उस समय तो मैंने गुरु-लघु (अच्छाई-बुराई) के विषय में कुछ नहीं सोचा था, किन्तु अब अपने किये पर पछतावा होता है। इतने दिनों तक मैं कुछ और सोचती थी, मुझे विश्वास था कि कृष्ण मुझे कहीं घोखा नहीं देगा, किन्तु अब मैं वास्तविकता को अच्छी तरह समझ गई, अर्थात् में अब यह जान पाई हूँ कि कृष् के विषय में इतने दिनों तक मैं जो कुछ सोचती रही, वह सब गलत था। अपने सिर को मैंने स्व हो काट लिया, अतः इसके लिए मैं किसे दोष दूँ? अर्थात् अपने इस विषय दुख के लिए मैं स्व ही दोषी

हूँ। विद्यापति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ युवति! सुनो, तुम कृष्ण को अपने मन में कुछ और सोच रही हो। संसार में इस बात को कौन नहीं जानता कि प्रेम के कारण प्राणा भी उपेक्षित बान जाल है। कहने का भाव यह है कि तुम कृष्ण के विषय में जो कुछ सोच रही हो, वह ठीक नहीं है। कृष् तुम्हें अब भी बहुत अधिक प्रेम करते हैं, पर तक को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगता है। करोति ही यही है कि इसमें प्राणी अपने प्राम

विशेष-राधा ने कृष्ण के प्रति जो उपालम्भ व्यक्त किया है, वह बहुत ही सजीव ए मनोवैज्ञानिक है। इससे राधा को कृष्ण के प्रति गहन आसक्ति प्रकट होती है।

के पतिआ लए जाएत रे, मोरा पियमत घास। हिय नहि सहए दुख रे, मेल साओन मास ।। एकसरि भवन पिआ बिनु रे, मोहि रहलो न जाय। सखि अनकर दुख दारुन रे, जग के पतिआय।। मोर मन हरि हरि लए गेल रे, अपनो मन गेल। गोकुल तजि मधुपुर बस रे, कत अपजस लेल ।। विद्यापति कबि गाओल रे, धनि धरु मन आस।

आओत तोर मन-भावन रे, एहि कातिग मास ।। प्रसंग-विरहिणी राधा अपनी सखों से अपनी विरह-व्यथा प्रकट कर रही है। व्याख्या-हे सखि । मेरे प्रियतम के पास मेरा पत्र कौन ले जाएगा, अर्थात् कोई भी ऐस व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता जो मेरी मर्म व्यथा से भरे हुए पत्र को लेकर मेरे प्रियतम तक पहुँच दे। विरह-व्यथा का असद्दा दुःख अब से मेरे उक्ष्य से सहा भी नहीं जाता और फिर सावन माह लग गया है जिससे मेरी व्यथा और भी अधिक बढ़ गई है। प्रियतम के बिना भवन में एकाक मुझसे रहा भी नहीं जाता। हे सखि । दूसरे के दारुण दुःख पर भी संसार में कोई विश्वास नहीं करता। कृष्ण मेरा मन हरकर ले गए हैं और अपना मन भी ले गए। कहने का भाव यह है। कृष्ण मुझे प्रेम की व्यथा देकर भूल गए। मेरी स्मृति उनको रह ही नहीं गई। गोकुल छोटका मथुरा में बसकर उन्होंने निर्मम होने का काफी अपयश ले लिया है। विद्यापति कहते हैं कि. सुन्दरी ! प्रियतम के आने की आशा रखो। तेरा प्रियतम इसी कार्तिक मास में आ जाएगा।

विशेष-विरहिणी के व्यथापूर्ण भावों का सजीव चित्रण है।

28. संकेत- माधब हमर रटल दुर देस। केओ न कहए सखि फुसल सनेत।।

जुग जुग जिबधु बसथु लाख कोस। हमर अभाग हुनक कौन दोर।। माधब पुरबिल पिरीति ।।

हमर करम भेल विहि बिपरीति। तेजल हृदयक बेदन बान समान। आनक दुःख आन नहि जान।।

भनड़ विद्यापति कबि जयराम। कि करत नाह दैब भेल बाम।।

व्याख्या-हे सखि । मेरा कृष्ण दूर देश चला गया है। कोई भी उनकी कुशलता का सन्देश नहीं देता। भाव यह है कि कृष्ण मुझसे इतने विरक्त हो गये हैं कि किसी के भी द्वारा अपनी कुशलता का सन्देश नहीं भेजते। वे युग-युग तक जीवें और मुझसे लाख कोस दूर रहें अर्थात् चाहे वे मुझसे कितनी ही दूर रहें, पर मेरी तो कामना यही है कि वे जहाँ भी रहें, सकुशल रहें। उनके बिछुड़ जाने में तो मेरा ही अभाग्य कारण है, उनका कोई दोष नहीं है। मेरे कर्म (भाग्य) के कारण ही विधाता मेरे प्रतिकूल हुआ, इसीलिए तो कृष्ण ने पूर्व (पहले की पुरानी) प्रीति को छोड़ दिया। मेरी हृदय-बेदना मुझे बाण की पीड़ा के समान पीड़ित कर रही है। दूसरे के दुख को दूसरा नहीं जानता, अर्थात् पीड़ित प्राणी ही अपनी पीड़ा को जानता है। जयरामकवि ' विद्यापति कहते हैं कि जब भाग्य ही प्रतिकूल हो गया है तो प्रियतम, क्या कर सकता है ? विशेष-नायिका के गम्भीर-प्रेम की सफल अभिव्यक्ति है।

29. संकेत-

माधव, कठिन हृदय परबासी।

तुअ पेयसि मोर्यं देखलि बियोगिति, अबहुँ पलटि घर जासी ।।

हिमकर हेरि अबनत कर आनन, करु करुना पथ हेरी।

तुद, भय रह ताहेरि सेरी।। नयन काजर र लए लिखए बिधु तुद,

दखिन पवन बह से कइसे जुबति सह, कर कबलित तसु अंगे।

गेल परान आस व राख्खर, मेस नख लिखि भुजंगे ।।

भीष-केतन भस सिब-सिल सिब कए, घरनि लोटा बए देहा। कर सरलिज लघु कुन सिरिफल दए सिब पूजए निज गेहा ।।

दुतर पोथि फेने नहि संतरु, विद्यापति कबि भाने। राजा सिबसिंह रुपनरामन, लखिमा देइ रखाने ।। था को दूती अथवा सख्खी कृष्ण से राधा की विरह-दशा का

वर्णन कर रही है। व्याख्या है कृष्ण परदेशी होने पर तुम्हारा हृदय बहुत कठोर हो गया है। मैंने तुम्हारी विप्रेमिका (राधा) को देखा है। उसकी दयनीय वशा देखकर मैं तुमसे कहती हूँ कि तुम शीघ्र को लौटकर घर चले जाओ। तुम्हारी विरहिणी, प्रिया चन्द्रमा को देखकर मुँह नीचा करके तुम्हारी रक्षा करती हुई विलाप करती है। अपनी आँखों के काजल से से राहु का चित्र बनाकर वह रहती है। भमक्स उसकी सरस से चली गई है। कहने का भाव यह है कि चन्द्रमा से अत्यधिक पीड़ित होकर की सरण में चली गई है। तुम्हीं बताओ, विरहिणी युवती मलय पवन को कैसे सहन कर सकती है जो उसके सरीर को खाता है। अर्थात् विरहिणी को मलय-पवन भी अत्यधिक पीड़ा देता है। तुम्हारे मिलन की आशा से वह अपने जाते हुए प्राणों को बचाए हुए है। अपने नाखूनों से घिस- बिसकर वह सर्च का चित्र बचाती है, ताकि वह मलय पवन को खा जाय। शिव शिव कहती हुई कामदेव के भय से से कह पृथ्वी पर लोटती है। । कर रूपी कमल नमें स्तन रूपी श्रीफल लेकर अपने भर से ही वह शिव की पूजा करती है है। विद्यापति कहते हैं। कि विरह का सागर दुस्तर है। इसको पार करना आसान नहीं है। वखिमा देवी के पति रूपनारायण राजा शिवसिंह इस रहस्य को समझते हैं।
विशेष-परम्परागत उपमानों के द्वारा नवीन पद्धति का आश्रय लेकर कवि ने विरहिणी को विरह-दशा का अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक वर्णन किया है।

३०. संकेत लोचन चीर तदिनि निरनाने। करए कमलमुखि तिथिहि सनाने ।। सरस सृचाल बरह जपमाली। अहनिस जप हरिनाम तोहारी ।।
वृच्दावन कान्तु धनि तप करई। हृदय-बेदि मदनानक बरई ।।
जिन करि समिध सुमर कर आगी। करति होम बध होए वह भागी ।। चिकुर सँभारि बरहि करि लेअई। फल उपहार पयोधर देअइ।
भचह विद्यापति सुनह मुरारी। तुअ पथ हेरइत अछि बरे नारी।। प्रसंग-राधा की दूती राधा की विरह-दशा का वर्णन कृष्ण से कर रही है।
व्याख्या हे कृष्ण । आँसुओं से नदी का निर्माण करके वह सुन्दरी उसी में स्नान करती है, अर्थात् विरहिणी राधा तुम्हारे विरह में दुःखी होकर रात-दिन रोती रहती है। कमल-नाल को सुचरची बाकर वह रात-दिन तुम्हारा नाम जपती रहती है। हे कृष्ण! वृन्दावन में नायिका तपस्या कर रही है तथा उसके हृदय रूपी वेदी पर काम-ज्वाला जलती रहती है। वह अपने प्राणों की लकड़ी और स्मरण को आग बनाकर हनन करती है। हे कृष्ण। अब उसकी हत्या के भागी तुम्हीं बनोंगे। केस रूपी कुशा को संभाल कर हाथ में लिए हुए है और उपहार के रूप में अपने पयोधर रूपी फल दे रही है। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे कृष्ण। वह श्रेष्ठ युवती तुम्हारा मार्ग देख रही है। विशेष-नायिका की विरह दशा का परम्परायुक्त वर्णन है। सांगरूपक के द्वारा कवि नेविरहिणी की विरह दशा का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है।
अलंकार समस्त पद में सांगरूपक अलंकार है। संकेत माधयत परबोधव राधा ?
हा हरि हा हरि कहितिहि बेरि-बेरि, अब जिउ करब समाधा।
धरनि धनि पनि जतनहि बहसए, पुनहि उठए नहि पारा।
सहजति बिहिनि जग गहा तापिनि, बैरि-मदन-सर-धारा। अरुभनयनों तितल कलेबर, बिलुलित दीरघ केसा।
मंदिर बाहरि करइते, संसय, सहचरि गन तहि सेसा। आनि नलिन केओ रमनि सुताओलि, केओ देइ मुख पर नीरे। कि कहब खेद भेद जनि अंतर, घन घन उतपत साँस ।
भनड़ विद्यापति सोड़ कलाबति, जीब बाँधल आस-पास । प्रसंग-विरहिणी राधा की दूति कृष्ण से उसकी विरह-दशा का वर्णन कर रही है।
व्याख्या-हे कृष्ण। मैं राधा को कितना आश्वासन दूँगी अर्थात् तुम तुम बार-बार आश्वास देकर भी उससे मिले नहीं, अतः अब उसे तुम्हारे आश्वासनों पर भी विश्वास नहीं रह गया है। 'ह हरि, हा हरि' ये शब्द बार-बार कहते हुए अब अपने प्राणों को समाप्त कर देना चाहती है। या सुन्दरी विरह-दुख से इतनी दुर्बल हो गई है कि धरती को पकड़कर वह कठिनता से उस पर बैर तो जाती ही है, किन्तु फिर वह वहाँ से उठ नहीं पाती है। एक तो बह विरहिणी सहज रूप से ही अत्यन दुखपूर्ण है, इस पर भी उसका शत्रु बनकर कामदेव उस पर निरन्तर बाणों की वर्षा कर रहा है। लाल-लाल आँखों से निकले हुए आँसुओं से उसका शरीर सदा भीगा रहता है। उसके दीर्घ केश अस्त-व्यस्त हो गये हैं। उसके घर से बाहर करते ही उसकी सखियों के समूह को संशय होने लगत है कि उसकी वहीं मृत्यु हो जायेगी। कहने का भाब यह है कि वह इतनी दुर्बल दुर्बल हो गई है, कि अपने घर से भी बाहर नहीं निकल सकती। कोई रमणी-दसे कमल पर सुलाती है कोई उसके मुख पर पानी छिड़कती है, कोई उसे चुपचाप देखकर उसकी साँस की परीक्षा करती है और कोई उसकी धीरे-धीरे हवा करती है। मैं उसकी पीड़ा के विषय में क्या कह सकती हूँ, उसका तो हृदय ही पीड़ा से बिंध गया है। उसकी साँसें उखड़ उखड़कर आती हैं। विद्यापति कवि कहते हैं कि तुमसे मिलने की आशा के पाश में ही उसके प्राण बंधे हुए हैं। कहने का भाव यह है कि तुमसे मिलने की आशा से ही वह जीवित है, अन्यथा अब तक कभी की मर गई होती।

विशेष-विरहिणी की दशा का सजीव एवं मार्मिक चित्रण है।

32. संकेत- अंकुर तपन-ताप जदि जारब, कि करब बारिद मेह?.

ई नव जीबन बिरह गमाओब, कि करब से पिय गेह ?

हरि हरि, के कह दैब-दुरासा ?

सिंधु निकट जरि कंठ सुखाएब, के दुर करब पिआसा ?

चंदन तरु जब सौरभ छोड़ब, ससघर बरिखब आगि। चिंतामनि जब निअ गुन छोड़ब, की मोर करम अभागि ?

सोओन माह घन-बिंदु न बरिखब, सुरतरु बाँझ कि छाँदे। गिरिधर सेबि ठाम नहि पाएब, विद्यापति रहु घाँदे।

प्रसंग-विरहिणी राधा से कर रही है। अपने विरह-दुख का तथा अपने दुर्भाग्य व्याख्या-हे सखि ! सूर्य की आग ही यदि अंकुर को का वर्णन अपनी सखी जला डाले तो बादल और वर्षा तो प्रियतम के घर लौटने से क्या सहायक हो सकता है ? क्या कर सकती है ? यदि वह नव-यौबन विरह में ही गंवा दिया लाभ ? हे कृष्ण। मेरे इस भीषण दुःख में तुम्हारे अतिरिक्त यदि समुद्र के निकट रहकर भी मनुष्य प्यासा ही रहे तो फिर और कौन उसकी प्यास को कौन दूर कर सकता है ? यदि चन्दन का वृक्ष सुगन्धि छोड़ दे, चन्द्रमा आग बरसाने लगे, चिन्तामणि अपना गुण त्याग दे, तो फिर मेरा हतभाग्य कर ही क्या सकता है? कहने का भाव यह दुःख का दूर करने का विचार नहीं किया तो संसार में कोई भी ऐसा इ है कि अब कृष्ण ने ही मेरे प्राणी नहीं है जो है जो मेरे दुःख की बूंद भी न को दूर कर दे। यह तो मेरे दुर्भाग्य का ही फल है। सावन के महीने में यदि वां बड़े, कल्पवृक्ष किसी प्रकार मनोवांछित फल देना छोड़ दे और कृष्ण की इस पृथ्वी पर स्थान न मिले तो विद्यापति कवि कहते हैं कि यह बहुत ही इससे अधिक आश्चर्यजनक और क्या बात हो सकती है ? सेवा करने के लिए भी द्वन्द्र का विषय है। अर्थात विशेष-नवीन दृष्टान्तों के द्वारा सफल भावाभिव्यक्ति तया विरहिणी के भावों की स्वाभाविक इस पद में हुई है।

33. संकेत- बागन भेल बिसम सर रे, भूसन भेल भारी।

सपनहुँ नहि हरि आएल रे, गोकुल गिरधारी।

एकसरि ठादि कदम तर रे, वथ हेरकि मुरारी।

हरि बिनु देह दगध भेल रे झामर भेल सारी। जाह जाह तोहें ऊबध रे, तोहें मधुपुर जाहे। चंद्रवदनि नहि जीउति रे, बध लागत काहे। भनड़ विद्यापति मन दए रे, सुनु गुनमति नारी। आज आओत हरि गोकुल रे, पथ बलु झटझारी। प्रसंग-विरहिणी राधा की सखी उद्धव से राधा की विरह-दशा का वर्णन कर रही है। व्याख्या-हे उद्धव । चन्दन उसके लिए कठोर बाण की तरह पीड़ा देने वाला बन गया है। भूषण उसके लिए भार-स्वरूप हो गए हैं। ऐसी दशा में भी गोवर्धन पर्वत को धारण करके गोकुल की रक्षा करने वाले कृष्ण स्वप्न में भी उसे नहीं मिले। राधा अकेली ही कदम्ब के वृक्ष के नीचे खड़ी होकर कृष्ण का पथ देख रही है। कृष्ण के विरह में उसका हृदय दग्ध हो गया है, उसकी साड़ी मैली हो गई है। हे उद्धव । तुम मथुरा चले जाओ। चन्द्रमुखी राधा अब जीवित नहीं रहेगी। तुम्हीं बताओ, इस हत्या का पाप किसे लगेगा ? कहने का भाव यह है कि हे उद्धव । तुम शीघ्र ही मथुरा जाकर कृष्ण को यहाँ भेज दो अन्यथा उनके विरह में राधा मर जाएगी और कृष्ण इस वध के भागी होंगे। विद्यापति कवि कहते हैं कि गुणवती नारि । तुम पूरा ध्यान देकर मेरी बात सुनो, आज कृष्ण गोकुल में आ रहे हैं, अतः उनका स्वागत करने के लिए शीघ्रता से रास्ते में बलो, अर्थात् घर से बाहर निकलो।

विशेष-विरहिणी दशा का वर्णन परम्परागत उपमानों द्वारा हुआ है। अलंकार उक्त पद में अतिशयोक्ति अलंकार, वृत्यानुप्रास, काव्यार्थापति एवं परिकराकुर अलंकार का प्रयोग हुआ है।

संकेत आनन सरद सुधाकर सम तसु, बोलए मधुर धुनि बानी।

कोमल अरुन कमल कुम्हिलाएल, देखि मएं आइलिहुँ जानी।

हृदयक हार भार भेल सुबदनि, नयन न होए निरोधे। सखि सब आए खेलाओलि रंग करि, तसु मन किछुओ न बोधे।

रगड़ल चानन मृगमद कुंकुम, सभ तेजल तुअ लागी। धनि जलहीन बीन जक फिरइछ, अहनिस रहड्छ जागी।

दूतिक सुनि उपदेस सुमिरि गुन तहिखन चललाइ धाई।

मोदवती पति राघबसिह पति, कवि बिद्यापति गाइ। प्रसंग-राधा की दूती कृष्ण से राधा की विरह-दशा का वर्णन कर रही है।

व्याख्या-हे कृष्ण । मैंने उस विरहिणी राधा को स्वयं देखा है। उसके अधरों पर न तो हँसी है और न यह सखियों के साथ मनोरंजन करती है, बल्कि दिन रात तुम्हारा ही नाम जपती रहती है। उसका मुख शरदकालीन चन्द्रमा के समान है। वह मधुर वाणी बोलती है, किन्तु विरह के कारण इतनी कोतिहीन हो गई है मानो कोमल और लाल कपल कुम्हला गया हो। उसकी यह दशा देखकर ही मैं तुम्हारे पास आई हूँ। उस सुन्दरी के लिए हृदय का हार भी भार बन गया है और रोते- ति उसकी आँखों के आँसू बन्द नहीं होते। उसकी सखियाँ उसे प्रसन्न करने के लिए उसके पास जाकर हास्य-विनोद करती है, किन्तु उसके मन को कुछ भी शान्ति नहीं होती। उसने चन्दन, कस्तूरी, हुकुम आदि सभी वस्तुएँ तुम्हारे कारण त्याग दी हैं। वह पानी से रहित मछली की तरह पीड़ित एकर घूमती रहती है और बिरह के कारण रात-दिन जागी रहती है। दूती का समाचार सुनकर और नतिका के गुणों का स्मरण करके कृष्ण उसी समय दौड़ पड़े। कवि विद्यापति कहते हैं कि मोदक के पति रामसिंह इस विषय में विरत है, अर्थात् ने अपनी प्रिया से कभी भी अलग नहीं होते। विशेष नायिका की विरह दशा का वर्णन परम्परागत है।

चल हर चल हरि भल हुअ कला। खन वित बसन खनहिं बधछला। खन पंचानन खन भुज बारि। खन संकर खन देब मुरारि। खन गोकुल भए बराइज गाए। खन निखि माँगिए डमरु बजाए। खन गोविद भए लिअ महादान। खनहि भसम भरु काँख बोकान। एक सरीर लेल दुई बास। खन बैकुंठ खनहि कैलास। भनड़ विद्यापति विपरीत बानि। ओ नाराएन ओ सुलपानि। प्रसंग इस छन्द में शिव की स्तुति की गई है।

व्याख्या-हें शिव । तुम अच्छे हो। हे विष्णु (हरि)। तुम भी अच्छे हो, और तुम्हा कला भी उत्तम हैं। एक क्षण में ही तुम पीताम्बरधारी बनते हो और दूसरो क्षण में ही व्याघ्र वर्ष को धारण करने वाले बनते हो। क्षण में पाँच मुखों वाले और क्षण में चार भुजाओं वाल बन जाते हो। पल में कृष्ण बनकर गोकुल में गायें बराने लगते हों और पल में ही शिव के रू में उयह बजाकर भिक्षा माँगने लगते हो। क्षण में ही गोविन्द (कृष्ण) बनकर गोपियों से महाद की वाचना करते हो और क्षण में ही बंगलों और कानों में भस्म लगाने लगते हो। तुम्हारा शरी ती एक हैं, लेकिन उसका निवास दो स्थानों पर है। एक क्षण में यदि वह बैकुण्ठ में दिखाई देउ हैं तो दूसरें क्षण में कैलास पर्वत पर। कनि विद्यापति विपरीत बात कहते हैं कि एक नारायण । तो दूसरा त्रिशूल को धारण करने वाला महादेव है।

विशेष यदि इस पद के आधार पर विद्यापति की भक्ति के स्वरूप पर विचार किय जाए तो कहा जा सकता है कि वे शिव और विष्णु में कोई तात्विक भेद नहीं मानते।

अलंकार शिव के अनेक गुणों का वर्णन होने से उल्लेख अलंकार।

कनक-लता अरविंदा। दमना माँझ उगल जनि चंदा।

केओ कह सैबल छपला। केओ बोल नहि मेघ झपला।

कैओं कह भमए भमरा। केओ बोल नहि नहि बरए चकोरा।

संसय परक सब देखी। केओ बोलए ताहि जुगुति बिसेखी।

भनड्ग विद्यापति गावे। बड़ पुन गुनमति पुनमत पाये।

प्रर्थग-सखी सखी से नायिका (राया) की शोभा का वर्णन कर रही है। व्याख्या-उस नायिका की देह-रूपी सोने की लता में मुख-रूपी कमल खिला हुआ है, अर्थात् उस नायिका की देह इतनी सुन्दर तथा कोमल है जैसे वह सोने की लता हो। उसके गहरे काले केशों के बीच उसका मस्तक ऐसा चमकता है मानो द्रोणलता के बीच चन्द्रमा उर आगा हो। उसके केशों से घिरे हुए मुख की शोभा इतनी बढ़ गई है कि लोग भिन्न-भिन्न प्रकार में उसका वर्णन करते हैं। कोई कहता है कि उस बाला का मुख केशों से ढँककर ऐसा लगत हैं, जैसे सेनारों में चन्द्रमा छिपा हुआ हो। कोई कहता है कि नहीं, नहीं, यह कथन सत्य नहीं हैं, वरन् ऐसा लगता है जैसे चन्द्रमा बादल की ओट में छिपा हुआ है। इसी प्रकार उसके चंचत तेरों की देखकर कोई तो यह कहता है कि वे नेत्र ऐसे हैं जैसे भौर झूम रहे हैं। कोई इस कचन का निर्णय करता हुआ कहता है कि वे ऐसे हैं जैसे चकोर दाना चुग रहे हैं। इस प्रकार उसके नख तन्क्ष नेत्रों का सौन्दर्य देखकर सभी भ्रम में पड़े हुए हैं। जो भी इनके विषय में कुछ कहत है, उसकी दुक्ति विशेषता से मुक्त होती है। विद्यापति कहते हैं कि ऐसे गुणवती बाला को ते कोई पुण्यगन्ना बड़े पुण्णों से ही प्राप्त कर पाता है।

विशेष परम्परागत उपगानों का नितांत नवीन शैली में प्रयोग इस पद की प्रमुख विशेषत है। यह निशेगता विद्यापति की काव्य प्रतिमा का निर्धान्त उद्घोव है।

3.6 कबीर और जायसी के तुलनात्मक रहस्यवाद

सृष्टि के विविध पदायों को देखकर जो जिज्ञारत एवं चिन्तन का भाव होता है। जब वह काष्य में स्थान पाता है तब उसे रहस्यवाद कहते हैं। अभिप्राय यह है थिय होता है। जब उत्तर- प्रति जिज्ञारण, विरह और मिलन के भाव को जब कवि काव्य में अभिव्यक्त करता है। तब यही रहस्यवाद कहलाता है।

रहस्यवाद और भौतिकवाद जगत और उसकी परिस्थतियों की विषमताओं के मूल में विद्यमान एकात्मकता की अनुभूति है। जिसके कारण पूर्णता का अनुभव और अनन्तः मुक्ति की उपलब्धि होती है। यह धारणा कोई नई नहीं है। रहस्यवाद का स्वरूप हमें वेदों और उपनिषदों में भी मिलता है। ऐसा बिद्वानों ने भी खोज निकाला है। यहाँ उल्लेखनीय है कि कबीर का रहस्यवाद उपनिषेदों की परम्परा में ही, पर जायसी का रहस्यवाद सूफी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं। जहाँ कहीं उपनिषदों का स्वर भी मिल जाता है। हिन्दी के सबसे पहले रहस्यवादी कवि कबीर है, जिन पर बेदान्त दर्शन का प्रभाव है। इसके काव्य में जीव और ब्रद्धां की तात्विक एकता मिलती है।

रहस्यवाद प्रमुख रूप से दो प्रकार का होता है- (1) ज्ञानमूलक और (2) भावनामूलक । कबीर का रहस्यवाद प्रथम कोटि का है। और जायसी का रहस्यवाद दूसरी कोटि का है। इतना अवश्य है कि कबीर के काव्य में भाव मूलक रहस्यवाद भी मिल जाता है। जायसी के काव्य में साधनात्मक रहस्यवाद के भी उदाहरण मिल जाते हैं। जायसी के साधनात्मक रयावाद का एक उदाहरण लीजिये-

"नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तह फिरहि पांच कोतवारा ।।

दसवें बुआर गुपुत एक ताका। अगम चढ़ाव बार सुठि बांका।।

भेदे आइ कोई ओहि घाटी। जो लहिं भेद, चढ़ होई चांटी।।

गड़तर कुण्ड सुरंग तेही मांहा। तहं वह पंथ कही केहि पाहाँ।।

दसबै बुआर ताल कै लेखा। उलटि दिस्टि सो लख जो देखा।।" रहस्यवाद की सत्ता काव्य में भी हैं और दर्शन में भी। काव्य के रहस्यवाद का उद्गम

स्रोत हृदय है। दर्शन के रहस्यवाद का प्राण ज्ञान है और उसकी उच्छवसित-उत्स मस्तिष्क है। दोनों में इतना ही अन्तर है जितना एक नियमित और निश्चित सड़क में और नदी के वृक्ष पर चलती हुई नौका के पत्र में। एक के आसपास सुनसान निर्जन है और दूसरे के पास सुमधुर संगीत की ध्वनि। यदि साहित्यिक नामकरण ही किया जाये तो हम एक पथ को निर्गुण पथ कह सकते है और दूसरे को सगुण। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि कबीर और जायसी दोनों ही निर्गुणयथ को अपनाकर चलते हैं। कबीर के रहस्यवाद में भावना का (प्रेम का) आग्रह अधिक है।

पाश्चात्य आलोचकों के अनुसार रहस्यवाद की अवस्थायें इस प्रकार है-जागृति, आत्मशुद्धि, आत्मप्रकाश, अन्धकार, अन्तर्मुखीवृत्ति और मिलन। सामान्य रूप में रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ मानी जातीं हैं- (1) जिज्ञासा (2) ज्ञान और (3) मिलन। यहाँ पर हम कबीर और जायसी के रहस्यवाद की विवेचना रहस्यवाद की पाँच अवस्थाएँ मानकर करेंगे, जो इस प्रकार है-

(1) प्रभु के प्रति जिज्ञासा, कुतूहल अथवा विस्मय की भावना।

(2) प्रभु के महत्व और उसकी अनिवर्चनीयता।

(3) प्रभु के प्रति दर्शन का प्रयत्न।

(4) प्रभु के प्रति विभिन्न सम्बन्धों की उद्भावना।

(5 (1) प्रभु से एकाकारिता।

) कबीर के काव्य में विस्मय का भाव इस प्रकार है- "अवधू सो जोगी गुरु मेरा, (जो या) पद का करें निबेरा।

तरवर एक मूल बिनु, टाक्षा, बिन फूलां फल लागा। साखा पत्र कछु नहि वाके, अस्ट गगन गुख बाजा यौ बिनु पत्र करद बिनु तूंबा, बिनु जिम्या गुन गावै। गावनहार के रेख रूप नहि, सतगुरु होय लखावै।"

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि वह कौन है? इन 'कौन' शब्द के उत्तर की जटिलता को देखक

कबीर कहते हैं-

वर्णहु कौन रूप और रेखा, दोसर कौन आहि जो देखा।

" ओंकार आदि नहिं वेदा, ताकर कहहु कौन कुल भेदा।।"

जायसी के काव्य में विस्मय का भाव इस प्रकार है-

"देखि एक कौतुक हौं रहा,
रहा अन्तरपट पै नहि अहा।"
(2) अब कबीर के काव्य में प्रभु के महत्व की अनिर्वचनीयता को लीजिए। इसमें 'कौर का उत्तर मिलता है, अनुभूति की गहराई और व्यापकता मिलती है। जैसे-
"लाली मेरे लाल की जित देखें तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।"
जायसी के काव्य में यहीं अनुभूति इस प्रकार है- "बहुतै जोति जोति ओहि भई।"
रवि, ससि, नखत विपहि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती ।।
जहें जहें विहंसि सुभावहि हँसी। तहाँ छिटंकि जोति परगासी ।।
"समन्दर लागी आंगि, नदियाँ जल कोयला भई।
देखि कबीरा जागि, मछली रुखा चढ़ गई।।"
यहाँ सांसारिक परिस्थितियाँ समुद्र है, दुनिया की मिलावट नदियों हैं। भक्ति भावना अगि है तथा आत्मा मछली है। यह रहस्यवाद प्रतीकात्मक शैली पर आधारित है। जायसी के काळ में इस प्रकार का रहस्य वाद नहीं मिलता। जायसी ने 'पद्मावत्' प्रबन्ध काव्य को समासोक्ति प अन्योक्ति की पद्धति पर लिखा है, इस दृष्टि से हम कहेंगे कि रहस्यबाद का जो कथात्मक आधा जायसी ने अपनाया है, कबीर नहीं अपना सके। आरम्भ से अन्त तक रूपक के निर्वाह की मर्याद में जायसी जकड़े रहे हैं, पर कबीर तो इस झंझट से पूर्णतः मुक्त हैं। कबीर और जायसी के रहस्यवाद में जीवन की विविध स्थितियाँ है, प्रिय होने की कामना साधना के अनेक कष्ट, विश्वास और आस्था आदि के चित्र भरे पड़े हैं। कबीर के रहस्यवाद में आस्था और विश्वास का चित्र इस प्रकार है-
"काहे री नलिनी, तू कुम्हलानी,
तेरे हीं नाल सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में वास,
जल में नलिनी तोर निवास।"
यह तो 'ब्रह्मऽस्मि' की स्थिति है। अब जायसी के रहस्यवाद में यही दृढ़ता देखिये- "सुनि धनि प्रेम सुरा के पिए। मरन जियन कर रहै न हिए।।"
एक आलोचक के अनुसार कबीर और आयसी के रहस्यवाद में अन्तर इस प्रकार है- कबीर और जायसी दोनों पर भारतीय बेदान्त दर्शन और सूफी मत का प्रभाव पक्षात प्रकार हो कबीर वेदान्त दर्शन से अधिक प्रभावित है वहाँ जायसी का झुकाव सूफी साधना की और उसको है। कबीर का रहस्यवाद व्यष्टिमूलक है, एकान्तिक है किन्तु जायसी की रहस्यभावना और अधिक और विश्वव्यापनि है। कबीर का रहस्यवाद एक समाधिनिष्ठ योगी की अल्गख अगोचराष्ट्रिचालक खोज है; किन्तु जायसी का रहस्यवाद अनन्त सौंदर्य सम्पन्न प्रिय से मिलने के लिए उत्सुक, प्रेममार्ग में पचिक के हृदय की पुकार है। आत्मा और परमात्मा के बीच दाम्पत्य भाव की कटक, प्रेममा और जायसी दोनों ने की है।
कबीर और जायसी का रहस्यवाद समानता (1) दोनों में ही प्रेम की तीव्रता के दर्शन होते हैं। (ii) जायसी के समान कबीर पर भी सूफी सिद्धान्तों का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। । (iii) दोनों का रहस्यवाद समष्टिमूलक है। (iv) जायसी के समासोक्ति व अन्योक्ति के माध्यम से रहस्योक्तियों की व्यंजना की है और कबीर ने भी प्रतीकों तथा उलटबासियों का प्रयोग किया है। (v) दोनों ही परब्रह्म में अटूट विश्वास रखने बाले हैं। (vi) दोनों काव्य में रूढ़ियों और परम्पराओं का निर्वाह किया है। (vii) दोनों का रहस्यवाद योग मूलक आध्यात्मिक प्रेममूलक व अभिव्यक्तिमूलक है। असमानता (1) जायसी सौन्दर्य के बाह्य उपकरणों का अधिक उपयोग करते हैं, कबीर में ऐसी बात नहीं-उनका ब्रह्म 'शून्य' मण्डल में रहता है। (ii) कबीर में योगियों की सी क्लिष्टता है, जायसी में नहीं। (iii) कबीर का रहस्यवाद साधनात्मक है, जबकि जायसी का रहस्यवाद भावात्मक माना जाता है। (iv) जायसी का प्रेम रूप लिप्साजनित है और कबीर का प्रेम संस्कार मूलक है। (v) कबीर की विरह वेदना उन्हीं तक सीमित है जबकि जायसी की विरह वेदना व्यापक और विपुल है, प्रकृति भी उससे प्रभावित है। 1 (vi) कबीर ने जायसी की भाँति नख-शिख वर्णन नहीं किया है। (vii) कबीर की साधना विचार प्रधान और जायसी की भाव प्रधान है। (viii) साधना पथ पर कबीर का विघ्न माया है तथा जायसी का राधवचेतन। जायसी ने माया को नहीं माना है लेकिन कबीर ने उसका बड़ा भावनात्मक वर्णन किया है। (ix) कबीर में आराध्य का दर्शन मानसिक और

आन्तरिक है पर जायसी में वह प्रत्यक्ष और बाह्यात्मक है। (x) कबीर की रहस्यवादी स्थिति, जायसी की मिलनावस्था से पृथक, पूर्ण तादात्म्य की है। "जायसी और कबीर हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं। एक का रहस्यवाद भारतीय भक्ति मार्ग श्रुति-ग्रंथ, सिद्धमत और नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित होने के कारण आध्यात्मिक एकांतिक व्यष्टिमूलक सजीव और वर्णात्मक है। दूसरे का सूफी साधना और भावना से अनुप्राणित होने के कारण अत्यन्त सरस, संकेतात्मक और समष्टिमूलक है।"

3.6 कबीर का साहित्य के क्षेत्र में मूल्यांकन

उत्तर- इस अनन्य प्रतिभाशाली कवि की हिन्दी साहित्य में उपेक्षा ही हुई है। इस उपेक्षा के मूल में रसवादी आलोचकों की संकीर्ण और आदर्शपरक सीमित दृष्टिकोण प्रधान कारण रहा है। आचार्य शुक्ल ने कबीर आदि की तीन बातों के कारण उपेक्षा की है- (1) उपदेश और भर्थ की भोरस चर्चा, उलट-मारियों तथा रानी-सुनाई बातों का विष्षण (2) सुष्यवस्थित दार्शनिक विचारधारा का अचान तथा विभिन्न विचारधाराओं का अ (3) भाषा और शैली का अव्यवस्थित रूप।

उपर्युका त्रुटियों के रहते हुए भी शुक्ल जी को अन्त में मानना ही पड़ा कि उनमें बड़ी प्रखर थी, इसमें सन्देह नहीं।" साहित्य में शक्तिशील, सौन्दर्य की अपनी आ का मापदण्ड मानकर चलने वाले प्रखर आलोचक शुक्ल जी से हिन्दी साहित्य में अपनी प्रतिभा की धाक मनवाने वाले एकमात्र कबीर ऐसे हैं, जिनकी शुक्ल जी ने विरोध करते हु प्रशंसा की है। यह कबीर की बहुत बड़ी विजय है।

कबीर साहित्य की सबसे बड़ी देन है, जीवन की मूल समस्याओं पर मौलिक विचार करने की प्रेरणा देता है। कबीर की प्रेरणा-सत्य की साधना से है, न कि कारण स प्रदर्शन या सामाजिक या और किसी दृष्टि से सब लोगों को एकता के सूत्र में आँधने से उन्हें की अनेकता में मानव की भाव एकता का सूत्र मिल गया था। । सामाजिक विषमता, आडम्बर और के विरोध में कबीर ने सरल व प्रेममय जीवन अपनाने। का सन्देश दिया था। चार्दिक साम्प्रदायिक संकीर्णताओं के उस युग में निर्भय होकर ऐसी बातें कहना बहुत बड़े आत्मबल साहस का काम था। कबीर ने विषमताओं से त्रस्त मानवता को हर प्रकार के अन्याय का किल

करने की शक्ति प्रदान कर चुगजीवन की धारा को मोड़ने का ऐतिहासिक कार्य किया था। हिन्दी साहित्य में शुद्ध साहित्य की दृष्टि से तुलसी और सूर तथा विषय के महत्व की

से तुलसी और कबीर अद्वितीय माने जाते हैं। तुलसी में अपने आदर्श के कारण जहाँ शकि बल और उत्साह मिलता है वहाँ कबीर में जीवन की प्रधान समस्या सामाजिक विषमता की हमारा ध्यान आकर्षित कर चिंतन की प्रेरणा मिलती है। इस क्षेत्र में कबीर अद्वितीय है। अ इसी सार्वजनिक भावना के कारण वे जनता में विशेष लोकप्रियता प्राप्त कर सकें। रसमाहित और कला पिपासुओं ने कबीर का विशेष सम्मान कभी नहीं किया। भ्रातृ भावना और समता दृष्टि कबीर के पहले इस रूप में और कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। रामानुज भक्ति के क्षेत्र तो समानता के समर्थक थे, परन्तु इस क्षेत्र से बाहर वे भी भेदभाव को मानते थे। लेकिन सब ईश्वर की सन्तान हैं, मनुष्य मात्र समान हैं, जाति और धर्म का कोई भेद नहीं, इसी क की घोषणा करने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति कबीर थे। इस तरह कबीर मानवता के प्रथम कवि रिथ होते हैं।

कबीर ने कविता क्यों की? यदि इस प्रश्न का उत्तर जान लिया जाय तो हम कबीर है काव्य-शास्त्र सम्बन्धी त्रुटियों को क्षमा कर उनका उचित मूल्यांकन कर सकेंगे।

कबीर ने अपने काव्य में केवल 'ब्रह्म विचार' को ही प्रकट किया है। अपनी आल साधना का सार-सार भरकर उसे अपने शब्दों द्वारा केवल प्रत्यक्ष कर देने की चेष्टा की है। क अपनी बानियों की रचना का उद्देश्य विद्यापति की भाँति 'नाअर' मन को मुग्ध कर देना अच्छ किसी 'कब्ब क्लाउ छइल्ल' का मनोरंजन करना नहीं मानते। वे इस विचार से से अनुप्राणित पड़ते हैं कि-

हरिजी वह विचारिया, साखी कहाँ कबीर। भौसागर में जीवन है, जो कोई पकड़े तीर।।

इस पद से अपने काव्य द्वारा जन मात्र का कल्याण करने की उनकी तीव्र भावना स्पष्टीकरण हो जाता है। वे इनके अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से की गई काव्य रचना की का 'कविकर्म' समझते हैं।

कबीर के व्यक्तित्व के दो प्रधान पक्ष हैं- प्रथम धर्म सुधारक उपदेशक का, द्वितीक

शुद्ध भक्ति का। इसी के अनुसार उनके काव्य के दो पक्ष हो गये है-धर्म सुधारक उपदेश के, रूप में उन्होंने जो कुछ कहा है वह खण्डन मण्डन की भावना से ओत-प्रोत होने कारण वार शुष्क एवं कर्कष भाषा में है। उसमें साहित्य सौन्दर्य का अभाव है। इसका कारण यह है कि 'शुद्ध कविता' करना - कबीर का लक्ष्य नहीं था। कविता को तो उन्होंने अपने भावों तथा विचारों को जनता तक पहुँचाने का माध्यम बनाया था।

उन्होंने न 'मसि कागद' छुआ था और न 'कलम हाथ गाही' थी, वे तो केवल ईश्वरीय एवं मानवीय प्रेम का ढाई अक्षर पढ़कर पण्डित हो गये थे। कवि के लिए आपेक्षित गुणों-प्रतिभा, शिक्षा और अभ्यास में से कबीर में केवल प्रतिभा थी। उनके ज्ञान का साधन एवं स्रोत सत्संग और पर्यटन था। वे बहुश्रुत थे।

कबीर के हृदय में सच्चाई थी और आत्मा में बल, इसीलिए उनकी वाणी में इतनी शक्ति आ गयी थी। उनकी बाणी की यह शक्ति ही काव्यगत सरसता बनकर पाठकों के हृदय को प्रभावित करती है। परन्तु इस सरसता के दर्शन केवल उन्हीं स्थानों पर होते हैं जहाँ उन्होंने संसार से नाता तोड़ भक्ति भावना में आकण्ठ निमग्र हो, अपनी विरह-व्यथा का वर्णन किया है। यह उनके काव्य का दूसरा पक्ष है। कविता करते समय कबीर को इस बात का ध्यान नहीं रहता था कि जो कुछ वे कह रहे हैं, वह सुन्दर और सरस है अथवा नीरस। परन्तु आत्मा से सच्चे उद्‌गार होने के कारण सरसता उनमें स्वतः ही आ जाती थी।

कबीर का व्यक्तित्व प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्तिकारी था। उनका यह क्रान्तिकारी व्यक्तित्व भक्त, प्रेमी, सुधारक तथा शुद्ध मानव की विभिन्न धाराओं में प्रवाहित हुआ है। उनके प्रत्येक रूप में सर्वत्र एक प्रखरता, स्पष्टता एवं निश्छलता है। उन्होंने अपने अशिक्षित होने की बात बड़े स्पष्ट और निश्छल शब्दों में कह दी थी, परन्तु उन्हें अपने सांसारिक अनुभव और ज्ञान की शक्ति पर पूर्ण आस्था थी। इसी को उन्होंने शिक्षित पण्डितों को ललकार कर कहा था- "तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।" उनकी आँखिन की देखी बात वहाँ तक तो ठीक है, जहाँ तक उन्होंने भगवान के प्रेम में तन्मय होकर अपनी भक्ति भावना का प्रदर्शन किया है, परन्तु जहाँ वे खण्डनात्मक प्रणाली का आश्रय ग्रहण कर दार्शनिक तत्वों का निदर्शन करने का प्रयत्न करते हैं वहाँ उनकी यह 'आँखिन देखी' बात लड़खड़ा उठती है, प्रकृति प्रदत्त काव्य- शक्ति उनका साथ छोड़ देती है। इसका कारण यह है कि तर्क के लिए शास्त्रीय बुद्धि एवं ज्ञान की अपेक्षा होती है। कबीर में मस्तिष्क तो था, परन्तु उनका शास्त्रीय ज्ञान न के बराबर था। वह केवल सुना-सुनाया था। उनमें गम्भीरता नहीं थी। इसी से वे इस क्षेत्र में आकर लड़खड़ा उठते हैं। उनका वास्तविक एवं स्वाभाविक क्षेत्र, काव्य की दृष्टि से तो हृदय था। इग्ने से सरसता केवल वहीं मिलती है। कबीर ने दार्शनिक गुत्थियों को केवल अपने व्यावहारिक अनुभव के बल पर सुलझाने का प्रयत्न किया था।

कबीर के काव्य में सन्देश की प्रधानता मिलती है। इसी से उसमें कल्पना तत्व की न्यूनता है। इस न्यूनता के कारण उसके चित्र अस्पष्ट और अधूरे हैं। यह विशेषता केवल कबीर के काव्य में ही नहीं, अपितु समस्त सिद्ध एवं सन्त साहित्य में पाई जाती है। सुस्पष्ट बौद्धिक चिन्तन और, वास्तविक शास्त्रीय ज्ञान के अभाव के कारण उसमें स्पष्टता नहीं आ पाई। खण्डन-मण्डन प्रधान काव्य में रागात्मकता का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु जहाँ कबीर ने अपने अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्मविभोर होकर अपनी व्यथा के विरह का वर्णन किया है, वहाँ रागात्मक तत्व अपनी पूर्ण तन्मयता और हृदय-स्पर्शिता के साथ साकार हो उठा है। उनके विरह के पदों में मीरा की सी तन्मयता, सूर की सी सरलता और विद्यापति का सा काव्य-सौन्दर्य है। कबीर के पास सशक्त, कलापूर्ण भाषा नहीं है। वे दोहा जैसा साधारण-सा छन्द भी ठीक नहीं लिख सके हैं, रूपक

कहीं-कहीं अस्या और अधूरे हैं, अलंकार भी शुद्ध नहीं है, फिर भी उनको भौतिक भावना क छन्द हृदय को स्पर्श करते हैं। इसके मूर में उनका गम्भीर अनुभूतिजन्य तन्मयला ही है। उदाहरणा कबीर के निम्नलिखित पद द्रव्य है-

माली आवत देखकर कलियन करी पुकार। फूले-फूले चन लिये कालि हमारी बार।।

लाली मेरे लाल को जित देखें लिप्त लाल।

लाली देखन में चलो, मैं भी है गई लाल।।

यहाँ हम कबीर की विवेचना एक धर्म गुरु के रूप में न कर एक साहित्यिक के रूप कर रहे हैं। धर्म गुरु के रूप में कोई भी व्यक्ति चाहे कितना ही महान् क्यों न हो, परन्तु यो उसका साहित्यिक रूप नगण्य है तो साहित्य की दृष्टि से उसका अधिक मूल्य नहीं रह जाता है। इसलिए कबीर को अपने युग का साहित्यिक नेता एवं भावी साहित्य की विचारधारा के प्रभावि करने वाला सिद्ध करने के लिए उनके काव्य में साहित्यिकता को भी परखना पड़ेगा। यद्यपि कबो पड़े-लिखे नहीं थे, परन्तु उनमें काव्य सृजन की प्रखर प्रतिभा थी।

कबीर साधक थे। उनकी साधन के भी दो रूप थे- कर्मयोग और हठयोग। कर्मयोएं के समान वे संसार की माया में निर्लिप्त रहते थे। उनकी कथनी और करनी में साम्य था। परन उन्होंने संसार के संघर्ष में पलायन का उपदेश कभी भी नहीं दिया। वे उससे टक्कर लेने के पक्षयत थे। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- "साधना के क्षेत्र में वे युग-गुरु थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य रहा।" सच्चे कर्मयोगी होने के कारण वे युग-युग के गुरु

थे। उन्होंने सन्त कार का पथ-प्रदर्शन कर साहित्यिक क्षेत्र में नव निर्माण का कार्य किया था। उनके समकालीन एवं परवर्ती सभी सन्त कवियों ने उनकी वाणु का अनुसरण किया था।

कबीर युग दृष्ट्रा थे। अपने समय की सम्पूर्ण गतिविधियों पर उनकी नजर रहती थी। गाँधे आधुनिक युग के अत्यन्त जागरूक दृष्टा थे। युग दृष्टा शाश्वत काल से विषमताओं का खण्डर कर मानवता का प्रचार करते आये हैं। बुद्ध ने यही किया, तुलसी का प्रयत्न भी यही रहा और गाँधी जी ने भी इसी के लिए अपना बलिदान कर दिया। इन्हीं महान् मानवों के समान कबीर अपने समय की बनता के एकमात्र प्रतिनिधि और पथ प्रदर्शक थे। वे सत्य को परमात्मा मानते थे। इसे से वे अपने को 'सत्यनाम का उपासक' कहते थे। भौतिक शक्ति उन पर विजय पाने में असमर्थ
रही थी। उनका धर्म था कि "साई सेती साँच रह, ओरां सू सुध भाय।" परमात्मा की सर्वव्यापकत
को स्वीकार कर ही कबीर ने पददलित शूद्रों को समानता का अधिकार दिया था।

लोक-कल्याण तथा आत्म-कल्याण की दृष्टि से कबीर ने गरीब को सदैव गले से लगाये रखा था। गरीब और सत्य-निष्ठा, जीलन की बहुत बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि सच्ची मानवत इन्हीं की गोद में पलती है, यही मानव का परिश्रमी और सत्य तथा न्याय का आराधक बनात है। यही कारण है कि कबीर स्वयं कपड़ा बुनकर अपनी जीविका चलाते थे और सत्य धर्म का प्रचार करते थे। गाँधी और कबीर के जीवन में अनेक समानताएँ हैं।

साखी-भाग

1. गुरुदेव को अंग

परिचय- 'गुरुदेव को अंग' के अन्तर्गत वे साखियाँ संकलित की गई हैं, जिनमें किसी हुई हैं। हैं। इस अंग में कबीर ने बताया है कि इस संसार में व में गई हितैषी और अपना सगा नहीं है। गुरु की महिमा अनंत है और इसे वही समयल न किसी रूप में गुरु की महत्ता व्यंजित। गुरु के समान सकता है जिसके ज्ञान चक्षु खुल गये हों।

सतगुर सवाँन को सगा, सोधि सई न दाति । हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सई न जाति ॥ 1 ॥ बलिहारी गुरु आपण, द्यौं हाड़ी कै बार। जिनि मानिव तें देवता, करत न लागी बार ॥ 2 ॥

प्रसंग-प्रस्तुत अंश ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि समाज से सजग प्रहरी, महान् सन्त एवं समाज सुधारक, जननायक, महाकवि 'कबीरदास' द्वारा रचित 'कबीर ग्रन्थावली साचो ग गुरुदेव को अंग' से अवतरित किया गया है।

देव व्याख्या (इस संसार में) सद्गुरु के समान अपना कोई निकट सम्बन्धी नहीं है। तत्वशोधन या प्रभु की खोज करने वाले साधु के समान कोई दाता नहीं क्योंकि वह अपना समस्त ज्ञानार्णव साथ में उड़ेल देता है। दयालु प्रभु तुल्य अपना कोई हितैषी नहीं है और प्रभुभक्तों के समान कोई जाति नहीं है। में श्रेष्ठ । अर्थात् प्रभु-भक्त सब मनुष्यों है।

मैं शरीर को अपने गुरु के ऊपर वार न्यौछावर करूं, मैं उनकी बलि-बलि जाता हूँ, जिन्होंने अत्यन्त अल्प समय में मुझे मनुष्य से देवता बना दिया अर्थात् मेरी मानवीय दुर्बलताओं को नष्ट कर मुझे दिव्यगुण युक्त कर दिया।

विशेष-अनन्वयोपमा, अनुप्रास एवं यमक अलंकार।

सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखबणहार ॥ 3 ॥

राम नाम लै पंटतरै, देवे को कुछ नांहि।
क्या ले गुर संतोषिए, हाँस रही मन मांहि ॥ 4 ॥

प्रसंग-पूर्वानुसार।

व्याख्या-सद्गुरु की महिमा अपरम्पार है, उन्होंने मेरे साथ महान् उपकार किया है। उन्होंने मेरे (चर्मचक्षुओं के स्थान पर) ज्ञान-चक्षु खोल दिये, दिव्य दृष्टि प्रदान कर दी, जिसक द्वारा उस अनन्त ब्रह्म के दर्शन हो गये।

गुरु ने राम-नाम का जो अमूल्य मन्त्र दिया है उसके बदले में देने के लिये मेरे पास कुछ नहीं है, क्योंकि उस राम-नाम के सम्मुख समस्त वस्तुएँ तुच्छ और हेय है, फिर भला मैं क्या देकर गुरुदेव को सन्तुष्ट करूँ- यही प्रबल अभिलाषा मेरे मन में हुमक कर रह जाती है।

विशेष-यमक अलंकार।

सतगुर के सदकै करूं, दिल अपणीं का साछ।

कलियुग हम स्यूं लडि पड्या, मुहकम मेरा बाछ ॥ 5 ॥

सतगुरु लई करांण करि, बाँहण लागा तीर।

एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर ॥ 6 ॥

व्याख्या-में सदगुरु पर प्राणपण से न्यौछावर हूँ एवं अपने हृदय को साक्षी करके कहत हूँ कि कलिकाल अर्थात् मायामोह के प्रपंच मुझसे जूझ रहे हैं, पापों का और मन का संघर्ष स रहा है, किन्तु शक्तिसम्पन्न गुरूवर मेरे रक्षक हैं, अतः पाप-पुंज मुझे परास्त नहीं कर सकते। सद्गुरु ने हाथ में धनुष धारण कर लिया एवं तीरों की वर्षा करने लगे अर्थात अध्यवसायपूर्वक, प्रयत्नपूर्वक शिष्य को उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। इन उपदेश बाणों में एक बाण इस प्रकार प्रेमपूर्वक चलाया जिसने अन्तर को बेधकर हृदय में घर कर लिया। हृदय तर याण को पहुंचने के लिये मध्य के समस्त अन्धावरण बेचने पड़े हैं, इसीलिए वह हृदय में जात्रा रह गया।

यह बाण था प्रेम का। - सतगुर सांचा सूरिबाँ, सवद जु बाह्या एक। लागत ही मैं मिल गया, पड्या कलेजे छेक ॥ 7 ॥ सतगुर मार्या बाण भरि, घरि करि सूधी मूठि। अंगि उधाई लागिया, गई दवा सूं फूटि ॥ 8 ॥ हँसै न बोलै उनमनीं, चंचल मेल्ह्या मारि।

कहे कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि ॥ 911 व्याख्या-सदगुरु सच्चे शूरवीर हैं। जिस प्रकार रणभूमि में सूर अपने विरोधी पक्ष को

बाण-वर्षा से परास्त कर र देता है, उसी प्रकार उस सद्गुरु रूपी शूर रने ने 'शब्द' (उपदेश) का बाग चलाया। उनके लगते ही मेरा 'मैं' अर्थात् अहं नष्ट हो गया अथवा उसके लगते ही मेरा आत्म- ज्ञान से साक्षात्कार हो गया। उस बाण के लगते ही हृदय में प्रेम की टेक का छिद्र हो गया। तात्पर्य यह है कि यह प्रेम उस सद्गुरु के उपदेश रूपी बाण का ही परिणाम है।

सद्गुरु ने साधक के ऊपर यह उपदेश-बाण पूर्ण शक्ति से खींचकर एवं मूठ को लक्ष्योन्मुख करके सीधा कर मारा जिससे दावाग्नि सी फूट पड़ी। समस्त बासना, माया आदि जल-जल का क्षार होने लगे एवं साधक शरीर के वस्त्र, माया आदि आवरण, उतार कर फेंकने लगा अर्थात उसका वस्तुस्थिति से साक्षात्कार हो गया।

योग को उन्मन दशा का वर्णन करते हुए कविवर कबीरदासजी कहते हैं क मन की चंचत बत्तियों को समाप्त कर सद्गुरु के उस उपदेश के (प्रेम के) बाण ने हृदय को बेध दिया। परिणामस्वरूप शिष्य न हँसता है और न बोलता है अर्थात् सांसारिक हास विलास तथा राग- विराग में असम्पृक्त हो गया है।

विशेष-उपमा एवं सांगरूपक अलंकार।

गूंगा हुआ बावला, बहरा हुआ कान।

पाऊँ मैं चंगुल भया, सतगुर मार्या बाण ॥ 1011

पीछें लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।

आर्गे थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥ 1111 दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।

पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आँधौ हट्ट ॥ 12 ॥

ग्यान प्रकास्या मुर मिल्या, सो जिनि बीसरी जाई।

जब गोविन्द कृपा करी, तब गर मिलिया आई ॥ 13॥

व्याख्या-सद्गुरु के उपदेश-बाण के ग के लगते ही शिष्य गूंगा, पागल, कानों से बहरा और पैरों से लंगड़ा हो गया। भाव यह है कि शिष्य वाणी का दुरुपयोग व्यर्थ के वाद-विवाद में नहीं करता एवं उसके कान भी प्रेम-भक्ति चर्चा के अतिरिक्त अन्य विषयों के लिए बहरे हैं एवं सांसाि प्रयत्न से विरत होने के कारण लँगड़ा हो गया। इस विशेष स्थिति के कारण ही उसे पागल बताया गया है।

मैं (शिष्य) लोक एवं वेदविहित मार्ग का अंधानुकरण करता जा रहा था, किन्तु आगे पथ में गुरुदेव मिल गये और उन्होंने ज्ञान का दीपक मेरे हाथ में दे दिया जिसमें मैं अपना पंच स्वयं खोजकर लक्ष्य (ब्रह्म-प्राप्ति) तक पहुंच सकें। सदगुरु ने प्रेमरूपी तेल से परिपूर्ण एवं सर्वदा रहने वाली

ज्ञानवर्तिका से युक्त दीपक मुझे प्रदान किया। इसके प्रकाश में संसार रूपी बाजार में मैंने कर्मों का समस्त क्रय-विक्रय उपयुक्त होति से कर लिया। अब मैं पुनः इस बाजार में नहीं आऊंगा। अर्थात् इस ताका सयुक्त मैं जीवन मुक्त हो जाऊँगा।

गुरुदेव से भेंट होने पर हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो गया। ऐसे ज्ञान स्वरूप गुरु से विमुख नहीं होना चाहिये। यह प्रभु कृपा का ही फल है कि गुरुबर मुझे मिल गये। विशेष-1. सद्गुरु की प्राप्ति के लिए कबीर भगवत्कृपा को आवश्यक मानते हैं।

2. कबीर के पुनर्जन्म आवागमन में विश्वास का परिचय प्राप्त होता है। . अलंकार-सांगरूपक एवं रुपकातिशयोक्ति अलंकार। 3

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आर्ट लूंण।

जाति पांति कुल सब मिटे, नांव घरीगे कुंण ॥ 1411

जाका गुरु भी अंधला, बेला खरा निरंध।

अंध अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़न्त ॥ 15॥

नां गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या दाव। दून्यूं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव ॥16॥

चौसठि दीवा जोड़ करि, चौदह चंदा मांहि। तिहिं घरि किसकौ चानिणर्णी, जिहि घरि गोबिंद नांहि ॥ 17॥

व्याख्या-कबीर कहते हैं कि मुझे गौरवमय गुरुदेव के दर्शन हुए, उन्होंने अपने ज्ञान- स्वरूप में मुझे इसी प्रकार एक कर लिया, अपने में मिला लिया, जैसे आटे में नमक मिल जाता है। अर्थात् गुरुदेव से इस प्रकार एक हो जाने पर मेरा स्वतन्त्र अस्तित्व न रह गया और मेरे स्वतन्त्र व्यक्तित्व के बोधक जाति-पाँति, कुल आदि सब नष्ट हो गये, अब तुम (संसार) मुझे गुरु पृथक् मानने के लिए किस नाम से पुकारोगे? भाव यह है कि अब मेरा गुरु के ज्ञानस्वरूप साथ ऐक्य स्थापित हो गया है।

यहाँ कबीरदास जी गुरु की योग्यता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि जिस शिष्य का गुरु भी अन्धा है, अज्ञानी है एवं शिष्य भी पूर्ण रूपेण अन्धा है, मूढ़ है, वे दोनों लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेंगे। अन्धा अन्धे को, अज्ञानी अज्ञानी को बिना देखे ही ठेल-डालकर मार्ग पर बढ़ायेगा तो परिणाम यह होगा कि दोनों ही पतन के कुएँ में गिर पड़ेंगे।

न तो ज्ञानी सद्गुरु ही मिला और न शिष्य वास्तविक परिभाषा में शिष्य अर्थात् ज्ञानाभिलाषी ही था। दोनों ज्ञान के नाम पर लालच का दांव खेलते रहे, एक-दूसरे को धोखे में डालने का प्रयास करते रहे और इस प्रकार दोनों मंझधार में ही डूब गये, तट-लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाये; जैसे कोई पत्थर की नाव का आश्रय लेकर सागर तरने का प्रयास करे तो बीच में ही डूब जाये।

यदि कोई अपने हृदय मन्दिर में चौंसठ कलाओं की ज्योति प्रकाशित कर ले और चन्द्रमा की चौदह कलाओं के समान प्रकाशपूर्ण चौदह विद्याओं का उज्जवल प्रकाश विकीर्ण कर ले अर्थात् पूर्ण ज्ञानी हो जाय, किन्तु यदि वह मन्दिर प्रभु भक्ति के अभाव में अन्धकारपूर्ण है तो वह किसी का अभीप्सित नहीं हो सकता। भाब यह है कि जीवन की सार्थकता भगवत्प्राप्ति में है।

विशेष-1. कबीर यहाँ ज्ञान और भक्ति के सम्बन्ध के पोषक हैं और भक्ति को ज्ञान

के ऊपर मानते हैं। होला है। 2. चन्द्रमा की चौदह कलाएँ कहने से कबीर पर इस्लामी संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित 3. अलंकार-उपमा अलंकार।

निस अंधियारी कारण, चौरासी लख चंद।

अगि आतुर ऊदै किया तऊ दिष्टि नहिं मंद ॥ 1811

भली भई जु गुरु मिल्या, नहीं तर होती हांगि।

दीपक दिष्टि पतंग ज्यूं, पड़ता पूरी जांणि ॥ 1911

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इर्वं पडंत।

कहै कबीर गुर ग्यान मैं, एक अब उबरंत ॥ 2011 सतगुर बपुरा क्या करें, जे सिषही माहै चुक।

भावै त्वं प्रमोबि ले, ज्यूं बसि बनाई फूक ॥ 2111

व्याख्या-अपनी अज्ञान को अन्यतमसा के कारण तुझे चौरासी लाख योनियों में भटक कर उनकी यातना सहनी पड़ी और तब बड़े कष्ट से मानव योनि में आया, मूर्ख फिर भी तेरी आँखें नहीं खुलती, तू फिर भी कुमार्ग की ओर ही बढ़ रहा है।

साधक कहता है कि अच्छा ही हुआ कि गुरुदेव मिल गये, अन्यथा बड़ी भारी हानि होती। जिस प्रकार शलभ दीप-शिखा को सर्वस्व जान उस पर जल मरता है उसी प्रकार मैं भी सांसारिक माया के आकर्षणों को सर्वस्व समझकर पतंगे कीड़े के समान जलकर नष्ट हो जाता।

माया रूपी दीपक है और मानव पतंगा है जो मंडरा मंडराकर, आकर्षित होकर, उम्र दीपशिखा पर गिरकर विनष्ट होता है। और कबीर कहते हैं कि इस माया-दीप के आकर्षण में कोई एकाध बिरले ही गुरु से ज्ञाम प्राप्त कर बच पाते हैं।

यदि शिष्य में हो त्रुटि है तो बेचारा ज्ञानी गुरु भी क्या कर सकता है। चाहे उसे किस्से प्रकार से समझा दो किन्तु सब यों ही क्षण में बाहर निकल जाता है। जैसी बंशी में फूंक क्षण भर रह कर बाहर निकल जाती है और वह बांसुरी फिर काष्ट अर्थात निर्जीव (शिष्य पक्ष में मूढ़) रह जाती है।

विशेष-1. कबीर पर वैष्णव प्रभाव देखा जा सकता है।

. दृष्टान्त अलंकार।

8. संकेत- 2 चेतन चौकी बैसि करि सतगुरु दीन्हाँ धीर।

निरभ होई निसंक भजि , केवल कहै कबीर ॥ 23 ॥

सतगुरु मिल्या त का भया, जे मन पादी भोल।

पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोण ॥ 24 11

बूड़े ने परि अबरे, गुरु की लहारी चर्मकि।

भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतारि पड़े फरकि ॥ 25 ॥

गुर गोविंद तो एक हैं, दूजा यहु आकार।

आपा मेट जीवत मरै, तौ पायें करतार ॥ 26 ॥

व्याख्या-कबीर कहते हैं कि सद्गुरु ने ज्ञान की चौकी पर बैठकर शिष्य को प्रबोष टंकर पैर्ष प्रदान कर कहा कि तुम निर्मल चित्त हो, सांसारिक त्रासों से भय रहित होकर केवल इंटवर का ही भजन करो।

जिन लोगों के चित्र भ्रम युक्त हैं, उन्हें यदि सद्गुरु मिल भी गये तो क्या लाभ होगा? वे ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। यदि वस्त्र को रंगने से पूर्व पुट देने में ही वह नष्ट हो जाय तो सुन्दर रंग देने गमर्थ मजीठ बिचारा क्या कर सकता है, फटे हुए वस्त्र को किस प्रकार सुन्दर रंग दे। त्रुटिपूर्ण शिष्य के साथ यही अवस्था गुरु की है।

हम तो इस भवसागर में डूबने को ही थे कि गुरु-कृपा की एक लहर ने हमें पार लगा दिया। उस गुरु कृपा के द्वारा ही हमने देखा कि जिस वेदशास्त्र आदि के बेड़े से हम संसार-सागर पार करना चाहते थे, वह तो जीर्ण-शीर्ण है, अतः हम उससे तत्क्षण कूद पड़े और प्रभु-भक्ति का सम्बल ग्रहण किया। भाव यह है कि केवल गुरु-कृपा से ही भवसागर पार किया जा सकता है।

गुरु और गोविन्ट (ब्रह्म) तो एक ही है, उनमें कोई अन्तर नहीं है। यह अपना मायाजनित शरीर ही इस भासित द्वैत का कारण है। यदि हम इस अहंत्व, 'अयं निजः परो वा' की भावना को समाप्त कर जीवन्मुक्त हो जायें तो प्रभु ब्रह्म-की प्राप्ति हो सकती है।

9. संकेत-

कबीर सतगुर नौ मिल्या, रही अधुरी सीष। स्वाँग जती का पहरि करि, घरि घरि, मांगै भीष ॥ 27 ॥ सतगुर सांचा सूरिवों, तातै लोहिं लुहार।

कसणो दे कंचन किया, ताई लिया ततसार ॥ 28॥

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर सास धीर।

निपजी मैं सांझी घणां, बाटै नहीं कबीर ॥ 3011

व्याख्या-कबीरदास जी कहते हैं कि यदि शिष्य को सद्गुरु की प्राप्त नहीं होती उसकी शिक्षा अपूर्ण रह जाती है। तपस्वी वेश धारण करके द्वार-द्वार पर भिक्षा मांगने वाले सद्गुरु नहीं

हो सकते। सद्गुरु सच्चा शूरवीर है जो शिष्य को अपने प्रयत्नों से उसी प्रकार योग्य बना देता है जिस प्रकार लुहार तप्त लोहे को पीट-पीट कर सुघड़ और सुड़ौल आकार देता है। कबीर कहते

हैं कि सद्गुरु शिष्य को परीक्षा अग्नि में तपा-तपा कर स्वर्णकार की भाँति उसे इस योग्य बना देते हैं कि वह शुद्ध कंचन की कसौटी पर खरा उतर कर ब्रह्म (तत्व) को प्राप्त कर ले। सद्गुरु के साहस और धैर्य ने आत्मा को ब्रह्म से मिला दिया। इस महामिलन से जो सुख

उत्पन्न हुआ उसका भागीदार बनने के लिए बहुत से व्यक्ति व्याकुल है, किन्तु कबीर उसे बाँटने के लिए प्रस्तुत नहीं, क्योंकि वह परमतत्व का आन्नद दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः उस आन्नद को प्राप्त करने के लिए स्वयं की आत्मा का ब्रह्म से साक्षात्कार आवश्यक है।

10. संकेत- चौपड़ि माड़ि चौहटै, अरघ उरध बाजार।

कहै कबीरा राम जन, खेलों संत विचार ॥ 31 ॥

पासा पकड़ या प्रेम का, सारी किया शरीर।

सतगुर दाब बताइया, खैले दास कबीर ॥ 32 ॥

कबीर बादल प्रेम का, हम पर बरष्या आइ।

अंतरि भीगी आत्मा, हरी भई बनराइ ॥ 34 ॥

व्याख्या-शरीर के चौराहे पर चौपड़ बिछी है। उसके नीचे एवं ऊपर दोनों और चक्रो का बाजार लगा हुआ है। (योगियों ने शरीर के अन्तर्गत षट्चक्रों की स्थिति मानी हैं जो मूलाधार से प्रारम्भ होकर शीर्ष में ब्रह्मरन्ध्र तक बिछे हुए हैं। इन षट्चक्रों का भेदन करके ही कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है जहाँ अमृत निस्सृत होता है)। कबीरदास जी कहते हैं कि प्रभु-भक्त- सन्त गण इस खेल की विचारपूर्वक खेलते हैं अर्थात् योगसाधना में प्रवृत्त होते हैं।

प्रेम के पांसे से शरीर रूपी चौपड़ भक्त कबीर ने खेल प्रारम्भ कर दिया है और सद्गुरु दाव बनाते जा रहे हैं। भाव यह है कि साधक ने प्रेम का आश्रय लेकर गुरु के निर्देशन में योगसाधना प्रारम्भ कर दी है।

प्रभु-प्रेम का बादल बरसा, जिससे अन्तरात्मा उस प्रुभ-प्रेम से भीग गई और उसी के आन्नद में शरीर रूपी वन-प्रदेश में भी हरियाली, उत्फुल्लता छा गई।

बिशेष असंगति अलंकार।

2. सुमरिन कौ अंग

अंग परिचय-इस अंग में कबीर ने नाम-स्मरण की महिमा बताते हुए कहा है कि वास नाम स्मरण ही एक ऐसा आधार है, जिसके द्वारा मनुष्य मुक्ति लाभ कर सकता है। ही संसार में सबसे श्रेष्ठ और सबसे ग्राह्य वस्तु है। संसार अनेक प्रकार है, राम का स्मरण ही इसका एकमात्र आधार है। 1 के राम का नाम दुःखों से से भरा हुआ

. संकेत-

कबीर कहता जात हूँ, सुचता है सब कोई। राम कहें भला होड़ गा नहिं तर भला न होई ॥ 1 ॥

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस। राम नांव ततसार है, सब काहू उपदेस ॥ 2 ॥ तत तिलक तिहुँ लोक मैं राम नांव निज सार। जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ॥ 3 ॥ भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार। मनसा बाचा कर्मना, कबीर सुमिरण सार ॥ 4 ॥ कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।

आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखों काल ॥ 5 ॥ प्रसंग-प्रस्तुत पद अंश महाकवि कबीरदास द्वारा रचित कबीर ग्रन्थावली के साखी भाग सुमिरन कौ अंग" से लिया गया है।

के " व्याख्या-कबीरदास जी कहते हैं कि मैं यह निरन्तर प्रस्थापित करता आ रहा हूँ कि राम नाम जपने से ही कल्याण होगा अन्यथा आचरण में कल्याण सिद्ध नहीं होगा; इस बात को सुनते तो सब है, किन्तु आचरण नहीं करते।

कबीरदास जी कहते हैं कि मैं यह कह चुका हूँ कि राम नाम (भगवान नाम) ही समस्त तत्वों का सार है, यही सबका उपदेश है। इसी तथ्य का कथन ब्रह्म एवं शिव ने किया है।

सार तत्व-राम-नाम तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ है। उसी को दास कबीर ने अपने मस्तक

पर धारण किया है अर्थात् उसे शिरसा स्वीकार किया है। भाव यह है कि कबीर चन्दनादि का तिलक धारण करना नहीं चाहते, अपितु राम नाम ही उनके लिए तिलक है, सर्वोपरि तत्व है।

प्रभु भक्ति और भजन जो कुछ भी है वह उनका नाम स्मरण ही है, इसके लिए जो अन्य साधन बताते गये हैं वे अमित दुःखों से परिपूर्ण हैं। कबीर कहते हैं कि मन, वाणी और कर्म ग सर्वात्मना प्रभु नाम स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ है।

कबीर कहते हैं कि एकमात्र प्रभु नाम स्मरण ही समस्त तत्वों का सार है और इसके अतिरिक्त हरि भक्ति के अन्य सांसारिक साधन जाल है जिनमें से निकलने का प्रयत्न करने पर मनुष्य और फँस जाता है। मैंने सांसारिक साधनों का आदि और अवसान अधवा अर्थ से इति तक अवलोकन करके देखा लिया, वे काल स्वरूप विनाश कारक है।

विशेष अलंकार-रूपक।

पंच संगी पिब पिव करै, छठा जु सुमिरे मन।

2. संकेत-

आई सूती कबीर की, पाया राम रतन ॥ 7 ॥

मेरा मन सुमिरै राम कू, मेरा मन रामहिं आहि।

अब मन रामहिं है रह्या, सीस नवाबौं काहि ॥ 8 ॥

तूं तूं करता तूं भया, मुझ मैं रही न हूँ। बारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं ॥ १ ॥

व्याख्या-कबीरदास की पाँचों ज्ञानेन्द्रियों एवं छठे मन ने प्रभु के प्रिय नाम की रट (चातक के समान, क्योकि 'पीव' शब्द है) लगा रखो है और ऐसी स्थिति में कबीर अपनी समाधि अवस्था

में पहुंच गये हैं. जहाँ उन्हें राम के अतिरिक्त और कोई नहीं सूझता। अतः वे राम रूपी रत्न प्राप्त कर लिया है। कहते हैं कि मैंने

कवीर कहते हैं कि राम नाम का स्मरण करते-करते मेरा मन स्वयं ही राम में ही रम गया है और उससे भी आगे अब वह स्वयं राममय हो गया है. जब स्वयं मन ही राममय हो गया तो सीस किसे नवाया जाय अर्थात् भक्त और भगवान ही नाम स्मरण से एक हो गये हैं। सहे प्रभु मैं तेरा नाम स्मरण करते-करते तेरे स्वरूप में ही विलीन हो गया, मुझ में किंचित श्री अहेत्व शेष नहीं रह गया। अर्थात मुझे अपने पृथक् अस्तित्व का ज्ञान ही न रहा अविचित को ऊपर बार-बार बलिहारी जाता है क्योंकि जिधर देखता हूँ, उधर ही दृष्टगत । अब मैं प्र विशेष- 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की भावना से साम्य है।

3 . संकेत- कबीर सूता क्या करे, जागि न जपै मुरारि। एक दिनों भी सोबणां, लम्बे पांव पसारि ॥12॥ कबीर सूता क्या करै, उठि न रोबै दुक्ख जाका बासा गोर मैं, सो क्यूं सोवै सुक्ख ॥ 13॥ कबीर सूता क्या करै, सूतां होड़ अकाज।

ब्रह्मा का आसरम खिस्या, सुणत काल की गाज ॥ 15॥ व्याख्या-कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य तू अज्ञान-निद्रा में पड़ा

जागकर-ज्ञानयुक्त होकर, प्रभु का भजन क्यों नहीं करता। यह विश्राम तो क्या कर रहा है, फिर भी हो सकता है, क्योंकि अन्ततः एक न एक दिन अवश्य ही चिरनिद्रा में लीन होना है। अर्थात् करना है। मृत्यु को प्राप्त

कबीर कहते हैं- हे मनुष्य तू अज्ञानावस्था में पड़ा हुआ क्या कर रहा है, अपने उद्धार का प्रयत्न क्यों नहीं करता ? जिससे जागने पर (दूसरा जन्म लेने घर) तुझे अपने दुःखों के लिए होना न पड़े। भला जिसका मृत्यु के मुख में सर्वथा निवास रहता है उस मनुष्य को सुख की निद्रा कैसे आ सकती है-अतः तू प्रभु-भजन कर, ज्ञान सम्पन्न हो अपना जन्म सुधार ले।

कबार कहते हैं कि हे मनुष्य तू सोता हुआ, अज्ञानवस्था में क्या कर रहा है? इस अज्ञान से तो तेरी हानि ही हो रही है, क्योंकि आयु अल्प है और कालचक्र किसी को भी नहीं छोड़ता, उसकी गति के भय से ब्रह्मा का आसन भी खिसक गया है- मनुष्यों की तो बात ही क्या। 4. संकेत- कबीर प्रेम न चषिया, चषि न लोया साव

सूनें घर का पाहुजां, ज्यूं आया त्यूं जाव ॥ 1811

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाऊँ।

अनेक जुगा जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाऊँ ॥ 2011

जिहि हरि जैसा जाणियां, तिन के तैसा लाभ।

ओसों प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ ॥ 21 ॥

राम पियारा छांड़ि करि, करै आन का जाप।

बेस्वाँ केरा पूत ज्यूं कहें कौन हूँ बाप ॥ 22 ॥

कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाड़ ॥ जिहि मुखि राम न ऊचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ ॥ 23 11

व्याख्या-कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तूनें प्रेम-भक्ति का अनुभव किया ही नहीं
और उसके अनुभव से वंचित होने पर तू उसका आनन्द भी नहीं उठा सका। इस प्रकार तूने अपना जीवन व्यर्थ ही इस प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार सूने गृह में अतिथि अनादृत ही लौट जाता है-उसे कुछ प्राप्त नहीं होता है।
यदि तनिक भी प्रभु का स्मरण किया जाय तो मनुष्य के करोड़ो कुकर्म-भर
में विनष्ट हो जाते हैं। यदि कोई अनेक गुणों से पुण्य करके बिना राम नाम के अपना उद्या तो असम्भव है क्योंकि नाम के आश्रय बिना शान्ति कहीं भी नहीं मिलती। जिस रूप में जाना है, उन्हें वैसे ही प्राप्ति होती
जिन्होंने प्रभु को है। केवल मात्र चाटने से तुषित की तृषा शान्त नहीं होगी, उसका शमन तो जल में पैठकर ही सम्भव है। चाटने कि हरिभक्ति के अन्य साधन ओस सदृश है जिसमें जल के कुछ ही कण है। मनुष पूर्ण परितृप्ति हरिशरण के अगाध जल के आश्रय से ही प्राप्त हो सकती है। जो मनुष्य परम प्रिय राम के अतिरिक्त अन्य अनेक देवताओं का भजन करता है
स्थिति वेश्यापुत्र के समान है जो किसी एक को अपना पिता (पालक) नहीं कह सकता। कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तू स्वयं भी राम नाम का उच्चारण कर और अन्यों है। राम नाम कहलाने का प्रयत्न कर। यदि उनमें से कुछ तेरे निर्देश करने पर भी राम नाम का उच्छ न करें तो उनसे पुनः पुनः 'राम' कहलाने का आग्रह कर। इससे वह राम नाम स्मरण में हो सकेगा।
विशेष-यहाँ कबीर ने दिखाया है कि आत्मा का सनातन सम्बन्ध केवल मात्र बद ही है, उसे अन्य देवताओं की पूजा में प्रवृत्त करना व्यभिचार है। इस प्रकार वे बहुदेववार पह विरोधी है।
लूटि सकै तर्ती लूटियौ, राम नाम भण्डार।
5. संकेत-
काल कंठ हैं गहेगा, सँधै दसूं दुवार ॥ 2611 गुण गायै गुण नाम कटै, रटै न राम बियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूं पावै दुलभ जोग ॥ 28 11
कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरि नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरां त नाहीं ठाम ॥ 29 ॥
व्याख्या-हे मनुष्य ! यदि तू राम नाम रूपी बहुमूल्य रत्न को लूटना चाहता है तो। ले, अन्यथा फिर यह अवसर प्राप्त नहीं होगा। फिर तो मृत्यु कण्ठ पकड़ कर तेरे दसों द्वाले बन्द कर तुझे चेतनाविहीन, जीवनरहित कर देगी।
प्रभु की गुणावली का गान करने से यह संसार-बंधन समाप्त हो जाता है इस बात सुनकर तू प्रभु-वियोग में राम नाम क्यों नहीं रटता। यदि तू दिन-रात प्रभु के नाम की चर्चा। न करेगा तो उनके दर्शनों का अप्राप्य संयोग कैसे प्राप्त कर सकेगा।
कबीर कहते हैं कि हरिनाम स्मरण अर्थात् भक्ति-साधना में कठिनाइयाँ भारी हैं। यह। की उसी कुशलता के समान है जो मृत्यु की शूली पर चढ़कर अपने आंगिक कौशल दिखाता यदि वह वहाँ से गिर जाये तो उसके बचने का कोई उपाय नहीं। इसी प्रकार भक्ति-साधना से एप भक्त का भी कोई रक्षक नहीं, क्योंकि उसके लोक एवं परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।
विशेष-शरीर के दस द्वार हैं। दो आँख, दो नासिका, विवर, दो कर्ण, एक मुख ब्रह्मरन्ध्र, गुदा मार्ग और मूत्र मार्ग।
कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरे, छीलर देखि अनंत ॥ 30 ॥
कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ। फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधै सधि मिलाइ ॥ 31 ॥
कबीर चित चमंकिया, चहूँ दिसि लागी लाइ।
हरि सुमिरण हायूं घड़ा बेगे लेहु बुझाइ ॥ 32 ॥
व्याख्या-कबीर कहते हैं कि जिह्वा का सहयोग प्राप्त कर राम नाम का स्मरण कर भी के अन्य साधन रूपी पोखरों को देखकर लोभवश हरि रूपी सागर को विस्मृत मत करो।
कर कहते हैं कि तू अपने मुख से राम के अमृतमय गुणों का गान कर उन्हें प्रसन्न कर प्रकार उनसे अपना मतन मिला जिस प्रकार फूटे नग को नग से जोड पर मिला कर जाता है।

कबीर कहते है कि हृदयरूपी चकमक पत्थर के कारण चारों ओर माया के आकर्षणो लग गई है। इस अग्नि को बझाने के लिये हरि स्मरण-रूपी घट हमारे साथ विद्यमान ससे इस वासना की अग्नि को शीघ्र बुझा डालो। भाव यह है कि संसार जाल से मुक्ति मात्र उपाय हरि-स्मरण ही है।

3. विरह कौ अंग

बन गई है। प्रेम की परिपूर्णता एवं परिपक्वता के लिए विरह आवश्यक माना गया है। द्वारा ही आत्मा-परमात्मा की ओर और भी दृढ़ता के साथ उन्मुख होती है। कबीर कहते उनकी आग्या क्रौंच पक्षी की भांति प्रियतम से मिलने के लिए चीत्कार कर रही है। कहने हा बिरह तो केवल कुछ ही समय का होता है। क्योंकि प्रातः काल होते ही वे दोन। कोच नामित जाते हैं। किन्तु परमात्मा का विरह तो अनंत है। जो जन राम से बिछुड़ जाते हैं, वे कभी भी प्राप्त नहीं कर पाते। नीचे काव्य पंक्तियों में इन्हीं बातों का उल्लेख मिलाते हैं, वे संकेत

वासुरि सुख, नाँ रंगि सुख, नो सुख सुपिनै माहिं। कबीर बिछुट्या राम सूं, नो सुख धूप न छाँह ॥ 4 ।11

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।

एक सबद कहि पीव का, कबर मिलेंगे आइ ॥ 5 ॥

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।

जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं बिआम ॥ 6 ॥

बिरहिन ऊठै भी, पड़े दरसन कारनि राम।

मूवां पीछे देहुगे, सो-दरसन किहिं काम ॥ 7

व्याख्या-कबीर जी कहते हैं कि रामवियोगी को न दिन में और न रात में सुख है और स्वप्न में उसे प्रिय की बियोग-व्यथा ही व्यथित किये रहती है। धूप या छांह-कहीं भी उसे मुख प्राप्त नहीं होता।

विरहिणी मार्ग में प्रिय की प्रतीक्षा में खड़ी आते-जाते पथिक से जिस प्रकार उत्कण्ठा, सहित प्रिय आगमन का समाचार पूछती है उसी प्रकार साधक की ब्रह्म वियुक्त आत्मा गुरु से है। प्रिय (ब्रह्म की) चर्चा सुनती हुई यह जानना चाहती है कि प्रभु से कब भेट होगी।

हे राम। मैं (विरहिणी आत्मा) तुम्हारी प्रतीक्षा बहुत समय से कर रही हूँ। मेरे प्राण तुम्हारे दर्शन के लिए तृषित हैं और मन बिना दर्शन व्याकुल हैं।

हे राम ! यदि आपके दर्शनों की उत्सुकता में विरहिणी उठती भी है तो क्षीणकाय होने के कारण गिर-गिर पड़ती है, अर्थात् आपके विरह में वह अत्यन्त कृशकाय हो गई है उससे मरणोपरान्त यदि आपने रोग निवारक सुदर्शन चूर्ण-अपना सौन्दर्यमय स्वरूप दर्शन दिया तो वह किस प्रयोजन का ?

. संकेत- मूवां पीछें जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।

पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कोर्णं काम ॥ 8 ॥

अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ कहिाँ।

कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पास गयां ॥ 911

आइ न सकौ तुज्झ पै, सकूं न तुझे बुलाइ।

जियरा बाँही लेहुगे विरह तपाइ तपाइ ॥10॥

यहु तन जालौं मसि कंस ज्यू धूवां जाइ सरग्गि। मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि ॥ 11 ॥

व्याख्या- कबीर जी कहते हैं कि हे प्रभु! यदि आपका दर्शन मृत्यु के पश्चात् है तो वह किस प्रयोजन का ? वह तो उसी प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार कोई पारस पत्थर प्राप्ति के लिए लोहे को प्रत्येक पत्थर से घिस कर समाप्त कर दे और तब उसे पारस पत्था प्राप्ति हो।

विरहिणी आत्मा किसी दूत से कहती है कि मेरी प्रिय मिलन में असफलता की आश नष्ट नहीं होती। अतः तुम प्रभु से कहना कि या तो वे स्वयं भागकर शीघ्र मेरे पास फिर मुझे ही उनके पास आना पड़ेगा। आ जायें, अपा

कबीर की वियोगिनी आत्मा कहती है कि मैं तेरे पास भी नहीं आ सकती क्योकि मैं इस समर्थ नहीं हूँ। (भाव यह है कि मैं अभी माया से संलिप्त हूँ) और तुझे अपने पास नहीं कुर सकती क्योंकि मैं अभी सर्वात्म-समर्पण नहीं कर सकी, जो तुझे आकृष्ट कर मेरे पास तक आये। अतः यही दिखाई देता है कि तुम हमारे प्राणों को इसी प्रकार विरह से तपाते-तपाते समार कर दोगे।

बिरह की इस असहनीय अवस्था में यह इच्छा होती है कि मैं अपना यह शरीर भस्म क्षार कर दूँ, जिससे मेरी अस्थियों का जो धुआँ आकाश में फैलेगा, तो सम्भव है, वे दयानि
राम दयार्द्र होकर अपनी कृपा-दृष्टि के बारि से उस अग्नि को बुझावें। 3. संकेत-
कबीर पीर पिराबनीं, पंजर पीड़ न जाइ।
एक ज पीड़ परीति की, रही कलेजा छाइ ॥ 1311
कर कमाण सर संधि करि खैचि जु मार्या मांहि।
भीतरि भिद्या सुमार है, जीवै कि जीवैं नांहि ॥ 1511
जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं ॥
बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोड़। 17 ॥
राम बियोगी ना जिव, जिवै तो बौरा होई ॥ 18॥ व्याख्या-कबीर कहते हैं कि पीड़ा बड़ी
वेदनापूर्ण होती है, शरीर की पीड़ा ही इतन कसकमय होती है कि उपचार करने पर भी नहीं जाती, फिर प्रेम की जो पीड़ा है वह तो सर्वध ही उपचार से बाहर है, वही असह्य पीड़ा मेरे हृदय में समा गई है।
भगवान् रूपी प्रियतम ने हाथ में धनुष धारण कर खींच कर ऐसा प्रेमबाण चलाया है कि वह हृदय के आरपार हो गया। हृदय प्रेममय ही हो गया। उसके प्रेम-तीर की यह चोट इतन गहरी लगी है कि जीवन जन्म और मरण के मध्य झूल रहा है, अर्थात् प्रभु प्रेम उसे अपनी ओ
खीचता है और सांसारिक आकर्षण अपनी ओर। हे गुरुदेव ! जिस प्रेम बाण से आपने मुझ पर चोट की, वह मेरे मन में बस गयी है। वा
बाण स्वर-बाणी का अर्थात् प्रेमोपदेश का था। उसी (वाणी के) बाण को मेरे आज भी मार क्योंकि उसके बिना मुझे शान्ति नहीं।
विशेष-कैसा विरोधाभास है जो बाण शरीर को बींधता है, वहीं प्रिय लग रहा है, या कुबीर जैसे प्रेमी के लिए ही सम्भव है।
विरह रूपी सर्प शरीर की बांबी में घुसा बैठा है, उसे कोई भी मंत्र (साधक) बाहर निकालो में समर्थ नहीं हो सकता। प्रभु का वियोगी तो जीवित ही नहीं रह सकता, वह जीवन-मुक्त हो जाता है और यदि जीवित रहता है तो सांसारिक कर्त्तव्यों आदि से पूर्ण असम्पृक्त हो जाता है जिस लोग पागल कहने लगते हैं।
विशेष प्रथम चरण में सर्प को पकडने की क्रिया से विरह की तुलना है. बांबी मे कोबल से निकाल कर वशीकृत किया जाता है।
. रूपक अलंकार। 2
बिरह-भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव । ज्यू भावै व्यूं खाव साधू अंग न मोड़ही, ज्यूं भा
सब रंग तंतर बाबतन, विरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुणि सकै, कै साई के चित ॥ 201। इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखी पीव ॥ 23॥
सोइ आंसू सजगां, सोई लोक बिड़ांहि।
जो लोइण लांही चुवै, तो जार्णी हेत हियांहि ॥ 26 ॥
कबीर हसणां दूरि करि, कति रोषण सौं चित बिन रोयां क्यूं पाइए, प्रेम बिबारा मित्त ॥ 27 ॥
व्याख्या-विरह रूपी सर्प ने शरीर में प्रवेश कर हृदय में घाव कर लिया है, किन्तु इस सापुजन विचलित नहीं होते। जैसे उसकी इच्छा होती है, उस रूप में उसे अपने को देते हैं। भाव यह है कि साधक बिरह की कठोर यातनाओं से पथ-विचलित नहले अपने हरीर रूपी तन्त्री पर शीराओं रूपी तांतों को विरह नित्य बजाता है। बिरह वेदना से शिराये झंकृत रहती हैं। इससे निस्सृत संगीत को कोई तीसरा नहीं सुन सकता। या तो उसे नाम हो सुन सकते हैं और या मेरा हृदय ही प्रेम-क्षेत्र के अनुभव ऐसे हैं जिन्हें मुक्त तो देशन सकते हैं। मैं अपने शरीर रूपी दीपक में प्राणों की वर्तिका डाल कर और उसका लोहू-रूपी तैल यह से अभिषिचन कर न जाने कब से प्रिय आगमन का मार्ग देख रही हूँ, न जाने कब उनका निएर सकूँगी। केवल मात्र अश्रु देखकर सच्चे प्रेम की पहचान नहीं की जा सकती, क्योंकि आँसू तो बस और दुर्जन दोनों के समान रूप से गिरते हैं, किन्तु जिन नेत्रों से रक्त के आंसू गिरे, बही प्रेन की अवस्थिति जानो। संकेत

जी रोऊँ तौ बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ।
मनही माँहि बिसूरणां, ज्यूं घुण काठहि खाइ ॥ 28॥ हँसि हँसि कंत न पाइए, जिन पाया तिन रोड़।
जे हाँसेंही हरि मिलै, तौं नहीं दुहागनि कोइ ॥ 29 11
हाँसी खेलौं हरि मिलें, तौ कोण सहै घरसान।
काम क्रोध त्रिष्णां तजै, ताहि मिलै भगवान ॥ 30 ॥ पूत पियारो पिता कौ, गौहनि लागा बाइ।
लोभ मिठाई हाथी दे, आपण गया भुलाइ ॥ 31 ॥
व्याख्या-यदि मैं विरह में रोता हूँ तो मेरी शक्ति क्षीण होती है, हँसता हूँ तो राम को नहीं है, क्योकि बिना मिलन उल्लास क्यों और कैसे ? अब मेरी आत्मा मन ही मन क्रंदन कर मुझे वैसी ही क्षीण करती रहती है जैसे घुन भीतर ही भीतर काष्ठ को काट कर खोखला बना उहै। भाव यह है कि विरह भीतर ही भीतर सालता रहता है।
हँस-हँस कर, सांसारिक आनन्द उड़ाते हुए, किसी ने प्रभु को नहीं पाया है। जिसने भी इसकी प्राप्ति की है उसने उनके विरह की मर्मानुभूति की है। जो इस प्रकार भोगविलास द्वारा गा. स्वामी की, सुहागिन बन जायें, तो कोई अभागिन रहे ही नहीं।
यदि प्रभु सुख-वैभव की विविध क्रीड़ाओं में प्राप्त हो जायें तो तलवार की धार के सशिक्षा यदि प्रभु सरका अनुभव करने के लिए कौन प्रस्तुत होगा। जो काम, क्रोध एवं तृष्णा परित्याग कर देगा उसे ही भगवत् प्राप्ति हो सकती है।
त्या रूपी पुत्र प्रभु रूपी पिता के प्रेम के कारण उसके साथ के लिए दौड़ पड़ा, वह पिता लोभ की मिठाई पुत्र के हाथ में देकर स्वयं को छिया गया। भाव यह है कि आत्मा तो स्वाभाविक प्रेम के कारण परमात्मा से मिलना चाहती है। लोभ का व्यवधान डालकर छिप जाते हैं-साधक की दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। डारि खांड पटकि करि, अंतरि रोस उपाड़।
रोबत रोबत मिलि गया, पिता पियारे जाइ ॥ 32 ॥
नैद्यां अंतरि आचरू, निस दिन निर ताँहि ।
कब हरि दरसन देहुने,तादिन आव मोहि ॥ 33 11
कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ।
बिरहणि पिव पावै नहीं, जियरा तलयै माइ ॥ 34॥ बिरहणि धी ती क्यूं रहीं, जली न पीव की नालि।
रहु रहु मुगधा गहेलड़ी, प्रेम न लाजू मारि ॥ 36 11 व्याख्या-किन्तु इस लोभ की मिठाई की सारहीनता जब आत्मा रूपी पुत्र ने देखें उसने उसे उठा कर फेंक दिया, लोभ का परित्याग कर दिया और उसे अपने कृत्य पर अ हुआ कि यह तूने क्या किया ? इस तुच्छ मिठाई के कारण पिता को छोड़ दिया। इस विके वह पुत्र (आत्मा) वेदना का अनुभव कर रोने लगा और रोता-रोता अपने प्रिय पिता (प्रभु) जा पहुंचा।
हे प्रभु । न जाने वह दिवस कब आयेगा जब मैं आपको नेत्रों के भीतर काजल के सा आंजकर अहर्निश आपका दर्शन लाभ प्राप्त करूँगी। न जाने प्रभु आप कब दर्शन देकर मेरे। इस सौभाग्यशाली दिवस को बुलाओगे।
भाव यह है कि मुझे किस दिन यह सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा।
कबीर कहते हैं कि विरहिणी आत्मा दूसरी आत्मा को सम्बोधित कर कहती है वि सखि प्रिय की प्रतीक्षा में समस्त दिवस बीत गया और रात्रि भी यूं ही रीती बीती जा रही है। विशी को प्रिय की प्राप्ति नहीं होती इससे उसका हृदय वेदना में तड़पता है।
यदि तू वास्तविक अर्थों में वियोगिनी थी तो जीवित क्यों रह गयी ? प्रिय के साथ वि
में ही क्यों न भस्म हो गई ? अपनी लज्जा के कारण प्रिय-मिलन में असफलता प्राप्त करा वाली मुग्धा ? तू अधिक बात मत बना बस कर, क्यों व्यर्थ प्रेम को भी लज्जित करती है।
कबीर तन मन लौं जल्या, बिरह अगनि सूं लागि।
मृतक पीड़ न जांगई, जांणौगी यहु आगि ॥ 38 ॥
बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाऊँ।
मो देख्यां जल हरि जलै, संतौ कहां बुझाऊँ ॥ 3911
परबति परबति मैं फिर्या, नैन गँबाये रोड़।

सो बूटी पाँऊ नहीं, जातें जीबनि होइ ॥ 40॥

फाड़ि पुटोला धज करौं, कामड़ली पहिराउं।

जिहि जिहि भेषां हरि मिलै, सोइ सोइ भेष कराउं ॥ 41 ॥ कबीर कहते है, विरह-अग्नि से मेरा शरीर और हृदय इस प्रकार भस्म हो गये कि चैतन्य रहित है। जिस प्रकार मृतक पीड़ा से सर्वथा असम्पृक्त रहता है, उसी प्रकार विशी भी। यदि कुछ वेदना की जलन का अनुभव और ज्ञान होगा तो इस विरहाग्नि को ही होगा।

में यदि मैं गुरु रूपी के पास जाती है तो मनको उस प्रेमाग्नि में जलता देखकर गरु भी और अधिक उस आग लगे। संतजन में इस विचित्र स्थिति का क्या वर्णन करूं।

भाव यह है कि शिष्य का यह अपार प्रेम देखकर गुरु में भी प्रेम उद्दीप्त हो उठता है। मैंने पर्वत पर्वत छान डाला और नेत्र प्रिय वियोग में रोते-रोते नष्ट कर बैठा, किन्तु में गी भी वह संजीवनी बूटी अर्थात् ब्रह्मा-स्वामी, नहीं प्राप्त कर सका जिससे जीवन सफल हो

बदि प्रिय को मेरा यह सौन्दर्यपूर्ण वेश रुचिकर नहीं तो अपने रेशमी वस्त्रों को फाड़कर जाँ कर साधुओं के समान कम्बल धारण कर लूँ। जिस-जिस वेश (आचरण) के द्वारा -विलन की सम्भावना है, में वही वेश धारण कर सकती हूँ।

भेला पाया स्यम सौं, भौसागर के मांहि। जै छांडौ तौ डूबिहाँ; गहाँ त डसिये बांह ॥ 43॥

रणा दूर बिछोहिया, रहु रे संषम झूरि। देवलि देवलि घाहड़ी, देसी कँगे सूरि ॥ 44॥

सुखिया सब संसार है, खायै अरु सौवे। दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ॥ 45 11

व्याख्या-इस भवसागर के मध्य डूबते हुए को तेरने के लिए बड़े परिश्रम से प्रेम का बेड़ा मिला है किन्तु इस पर विरह रूपी सर्प बैठा हुआ है। जो इसे छोड़ता हूँ तो ड्बने का भय

है और यदि इसका आश्रय लेता हूँ तो आशंका है कि यह विर जगम मुझे डस न ले। भाव यह है कि संसार से मुक्त होने के लिए प्रेम एकमात्र साधन है, किन्तु इसके साथ बिरह अवश्य भोगना पड़ता है।

चक्रवाक पक्ष में- हे चक्रवाक ! रात्रि ने तेरे प्रिय को तुझसे वियुक्त कर दिया है, अब तू बिलख-बिलख कर उच्च वाणी में मन्दिर-मन्दिर अथवा घर-घर पर उसके लिए पुकार लगा रहा है, किन्तु उससे मिलन सूर्य ही करायेगा।

मनुष्य पक्ष में- अज्ञान रात्रि में मुझसे प्रभु वियुक्त हो गये हैं। अब तू चक्रवाक की भांति मन्दिर-मन्दिर में उसके लिए पुकार लगा रहा है, किन्तु उनकी प्राप्ति ज्ञान-सूर्य उदय होने पर हो होगी।

कबीर कहते हैं कि समस्त संसार सुखी है जो भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर अज्ञान रात्रि में सोता है। दुःखी तो केवल एक कबीर है जो ज्ञान प्राप्ति के लिए जग भी रहा है और प्रभु-मिलन के लिए रो भी रहा है।

विशेष-अन्योक्ति से पुष्ट सांगरूपक अलंकार।

4. ग्यान बिरह कौ अंग

अंग परिचय-इस अंग में बताया गया है कि निर्गुण सन्तों में ज्ञान का महत्व किस प्रकार है। कबीर की मान्यता है कि जब तक जीव अज्ञान के अंधकार में पड़ा रहेगा, तब तक वह प्रभु से साक्षात्कार नहीं कर सकता। उनके अनुसार मन के विकार तभी दूर हो सकते हैं, जब ज्ञान और बिरह का समुचित समन्वय हो। नीचे दिये गये दोहों में इसी बात का उल्लेख किया गया है-

दीपक पावक आंणियां, तेल भी आंण्या संग।

तीन्यूं मिलि करि जोड्या, (तब) उड़ि उड़ि पड़े पतंग ॥ 1 ॥

मार्या है जो मरेगा, बिन सर थोथी भालि।

पड़ू या पुकारै ब्रिछ तरि, आज मरें कै काल्हि ॥ 211

देने हिरदा भीतरि दौं बलै, धूां न प्रगट होइ जाकै लागी सौ लख, कै जिहि लाई सोड़ ॥ 3 ॥

प्रसंग-उक्त दोहे के अंश कविवर कबीरदास द्वारा रचित ग्रन्थावली के साखी बिरह अंग' लिये गये हैं।

कसे गये हैपी दीपक में ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित कर तथा उसमें स्नेह (तेल डालकर प्रदीप्त किया। इस प्रकार जब तीनों आत्मा, ज्ञान एवं स्नेह मिलकर एकत्रित हो प्रह हुए तब उसकी अग्नि शिक्षा में विषय वासना रूपी पतंगे गिर-गिरकर नष्ट होने लगे।

जो मारा गया है वह तो बिना फलक के छंछे भाले से ही गर सकता है। भाव यह है। मरण के लिए हिस्सापूर्ण राखों की आवश्यकता नहीं, अपितु जीवन्मुक्त होने कीपर प्रेम बाण ही पर्याप्त हसायला काम के लगते ही वह बेदनाकुल होकर संसार-वृक्ष के नीचे पड़ा का रहा है, पीड़ा का अनुभव कर इस प्रतीक्षा में है कि वह आज जीवन्मुक्त होगा या कल। अ यह संसार वृक्ष के नीचे पड़ा वेदनाकुल है आज या कल में ही अर्थात् शीघ्र ही उसे प्रिय की श हो जायेगी।

हृदय के भीतर प्रेम की दावाग्नि धधक रही है किन्तु उसका धुआँ प्रकट नहीं होता, तो भीतर ही भीतर जलती रहती है। इस अग्नि का अनुभव तो दो ही कर सकते हैं, या तो भ जिसके हृदय में अग्नि धधकती है और या फिर वह जो इस अग्नि को लगाने वाला है। शेष सम

इस अग्नि का धुआँ अर्थात् कुछ भी चिह्न नहीं देख पाता। 2. संकेत- झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।

जोगी था सो रमि गया, आसणि रही विभूति ॥ 4 ॥

अगनि जु लागी नीर मैं, कंदू जलिया झारी।

उतर दक्षिण के पंडिता, रहे विचारि बिचारि ॥ 5 ॥

दाँ लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ।

दाघी देह न पालवै, सतगुर गया लगाय ॥ 6 ॥

गुर दाबा चेला जल्या, बिरहा लागी आगि।

तिणका बपुड़ा ऊवर्या, गलि पूरै कै लागि ॥ 711

व्याख्या-योगाग्नि प्रज्वलित होने पर शरीर की झोली तो जलकर भस्म हो गई और खोप रूपी खप्पर टूट-फूट गया। योगी की आत्मा तो परम तत्व से मिल गई, उसके समाधि स्थान तो केवल शरीर की राख ही अवशिष्ट रह पाई।

भान यह है कि आत्मा के महामिलन में योगी की बेशादि बाह्य उपकरणों की आवश्यक नहीं होती।

माया रूपी जाल में ज्ञानाग्नि लग जाने से विषय बाससा का पंख जल कर समाप्त हो गया। इस अद्भुत कृत्य को देख (कि पानी में आग कैसे लग गई) उत्तर से दक्षिण तक के ज्ञानी विचार

विचार कर रह गये, किन्तु यह रहस्य उनकी समझ में न आया। ज्ञानाग्नि के लगने से वासना का सागर भस्म हो गया और नवीन सृष्टि में (ज्ञानयुक्त होते पर) वैराग्य, विवेक, करुणा, आदि गुणों के पक्षी आकर चहचहाने लगे। इस दग्ध वासना-राधे को मैं पुनः पल्लवित नहीं होने दूंगा क्योंकि सतगुरु ने ज्ञान-अग्नि लगा दी है।

गुरु ने प्रेमाग्नि को प्रज्वलित किया, उसमें चेला जल गया, अर्थात् प्रभु-प्रेम में मग्न।

गया, किन्तु इसकी बिरहानुभूति से वह तभी मुक्त हुआ जब तृण तुल्य स्वतन्त्र अस्तित्वहीन आया पूर्ण ब्रह्म में लीन हो गई।

भाव यह है कि प्रभु मिलन से ही मुक्ति हो सकती है।

अहेड़ी दी लाड्या, मृग पुकारे रोड़।

जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोड़ ॥ 8 ॥ पाणी मांहैं प्रजली, भई अप्रबल आगि।

बहती सलिता रह गई, मंछ रहे जल त्यागि ॥ १ ॥ समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोयला भई।

देखि कबीरा जागि, मंछी रुषां चड़ि गई ॥ 10।1 व्याख्या-सद्गुरु रूपी आखेटक ने माया के विषय-वासनायुक्त वन में ज्ञान की अग्नि लगा दी। जीव रूपी मृग यह पुकार कर रो उठे कि जिस बन में हमने क्रीड़ायें कर सुख भीम प्राप्त किया वही जल रहा है।

विशेष-मृगों को पकड़ने या मारने के लिए आखेटक सम्पूर्ण वन में आग लगा देते हैं। अन में आग लगती देख मृग सम्मुख आ जाते हैं और आखेटक उन्हें अपने बाणों का लक्ष्य बना लेता है। यही रूपक कबीर ने यहाँ प्रयुक्त किया है।विषय-वासना रूपी जल में ज्ञान की आग लगकर तीव्र वेग से फैल गई। ज्ञान ने सम्पूर्ण प्राया बन्धन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। माया की सरिता का प्रवाह रुक जाने से जीवों ने जल- संसार-का परित्याग कर दिया; अर्थात् वे जीवन्मुक्त हो गये।

संसार समुद्र में ज्ञान की अग्नि लग गई जिससे विषय-वासना और सांसारिक आकर्षणों की सरितायें जल कर कोयले के समान शुष्क हो गई, किन्तु कितनी ही मछलियों रूपी आत्माएँ इस विनाश चक्र में न पड़ीं। वे तो अपनी साधना द्वारा ब्रह्मलीन हो गई (रूषां चढ़ि गई) अतः

हे कबीर ! तू इस स्थिति को देखकर जाग और साधना द्वारा तू भी ब्रह्म को प्राप्त कर।

5. परचा कौ अंग

अंग-परिचय-प्रस्तुत अंग में कबीर ने आत्मा और परमात्मा के महामिलन का परिचय देते हुए ब्रह्म के स्वरूप का परिचय दिया है। उन्होंने बताया है कि परमात्मा अनंत तेज से युक्त है। वह तेज ऐसा प्रतीत होता है मानो असंख्य सूर्यों की सेना ही एक स्थान पर एकत्र हो गई हो। कबीर ने आगे बताया कि ब्रह्म कमल के समान है, ऐसा कमल जो बिना पानी के ही फूलता- फलता है और मेरा मन-आत्मा भौर के समान है। इन्हीं बातों का वर्णन कबीर ने अपनी निम्नलिखित साखियों में किया है-

कबीर तेज अनंत का, मानौ ऊगी सूरज सेणि।

पति सँगि जागी सुन्दरी, कौतिग दीठा तेणि ॥ । ॥ परब्रह्म के तेज का, कैसा है उन्यान।

कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान ॥ 3 ॥

हदे छाड़ि बेहदि गया, दुआ निरंतर वास।

कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास ॥ 51

कबीर मन मधकर भया रह्या निरंतर बास। कबल जा फूल्या जलह बिन, को दैखे निज दास ॥ 6 ॥

प्रसंग-उपरोक्त दोहा अंश कविवर कबीरदास द्वारा रचित 'कबीर ग्रन्थावली' की साखी- कौ अंग से ली गई है।

व्याख्या-कबीर कहते हैं कि उस परमात्मा के सौन्दर्य का तेज ऐसा भासमान है मानो सूर्यों की श्रेणी अथवा सेना उदित हुई हो। पति अर्थात् स्वामी (क्योंकि आत्मा 'राम की 'है) ब्रह्म के साथ (अज्ञानरात्रि से) जागकर उसने यह सौन्दर्यमय आश्चर्यपूर्ण दृश्य

से केवल आल्या ही जागती और तब प्रिय-परमात्मा का विशेष- अज्ञानरात्रि पा वह आनन्दमय दृश्यावलोकन करती है।

रस की शोभा ही नहीं। उस सौन्दर्य का अनुमान भी कोई नहीं लगा सकता, यह तो एकमात्र द उस प्रभ के तेजयक्त सौन्दर्यको वाणीद्वारा नहीं कहा जा सकता कहने में उस अनुप का ही विषय है।

उसकी सीमा में ही निरन्तर रहने लगा अर्थात आत्मा और परमात्मा का मिलन हो गया। वही प जब मैं संसार से अपना सम्बन्ध विछिन्न कर निस्सीम की साधना में प्रवृत्त हुआ, तो कर मैंने देखा कि एक कमल बिना णाल के भी वहाँ प्रफुल्ल विकास पा रहा है संसारमा से असम्युक्त ईश्वर का सौन्दर्य मृणाल के कमल का विकास है. जीवात्मा के सन्दर्भ में भी यह था, लगाया जा सकता है कि मचकर बिना इस माया से जुड़े भी वह आनंद पा रहा है)।

इसको प्रभु भक्त के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं देख सकता। प्रभुका के अतिरिकन ऐसा कमल (परमात्मा) देखा है जो बिना जल (माया) के विकसित कबीर कहते हैं कि बैठेठो रहा है)। ऐसा अनुपम केवल बही है, अन्य कोई नहीं। मैल मन उसक हो रहा प्रेमी भ्रमर हो गया एवं उसके सम्पुट में ही निरन्तर निवास करने लगा अर्थात उसी में लीन हो गया।

अंताई कबल प्रकासिया, ब्रह्म वास तहां होई।

मन भवरा तहां लुबधिया, जांणेंगा जन कोई।

घट मांहै औघाट लाझा, आंघट माहै घाट।

कहि कबर परचा भया, गुरु दिखाई बाट ॥ 911

सूर समांणों बंद है, दहूं किया घर एक

मनका च्यंता तब भया, कछू पूरुबला लेख ॥ 10 ॥ प्रकासिया, अंतरि भया उजास ।

प्यंजर प्रेम मुख कस्तूरी महमही, बांगी फूट बास ॥ 14॥

व्याख्या-मेरे हृदय के भीतर कमल खिल रहा है अथवा मेरे शरीर के भीतर कमल विकसित हो रहा है। जिसमें ब्रह्म का निवास है। मेरा मन रूप भ्रमर उस कमल रस के पान करने के लिए लालियत हो गया है, इस रहस्य को बिरले भक्त हो जान सकते हैं (इसका साक्षात्कार कुछ बिरलो को ही होता है)।

कबीरदास कहते हैं कि सद्गुरु ने जो मार्ग दिखाया उसी के द्वारा अपने हृदय में उस ब्राह्म के दर्शन हो गये। गुरु द्वारा प्रशस्त यह पंथ योग-पंथ ही हैं। इसी के द्वारा जिस (मूर्ख लोगों द्वारा)

कुमार्ग (दुर्गम साधना) कहा जाता है मैंने अपना लक्ष्य (घा) प्राप्त कर लिया। साधक कबीर कहते हैं कि पिंगला नाड़ी इड़ा में समा गई और दोनों ने सुषुम्ना नाड़ी को ही अपना घर-मार्ग बना लिया। इन दोनों के एकत्रित होकर सुषुम्ना वास ही कुण्डलिन ऊपर

ब्रह्मण्ड-सहस्त्रदल की ओर उन्मुख हुई और सहस्त्रदल तक पहुँच कर अमृत का पान करने लगी। यह मेरा मन चाहा हुआ, जो किसी पूर्वजन्म के सुकृत्यों का ही फल है।

इस शरीर में प्रभु प्रेम के उदित होने पर हृदय उस प्रेम-ज्योति से द्योतित हो उठा एवं साधक का सुख प्रेम की सुगन्ध से परिपूर्ण हो गया, जिससे उससे निस्सृत वाणी भी प्रभु-प्रेम की सुगन्ध थी।

मन लागा उन मन सों, उन मन मनहि विलग।

लूंण बिलगा पाणियों, पाणी लूंण विलग ॥ 1611 पाणी ही तै हिम भया, हिम है गया बिलाइ।

जो कुछ था सोई भया, अब कंडू कड़ा न जाइ ॥ 17॥

भली भई जु भै पद्मा, गई दसा सब भूलि।

पाला गलि पाणी भया, दुलि मिलिया उन कूलि ॥ 1811 पार्ष उड़ानी गगन कुं, प्यंड रह्य परदेस।

पांणी पीया चंत्र बिन, भूलि गया यहु देस ॥ 20॥

हो गया है एवं यह मन की उन्मनावस्था पहले से सर्वथा भिन्न है. पहले तो मन माया आकर्षणों में भटकता था. अब वह उनसे सर्वथा उपराम हो ब्रह्म प्राप्ति में प्रवृत्त हो गया एवं इस प्रकार एकाकार हो गया जिस प्रकार नमक कबीरदास जी आत्मा और ब्रह्म का अद्वैत सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहते हैं कि जिस हते हैं।

प्रका पानी से ही बर्फ बनती है एवं नष्ट होकर वह पुनः पानी के रूप में परिवर्तित हो जाती है

उस प्रकार जीवात्मा ब्रह्म का ही अंश है और मृत्यु को प्राप्त होने पर पुनः उसी परमात्मा में लय हो जाता है। इस प्रकार तत्व या आत्मा अंततः अपना प्रकृत् स्वरूप ग्रहण कर लेता है। यह बड़ा अच्छा हुआ कि सद्गुरु की कृषा ने मृत्यु भय से अवगत करा मुझे सांसारिक- दया जनित आकर्षणों से सर्वथा विमुख कर दिया (और मैं साधना मार्ग पर अग्रसर हुआ) जिससे इम गलकर पानी के यथार्थ रूप में आ निस्मीम ब्रह्म की सीमा में जा कर मिल गया, अर्थात् आत्मा बस में लय हो गई।

पक्षी-रूपिणी आत्मा शून्य प्रदेश रूपी गगन को उड़ गई एवं साधक का शरीर इसी लॉक में रह गया। शून्य प्रदेश में पहुँच कर इस पक्षी ने बिना चोंच (साधन, इन्द्रियाँ) के सहस्त्रंदल कपल से स्त्रवित अमृत का पान किया। इस अमृतपान के आनन्द के सम्मुख तुच्छ सांसारिक आन्नद विस्मृत हो गये।

सुरति समांणी निरति मैं, अपजा मांहैं जाप।

लेख समांणा अलेख मैं, यू आपा मांहै आप ॥ 23 ॥

अंक भरे भरि भेटिया, मन में नांही धीर।

कहै कबीर ते क्यू मिलै, जब लग दोइ सरीर ॥ 25 ॥

सचु पाया सुख अपनां, अरु दिल दरिया पूरि।

सकल पाप सहजै गये, जब साई मिल्या हजूरि ॥ 26-11

थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाइ।

अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राड़॥ 29॥

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।

निस बासुरि सुख विध्य लहना, जब अंतारि प्रगट्या आप ॥ 30 ॥

व्याख्या-इड़ा पिंगला में मिल गई, जिससे नाम स्मरण की ध्वनि शान्त हो मौन ध्यान

में परिणत हो गई। इस स्थिति में आकर साकार निराकर में समा गया, अर्थात् केवल निरकार ब्रह्म का ही ध्यान रहा इस प्रकार परमात्मा से आत्मा का मिलन हो गया।

मैं प्रिय से प्रेमविभोर हो कस-कस कर आलिंगनबद्ध हुआ, फिर भी मन में धैर्य नहीं।

वह एक प्राण दो तन चाहता, मन तो परमात्मा में एकाकार होना चाहता है, किन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि जब दो शरीर हैं तब तक एकाकार कैसे हो सकते हैं? यह द्वैत ही आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधक है।

कबीरदास कहते हैं कि दयालु प्रभु के मिलते ही हृदय की बेदना शान्त हुई एवं सुख उत्पन्न हुआ। हृदय उसी प्रकार प्रेम से परिपूर्ण हो गया जिस प्रकार नदी जल से। नदी का जल अपने

साथ नाले आदि के गन्दे जल को भी बहाकर स्वच्छ कर देता है, उसी प्रकार इस प्रेम-जल या प्रेम-सरिता में मेरे समस्त पाप बह गये।

सारित की सहायता से मन योगावस्था में ध्यानावस्थित हो गया, जिससे चित्त शान्त में गया। इस शरीर में प्रेम करता अर्थात् परमात्मा के दर्शन किये। प्रेम साधना का आचरण किया, जिससे हृदय में त्रिभुवन पति

प्रभु-मिलन से मेरा चित्त शान्त हो गया एवं संसार के मायामोह के विविध आकर्षणों को दौड़ समाप्त हो गई। उस ब्रह्म के हृदय में प्रकट होने से में रात-दिन आनन्द निधि का सुख प्राप्त करता हूँ।

तत पाया तन बीसयों, जब मन धरिया ध्यान। तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असमान ॥ 32 ॥ जिनि पाया त्तिनि सू गड़ा, रसनां लागी स्वादि। रतन निराला पाड्या, जगत ढडौल्या बादि ॥ 3311 जा कारणि मैं ढूंढता, सनमुख मिलिया आइ ॥ धन मैली घिव अणला, लागि न सकों पाइ ॥ 36 ॥ जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर। सोई फिरि

आपण भया, जासू कहता और ॥ 3711 व्याख्या-जब मन प्रभु-भक्ति में संलग्न हुआ तभी साधक को ब्रह्म की प्राप्ति हुई एवं उसे शरीर की सुधि जाती रही क्योकि वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गई। साधना के द्वारा शून्य से स्रवित अमृत में स्नान करने से समस्त दुःख नष्ट हो गये और अपार शान्ति प्राप्त हुई। कबीरदास जो ढोंगी साधुओं को जो व्यर्थ ही, अलख लख की पुकार लगाते हैं, लक्ष्य करके कहते हैं कि जो उस ब्रह्म की प्राप्ति कर लेते हैं, वे फिर से छोड़ते नहीं बल्कि प्रेममय प्रभु से वे एकाकार हो जाते हैं। उस अलौकिक मिलन का स्वाद ही ऐसा मधुर है कि जिहा उस पर को छोड़ना नहीं चाहती। यह जगत व्यर्थ ही उसकी प्राप्ति के आन्नद का वर्णन करता है, उस अनुपम रत्न को तो प्राप्त करके हो जाना जा सकता है।

भाव यह है कि ब्रह्म-प्राप्ति का आनन्द वाणी का विषय नहीं, उसको तो पाकर ही जाना जा सकता है।

जिस ब्रह्म की खोज में मैं सर्वत्र भटक रहा था, वह सम्मुख आ गया किन्तु मैं उससे तदाकार न हो सका। पाप में मलिन जीवात्मा रूप पत्नी प्रिय-ब्रह्म के उज्जवल स्वरूप से कैसे आत्म-

साक्षात्कार करती? इसी संकोच के कारण वह (आत्मा) पति (ब्रह्म) के चरण भी न छू सकी।

में जिस ब्रा की खोज में में अन्यत्र जा रहा था, उसे अपने ही स्थान पर पा गया अर्थात अर्थात हृदय ही पा गया। फिर वही परमात्मा जिसे मैं अपने से भिन्न कोई और स्वरूप समझे हुए था. वही मुझ अपना लगा क्योकि आत्मा और परमात्मा दोनों एकाकार हो गये।

6. संकेत- कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ। तेज पुंज पारस घणी, नैंनूं रहा समाइ ॥ 38 ॥ मानसरोवर सुंभर जल, हंसा केलि कराहिं। मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहि ॥ 39 ॥ गगन गरिज अमृत चबै, कदली कवल प्रकास । तहां कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास ॥ 4011 तेवल मांन है देहुरी, तिल जेहै बिसतार।

मांहै पाती मांहि जल, , मांहै पूजणहार ॥ 42 ॥

व्याख्या-कबीर कहते हैं कि मैंने उस ब्रह्म को दत्तचित्त होकर देखा है, उसकी सौदय

महिभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह अमित प्रकाशवान एवं पारस के र को भी अपने प्रभाव से कंचन बना देता है। ऐसा अद्भूत ब्रह्म मेरे समान है, जो अन्य नेत्रों में समाया हुआ है।

साक्रीड़ाएँ कर मुक्ति चुगती हैं। इसमें उन्हें बड़ा आनन्द आ रहा है. इसीलिए वे उड़कर, विमुख को नहीं अपना शून्य रूपी आकाश में अनहदनाद-रूपी बादल गरज कर अमृत की वर्षा करते हैं एवं विकसित हो रहा है। ऐसा करते हैं एवं

कबीर ही पहुंचा है या कोई प्रभु के अनन्य भक्त। भाव यह है कि साधना बड़ी दुर्गम है, जिसे पार कर बिरले ही ब्रह्म से साक्षात्कार पाते हैं। कर

शून्य के मन्दिर में जो ब्रह्मरन्ध्र रूपी देव प्रतिमा है, उसका विस्तार एक तिल के बराबर है। इनकी अर्चना के लिए बाह्य उपादानों की आवश्यकता नहीं; शरीर के भीतर ही अर्चना के लिए जल, सुमन आदि हैं और वहीं मन रूपी पूजारी हैं।

कबीर कबल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर। निस अंधियारी मिटि गई, बागे आनन्द नूर ॥ 43 ॥ आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि। ताका पांणी को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि ॥ 45 ॥ अमृत बरिसै हीरा निपजै, घटा पड़े टकसाल।

कबीर जुलाहा भया पारषू अनभै उतां पार॥ 47 ॥

कबीर कहते हैं कि ज्ञान के निर्मल सूर्योदय से सहस्त्रदल कमल विकसित हो गया। इससे जीवात्मा की अज्ञान की अंधकारपूर्ण रात्रि नष्ट हो गई, एवं ब्रह्म-प्राप्ति पर अनहद का सूर्यनाद होने लगा।

शून्य में सहस्त्रदल कमल अधोमुख कुएँ के समान स्थित है एवं कुण्डलिनी पाताल अर्थात् मूलाधार में स्थित है (साधना के षट्चचक्रों का भेदन करते हुए कुण्डलिनी को आकाश में पहुंचाकर उससे स्त्रवित अमृत का पान ही योगी का लक्ष्य है)। इस सहस्त्रदल कमलरूपी अधोमुख कुएँ के जल (अमृत) को कोई प्रबुद्ध आत्मा ही पा सकती है। मैं सब मनुष्यों को देखकर ही ऐसा कहता हूँ कि कोई बिरला ही इसका पान कर सकता है। (अर्थात् प्रबुद्ध आत्माएँ बहुत कम हैं।) उस प्रभु मिलन सुख का वर्णन करते हुए ही कबीर कहते हैं कि वहाँ अमृत निर्झर निरन्तर प्रवाहित होता है एवं ज्ञान के मुक्ता वहाँ उत्पन्न होते हैं तथा अनहदनाद होता रहता है। कबीर जुलाहा भी उसी प्रभु रूप हीरे का पारखी हो गया है और इस संसार सागर से निर्भीक होकर पार हो गया है; अर्थात् उसने मोक्ष प्राप्त कर ली है।

6. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

अंग परिचय-कबीर ने आत्मा को नारी के रूप में चित्रित किया है और परमात्मा को पति के रूप में। प्रस्तुत अंग में आत्मा उस पतिव्रता नारी के समान चित्रित की गई हैं जो निष्काम भाव से अपने पति से मिलने के लिए अत्यन्त आतुर है और उसके दर्शन-प्राप्ति के लिए विविध उपायों में संलग्न है। -

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत।

जै हँसि बोलों और सौं, तौं नील रंगाऊँ दंत ॥ 1 ॥

नैना अंताई आव तूं, ज्यूं। ज्यू हौं नैन झंपेऊँ। नां हौं देखौं और कूं, नां तुझ देखन देऊँ ॥ 2 ॥

मेरा तुझ मैं कुछ नहीं, जो कुछ है सा तीर।

तेरा तुझकों सौंपता, क्या लागै है मोर ॥ 3 ॥ कबीर रेख स्पंडूर की, काजल दिया ना जाइ। मैनूं रमाड्या रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥ 4 ॥

कबीर सीप समंड की, रटे पियास पियास। समदहि तिणका वरि गिणै, स्वांति बूंद की आस ॥ 511

प्रसंग-प्रसाद धिति अश कविवर कबीरदास द्वारा रचित कबीर ग्रन्थावली की साक भाग-निहकर्मी को अंग से लिये गये हैं।

निहकमों पतिवता को गुणवान् प्रियतम (ब्रह्म) कबीर का प्रेम तो केवल आपसे है। के में अन्य किसी से हंस-बोलूं, अर्थात् अन्य किसी से प्रेम करूं तो स्वयं को कलंकित करूं।

किसी से तुम मेरे नेत्रों में आकर बस जाओ, जैसे ही आप आओगे मैं एक दम नेत्र कर लूंगी। तब मैं तेरे अतिरिक्त अन्य किसी को न देखूँगी और न अन्य की दृष्टि तुझ पर पड़ने दूंग हे प्रभु। मुझ में मेरा अपना तो कुछ भी नहीं है जो कुछ भी अस्थिचर्म का शरीर औ यह जीवन है वह आपके द्वारा दिया हुआ है। यदि मैं अपने इस जीवन और शरीर को तेरी साधन में समर्पित कर दूं तो मेरा क्या जायेगा, जिसकी वह बस्तु है उसी के निमित्त को दूंगा, फिर मे इसमें क्या बड़प्पन ?

कबीरदास जी कहते हैं कि सौभाग्यवती पतिव्रता अपनी माँग में सिंदूर ही भरती है, उस कालिख नहीं भरी जा सकती। जहाँ एक वस्तु का उपयुक्त स्थान है वहाँ दूसरी वस्तु नहीं आ सकती। मेरे नेत्रों में तो (सर्वत्र रमण करने वाला) राम बसा हुआ है, फिर भला इसमें किससे अन्य (सांसारिक आकर्षण) के लिए स्थान कैसे हो सकता है ?

कबीरदास जी कहते हैं कि स्वाति नक्षत्र की बूँद की आशा में सीप प्यास ही प्यास रटते

रहती है। उस बूंद के सम्मुख वह सम्पूर्ण सागर-जल को तृण-तुल्य समझती है। भाव यह है कि जिसका जिससे प्रेम होता है, उसके लिए उससे बढ़कर और कोई पदार्थ नहीं होता।

विशेष-अन्योक्ति अलंकार है।

कबीर सुख काँ जादू था, आर्गं आया दुख।

जाहि सुख धरि आपण, हम जाणाँ अरु दुख ॥ 6 ।1

दो जग तौ हम अंगियां, यहु डर नाहीं मुझझ।

भिस्त न मेरे चाहिए, बाझ पियारे तुझझ ॥ 7 ॥

जे वो एक जांणियाँ, तो जांण्या सब जांण। जे ओ एक न जांणियाँ, तो सबहीं जांण अजांण ॥ 8 ॥

कबीर एक न जांणिया, तो बहुँ जांण्यां क्या होड़।

एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥ १ ॥

जब लग भगति सकांमता, तब लग निर्फल सेव ।

कहै कबीर बैं क्यूं मिलें, निहकांमी निज देव ॥ 1011

आसा एकजु राम की, दूजी आस निरास। पांणी मांहँ घर करें, ते भी मरें पियास ॥ 11 ॥

व्याख्या-कबीर कहते हैं कि मैं संसार-दुःख की प्राप्ति के लिए जा रहा था, अर्थात हिक सुख लालसा में भटक रहा था, तभी मेरा साक्षात्कार प्रभुवियोगजन्य दुःख से हो गया; अर्थात त्मा ब्रह्म के वियोग में मिलनाकुल हो गई। अब इस विरह में ही मुझे इतना अपार आनन्द प्राप्त ■ है कि मेरे लिए संसार सुख निरर्थक एवं त्याज्य ही है, इसलिए ओ संसार-सुख ! तू मुझ बदा हो जा।

कबीर कहते हैं कि मैं यदि नरक यातना में पढ़ें और मुझे वहाँ प्रभु-दर्शन हो तो मझे आत नहीं अतः मैं नरक से भयभीत नहीं हूँ। किन्तु हे प्रभु । आपके अभाव में मुझे स्वर्ग- भी त्याज्य है।

यदि किसी ने उस एक परब्रह्म को जान लिया तो समझिये कि उसे संसार का समस्त ज्ञान हो गया है और यदि किसी ने केवल उस ब्रह्म को न जानकर सब कुछ जान लिया है

उसका समस्त सचित ज्ञान अज्ञान ही है। भाव यह है कि सज्वा ज्ञान ब्रह्मज्ञान है।

कबीर कहते हैं कि यदि किसी ने एक परब्रह्म प्रभु को न जानकर संसार के विविध ज्ञान जत कर लिये है तो उनसे क्या लाभ ? क्योंकि सबका मूल जो ब्रह्म है उसका विक विविध ज्ञान अपन उपादानों का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? उस एक ब्रह्म से ही सबकी उत्पत्ति होती है। यादि समस्त संसार की वस्तुएँ मिलकर भी उस एक ब्रह्म को उत्पन्न करने का व्यतिती असम्भव है।

जब तक भक्ति कामनामय है तब तक प्रभु की समस्त सेवा व्यर्थ है, उसके द्वारा ब्रा शांत नहीं हो सकता। कबीरदास जी कहते हैं कि कामनायुक्त भक्ति से वे निष्कामी परमात्मा- लागौ-किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं? अर्थात् निष्काम सेवा से ही निष्कामी ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है।

मनुष्य को केवल प्रभु प्राप्ति की ही इच्छा करनी चाहिए, क्योंकि समस्त आशाएँ उसी दो पूर्ण होती हैं। अन्य सांसारिक कामनाएँ अन्त में निराशा में ही परिणत होती हैं क्योकि वे मृगतृष्णा की भांति मनुष्य को भटकाती हैं और उनका फल कुछ नहीं होता। जो मनुष्य इस एक रामप्राप्ति के अतिरिक्त अन्य सांसारिक इच्छाएँ रखते हैं तो वे तो ऐसे ही हैं जो जल में रह कर भी प्यासे मरते हैं।

भाव यह है कि उन्हें उन सांसारिक आशाओं के प्राप्त होने पर भी शान्ति प्राप्त नहीं होती। विशेष-दृष्टान्त अलंकार।

जो मन लागे एक सूं, तो निरबाल्या जादू।

तूरा दुइ मुखि बाजणां, न्याइ तमाचे खाइ ॥ 1211

कबीर कलियुग आइ करि, कीये बहुतज़ मीत।

जिन दिल बंधी एक सूं, ते सुखु सोबै नचींत ॥ 131

मन प्रतीति न प्रेम रस, नाँ इस मन मैं ढंग।

क्या जाणाँ उस पीब सूं, कैसे रहसी रंग ॥ 16 ।1

घरि परमेसुर पांडुर्णी, सुर्णा सनेही दास।

गट रस भोजन भगति करि, ज्यूं कदे न छाड़ पास ॥ 18॥

व्याख्या-यदि मनुष्य का मन एक परब्रह्म ही पर आसक्त हो जाय तो निर्वाह हो जायेगा और यदि प्रभु और संसार अर्थात् माया-आकर्षण दोनों से प्रेम किया तो जीव को दुःखों के थपेड़े उसी प्रकार सहन करने पड़ेंगे, जिस प्रकार तुरही के दो मुखों से बजने के कारण हाथ के प्रहार सहन करने पड़ते हैं।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य इस कलि संसार में आकर विविध आकर्षणों के प्रपंचों में पड़ता है, किन्तु जिसने अपना चित्त उस परब्रह्म की भक्ति में लगा दिया वह निश्चित होकर सुख-निद्रा में सोता है, उसे सांसारिक बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।

कबीर कहते हैं कि मन को प्रभु-प्रेम पर दृढ़ विश्वास नहीं है तथा न यह शरीर उन उपकरणों से परिचित है जो प्रिय मिलन के लिए उपयुक्त हैं। फिर भला मैं उस प्रियतम से साक्षात्कार के समय कैसे रंग-रेलियाँ करूंगी ?

भाव यह है कि मैं प्रभु-मिलन के आचार-व्यवहार से परिचित नहीं हूँ। कबीर कहते हैं कि प्रभु-प्रेमी भक्ती, सुनो। इस हृदय रूभी घर में प्रभु रूपी अतिथि एवं है। जिस प्रकार अतिथि को अभ्यर्थना विविध भोगादि से की जाती है, उसी प्रकार भक्ति रूपी पटत व्यंजन प्रभु को परोस कर उनसे प्रेम करना चाहिए जिससे वे कभी भी हमारा साथ न छोड़ दें। विशेष-रूपक अलंकार।

कबीर-सबद

तन रत करि मैं मन रत करि, पंचतत बराती। रामदेव मोरै पांहुनै आये, मैं जोबन मैं माती ॥

सरीर सरोबर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार। रामदेव संगि भांवरि लैहूँ, बंनि बंनि भाग हमार॥

सुर तेतीसूं कौतिक आये, मुनियर सहस अठ्यासी। कहैं कबीर हम व्याहि चले, पुरिष एक अविनासी ॥ 1 ॥

प्रसंग एवं व्याख्या-कवीर यहाँ परमपुरुष से अपने आध्यात्मिक मिलन का वर्णन विवर के रूपक द्वारा करते हुए कहते हैं कि हे सौभाग्यवती नारियों। तुम विवाह के मंगल गीत गाळे आज मेरे घर पर स्वामी राम-परमप्रभु आये हैं। मेरी आत्मा प्रभु-भक्ति में परिपक्व (जोवनः माती) है। स्क्यं प्रभु मेरे द्वार पर अतिथि बनकर आये हैं। मैं उनका स्वागत पति रूप में ही बाज कर करूंगी। मैं अपने शरीर और मन को उनके प्रेम में रंग, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आका को बराती बनाकर अर्थात् उनको साक्षी बना शरीर रूपी कुण्ड की वेदी पर प्रभु के साथ विवाह सम्बन्ध में बंध जाऊंगी। इस विवाह के संसार पर स्वयं ब्रह्मा बेद-मंत्रों का उच्चारण करेंगे। अब आगे कबीर ऐसा वर्णन करते हैं कि विवाह हो चुका है, वे कहते हैं कि इस प्रेम से प्रेमिक (आत्मा) के इस महामिलन को देखने के लिए तेंतीस करोड़ देवता एवं अट्ठासी सहस्त्र मुनिया आये थे। कबीर कहते हैं कि इस प्रकार अविनाशी परम पुरुष से विवाह-सूत्र (अटूट प्रेम सम्बन जोड़कर इस संसार से जा रहे हैं।

काहे री नलिनी तू कुमालिनी, तेंरे ही नालि सरोवर पानी।

जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास।

ना तलि तपति न ऊपर आग, तोर हेतु कहु कासनि लागि।

कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहि मुए हमारे जान ॥ 4 ॥ प्रसंग-जीव अपनी

यथार्थ स्थिति को विस्तृत कर देती है। वह ईश्वर के अति निकर रहते हुए भी अपने आपको उससे विलग समझता है। कबीर इस पद में इसी स्थिति का वर्णन करते हैं।

व्याख्या-कौर कहते हैं कि हे आत्मा कमलिनी तू जगत के ताप से तृप्त होकर क्यो कुम्हला रही हो ? तेरी नाल तो सदैव पानी के तालाब में है अथवा तेरे चारों ओर तो सरोवर का जल भरा हुआ है। जहाँ से तुझे हमेशा तरलता मिलती रहती है। जल में तेरी उत्पत्ति है, जल से तू पली है तथा जल हो तेरा निवास स्थान है, न तो तेंरे नीचे किसी प्रकार की गर्मी है और न तो ऊपर ही आग बरस रही है। तब ऐसी स्थिति में तू क्यों मुरझा रही है? मेरी समझ में तो तेंरे मुरझाने का कारण कुछ और ही है। तुझे किसी से प्रेम हो गया है जो उसी के विरह में उदास बनी रहती है। सही बता, तुझे किससे प्रेम हो गया है। कबीर कहते हैं जो व्यक्ति सरोवर के जल के समान सम और शाक्त है वे हमारे विचार से कभी नहीं मरते अथवा जो व्यक्ति अपने उद्गम स्थल को छोड़कर चंचलता वश अन्यत्र प्रेम नहीं करते हैं हमारे बिचार से वे अमर पद के अधिकारी हैं, अन्य व्यक्ति अपनी चंचल वृत्ति के कारण कमलिनी की भांति कुम्हला कर नष्ट हो जाते हैं। 7

विशेष इस पद में कवि ने 'आई बाह्यामि वाले सिद्धान्त की ओर संकेत करते हुए ईश्वर अविनाशी का प्रतिपालन किया है। यहाँ अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट है।

मन रे मन ह्वीं उलटि समांनां। गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं, नहीं तर था बेगांनां ॥ टेक ॥

नेहैं मैं दूरी दूर मैं नियरा, जिनि जैसा करि जांनां। औ लीं ठीका चढ़्या बलींडै, जिनि पिया तिनि मांनां। उलटे पचन चक्र शठ वेधाँ, सुंनि सूरति तै लागी। अमर न मरै मरे नहीं जीवै, ताहि खोजि बैरागी ॥ अनभै कथा कवन सौं कहिये, है कोई चतुर बवेकी।

कहै कबीर गुर दिया पलीता, सो झल बिरलै देखी ॥ 8 ॥ प्रसंग एवं व्याख्या-कबीर कहते हैं कि साधक का मन ऊर्ध्वमुखी हो गया है, इसे गुरु लाभ हो गया, अन्यथा यह तो निपट आवारा चारों और भ्रमित रहने वाला था। जब को खोजने चलते हैं तो वह ऐसा लगता है कि वह दूर अर्थात् अन्यत्र है, किन्तु सर्वत्र खोजने चात् परिणाम यही निकलता है कि वह कहीं अन्यत्र नहीं, हृदय में ही स्थित है। जो भी गाऊपण चढ़ गया अर्थात् मन की

वृत्तियों को ऊध्यर्योन्मुखी कर प्रभु से प्रेम किया उसने उसकी जर कर ली। अधोमुखी हो प्राणयाम साथ कर घट-चक्रों का भेदन कर यदि शून्य में सुरति कोलगा दिया जाय तो मनुष्य आवागमन चक्र से विमुक्त हो जाय। हे साधक। तू उसी मार्ग की सपना कर। कबीर कहते है कि इस अपूर्व कथा का वर्णन किससे किया जाय, ऐसा कोई चतुर एवं विवेकवान मनुष्य है ?

भाव यह है कि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्हें इस योग साधना का पात्र समझा जाये। थी कहते हैं कि सद्गुरु के ज्ञान-स्फुलिंग दान से उचित मार्ग का अवलम्बन और उस अलख श्रोतिस्वरूप परम प्रभु के दर्शन बिरले ही लोगों को होते हैं।

4. संकेत- डांइन डारै सुन हां डोरै, स्पंथ रहै बह धैरै।

पंच कुटंब मिलि झूझन लागे, बाजत सबद संधैरै ॥

रोहै मृग ससा बन घैरै, पारधी बांण न मेलै।

सायर जलै सकल बन दाझै, मंछ अहेरा खेलै ॥

सोड़ पंडित सो तत ग्याता, जो इहि पदहि विचार।

कहै कबीर सोड़ गुर मेरा, आप तिर मोहि तारै ॥ 91।

व्याख्या-कबीर कहते हैं कि हे प्राणियों । संसार का सार यही है कि राम-नाम स्मरण कर प्रभु की अकथनीय कथा का चिन्तन किया जाय। जिसके हृदय में परम प्रभु का बास सबसे ऊपर है वह दिन-रात प्रेम-पीर से आहत हो जागता रहता है। हे साधक। सुन, ऐसे योगी के मार्ग में माया रूपी डाकिनी आकर्षण के विविध प्रपंच फैला बाधा डालती है और काल रूपी सिंह समस्त संसार रूपी वन पर अपना अधिकार किये हुये है। विषयादिक आकर्षणों की ध्वनि सुनकर मन रूपी मृग उस ओर भागता है एवं खरगोश के रूप में वासनाओं ने संसार को घेर रखा है किन्तु फिर भी साधक रूपी अहेरी बाण-वर्षा द्वारा इनको नष्ट नहीं करता जब इस समस्त सृष्टि के जल थल वासना अग्नि से भस्म होने लगते हैं, तब भी योगी रूपी अहेरी यहाँ निश्चिन्तता से क्रीड़ा करता है उसे सांसारिकता नहीं व्यापती। कबीर कहते हैं कि वही व्यक्ति ज्ञानी है, मेरा गुरु है जो इस पद का विचारपूर्वक आचरण कर स्वयं भी इस भव सागर से तर जाय और कबीर जैसे अन्य लोगों को भी संसार-सिन्धु से तार दे।

बिशेष-सांगरूपक अलंकार।

अबधू ग्यांन लहरि धुनि मांडी रे।

सबद अतीत अनाहद राता, इहि विधि त्रिष्णां घांडी ॥ टेक ॥ वन कै ससै समंद घर कीया, मंछा बसै पहाड़ी।

सुड़ पीवै बांम्हण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी॥

बाड बुणै कोली मैं बैठी, खूंटा में गाड़ी। तांर्ण बाण पड़ी अनंबासी, सूत कहै बुणि गाड़ी ॥

कहै कबीर सुनहु रे संतौ, अगम ग्यांन पद मांहाँ। गुरु प्रसाद सूई के नांकै, हस्ती आवै जांहीं ॥ 10 11 व्याख्या-कबीर कहते हैं कि हे अवधूत। ज्ञान-लहर के उठने पर साधक सक्ष

में लीन हो गया। अनाहद नाद से उत्पन्न आनन्ददायी शब्द में ही उसकी वृत्तियों रम गई। एवं मछली भाँति उसने सांसारिक तृष्णा को नष्ट कर दिया। जिसके फलस्वरूप संसार रूपी वन में मटक वाले चंचल खरगोश रूपी मन में शून्य-समुद्र में अपना वास स्थान बना लिया पवित्र आत्मा शून्य-शिखर रूपी पर्वत पर जा बसी। वहाँ पहुँच कर प्रभु-भक्ति में मस्त मुक्क ब्राह्मण अमृत का' पान करने लगा और इस प्रकार बिना ही खेती किए प्रभु रूपी अमूल्य की प्राप्ति साधक हो गई। इस अवस्था में पहुँच कर आत्मा रूपी जुलाहिन सुन्दर कर्म वस्त्र का निर्माण करती है। इस वस्त्र चुनने की प्रक्रिया में आत्मा ही कर्ता है एवं स्वयं ही साधक 'अहं ब्रह्मास्मि'। विविध सुन्दर कमर्मों का ताना-बाना डालकर बह उस वस्त्र का निर्माण कर रही है- अर्थात् सत्कर्म स्वयं उसे पुण्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। कबीर कहते हैं कि हे साधुओं ध्यानपूर्वक सुनो, इस अगम्य, अप्राप्य मुक्तपद को साधक गुरु कृषा से ही प्राप्त कर सकते। कृपा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है-सूई की जैसे विशालकाय पशु 6. संकेत- का आवागमन्, भी वे सम्भव कर नोंक जैसे सूक्ष्म स्थान के मध्य से ह सकते हैं।

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाड़ा सिच चरावै गाई ॥ टेक ॥

पहलें पूत पीछे भई भाइ, चेला कै गुर लागै पाड़।

जल की मछली तरबर ब्याई, पकड़ि बिलाइ मुरगै खाई।

बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्तो के लै गई बिलाई ॥

तलि करि आवा ऊपरि करि मूल, बहुत भाँति बड़ लागे फूल। कहै कबीर या पद की यूझे, ताकूं तीन्यू त्रिभुवन सूझै ॥ 1 । ॥

व्याख्या-हे भाई ! मैंने एक आश्चर्य देखा है। यह आश्चर्य साधना क्षेत्र का है। का ज्ञान रूपी सिंह समस्त इन्द्रियों का अर्थात् कर्मों का संचालन कर रहा है। इस संसार में पहले तो पुत्र रूपी मनुष्य का जन्म हुआ "ईश्वर अंश जीव अविनाशी"-

फिर माता रूपी माया का अविर्भाव। माया प्रभु की दासी है- चेली है-उस प्रभु का अंश के अर्थात् गुरु उसके पीछे लग रहा है- पैरों पड़ रहा है। भाव यह है कि प्रभु-दासी माया में संलिय कहता है मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी ने मेरुदण्ड की सुषुम्णा में अपना वास कर लिया है। माया ने विषय-वासना से पोषित जीवों को समाप्त कर दिया। गुणी आत्मा तामसी वृत्तियों रूप बैलों का नाश करके अपने वास्तविक स्थान-शून्य-महल में आ गई एवं जो सांसारिकता में बद्ध विषय-वासना में लिप्त कुत्ते के समान निकृष्ट जीव थे उन्हें तो माया ने अपने बंधन में बो लिया। इस संसार रूपी वृक्ष की शाखाएँ अधोमुखी एवं मूल ऊर्ध्वमुखी है, इस मूल-स्थान- ब्रह्मरन्ध्र-पर विविध कामनाओं को तृप्त करने वाला जब अलख निरंजन दर्शन-प्राप्त होत है। कैबीर कहते हैं कि जो मनुष्य इस पद के अर्थ को हृदयगम कर (आचरण कर) सकेग उसे त्रिभुवन का ज्ञान सहज प्राप्त हो जायेगा। धौल मंडलिया बैल बाबी ककवा ताल बजायें ॥ पहरि चोल नांगा दह नाच्चै, भैंसा निरति करावै ॥ स्वंध बैठा पान कतरै, घूंस गिलौरा छावै। उंदरी बपुरी मंगल गावै, कछू एक आनंद सुनावै ॥ कहै कबीर सुनहूँ रे संतौ, गडरी परबत खाया। चकवा बैसि अगारे निगलैं, समंद अकासां धाबा ॥

व्याख्या-डोल, मृदंग बाम्बी आदि विविध वाद्य संसार में माया-आकर्षणों के रूप में रूपी जीव भी इन ओं के रूप में अपने को छोड देता है। विषय-वासना का वस्त्र धारण कर यह जीव निर्लज्ज होकर उन कणों में भटकता है एवं विविध तामसिक बत्तियों का भैसा उससे यह नृत्य कराता है। ज्ञान निश्चिन्त होकर भ्रम के पान को कतर रहा है- नष्ट कर रहा है, माया रूपी घूंस उसे कर विविध आकर्षणों की गिलीरी (पान में डालने की) देना चाहती है किन्तु ज्ञार्मस उसे थाने में नहीं आता। बेचारी मुक्तात्मा प्रभु-भक्ति के आनन्दप्रद-मंगल-गान (कन्तु ज्ञान उसके ॥ कबीर कहते हैं कि हे साधुओं ! सुनो, माया रूपी गढ़रिनी ज्ञान के अचल पर्वत को नष्ट करना सादी है, किन्तु कुण्डलिनी शून्य में विस्फोट कर अलख निरंजन की ज्योति के दर्शन करती

और समुद्र अर्थात् विषय-वासना में पड़ी आत्मा शून्य प्रदेश में पहुँच जाती है। विशेष-यहाँ कबीर ने उलटबाँसी के माध्यम से योगसाधना की विविध प्रक्रियाओं को काकर प्रभु-प्राप्ति का ढंग बताया है।

चरघा जिनि जरै।

कार्तोंगी हजरी का सूत, नणद के भइया की सौं ॥ टेक ॥

जलि जाई थलि ऊपजी, आई नगर मैं आप। एक अचंभा देखिया, बिटिया जायी बाप ॥ बाबल मेरा ब्याह करि, बर उत्यम ले चाहि। जब लग बर पावै नहीं, तब लग तूं हीं व्याहि ॥ सुबधी कै घरि लूबधी आवौ, आन बहू कै भाइ। चूल्हे अगनि बताइ करि, फल सौं दीयौ ठठाइ ॥ सब जगही मर जाइयौ, एक बढ़ड्या जिनि मरै।

सब रांडनि कौ साथ चरखा को घरै ॥

कहै कबीर सो पंडित ग्याता, जी या पदहि विचारै।

पहलें परचचै गुर मिलै, तौ पीछें सतगुर तारै ॥ 13 ॥

व्याख्या-कबीर प्रेमिका के रूप में कहते हैं कि यह शरीर रूपी चरखा नष्ट न हो, क्योंकि में प्रियतम अर्थात् प्रभु की सौगन्ध खा कर कहती हूँ कि इससे प्रभु-भक्तिरूपी उत्तम कर्मों का सूत कातूंगी।

जीवात्मा के रूप में कबीर आगे कहते हैं कि मैं अपने वास्तविक जन्म-स्थान से इस संसार रूपी नगर में स्वयं ही आ गई हूँ। मैंने यह बड़ा आश्चर्य देखा कि माया रूपी प्रभु की बेटी ने (क्योंकि वह उनसे उत्पन्न है, इसलिए उनकी पुत्री) जीव (जो प्रभु का ही अंश है) रूपी पुत्र को जन्म दिया। अब आत्मा प्रभु से प्रार्थना करती है कि मेरा विवाह सम्बन्ध जो आत्मिक बन्धन है किसी उत्तम व्यक्ति के साथ कर दे और हे परम पिता जब तक कोई अन्य सुन्दर वर नहीं मिलता तब तक तुम्हीं मुझे पत्नी रूप में स्वीकार करो। सुबुद्धि रूप आत्मा को आकर्षित करने के लिए विषय-वासना का आकर्षण ले माया ने प्रपंच फैलाया। उसने आत्मा को वास्तविक प्रण प्रभु-से तो दूर रखा और विषय-वासना की तप्त अग्नि को झोंक दिया। समस्त संसार इल

इस विषयवासना अति में भाम होना हो गया अनुभव प्राप्त एक (कबीर की डी पद का अर्थ बद इसीलिए उसकी अचल सहागिन ने अन्य अभागिन आत्माओं के साथ रे परिचय यदि पहले कछ आचरणसम्म रूपी सरखे को कुकर्मों में प्रवृत्त नहीं होने दिया। कबीर कहते हैं कि जो इस कर सके नही पण्डित है, महले ज्ञानी है। किसी का सिद्धान्तों से हो जाता है तभी सदगुरु उसकी जीवन नौका पार लगाते हैं।

तन में होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि ॥ जम मैं उलटि भया है राम, दुख बिसर्वा सुख कीया विश्ाम ॥ बेरी उलटि गये है माँता, साबत उलटि सजन भये चीता ॥ आपा जांनि उलटि ले आप, ती नहीं व्यापै तीन्यू ताप ॥ अब मन उलटि सनातन हुवा, तब हम जाँना जीवत मूबा ॥ आई कबीर सुख सहज समाऊँ, आप न डरों न और डराऊँ ॥ 15

प्रसंग-कबीर कहते हैं कि जब मैंने प्रभु को जान लिया तभी चित्त को शान्ति हुई, द अब हो मेरी कुशल ही कुशल है। व्याख्या-संसार की मायालिप्त होने की जो स्वाभाविक गति है उससे विपरीत आ क अर्थात् वृतियों को जड्रोन्मुख से चिदुन्मुख कर देने से जो शरीर की कोटि-कोटि व्यति कार्यात सहज समाधि में परिवर्तित हो गई। अब काल भी बदल कर मुझे राम सम और प्रिय हो गया है और इस प्रकार में दुःख को विस्मृत कर सुख-लाभ कर रहा हूँ। काम, क्रो मद, लोभ, मोह आदि जो आत्मा के शत्रु थे वे अब दास बन कर भित्र रूप में काम आ रहे। शाक्त जैसे कुमार्गी, आचरण भ्रष्ट भी सज्जन रूप में परिवर्तित हो गये है। यदि मनुष्य आ वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर दें तो उसे दैविक, दैहिक, भौतिक- तीनों तापों में से कोई भी बा नहीं कर सकता। जब मैं जीवन-मुक्त की स्थिति में आ गया तभी मेरा मन जो संसार माय उलझा रहता था निर्मल होकर अपने प्रकृत रूप (जिस रूप में ईश्वर ने उसे प्रदान किया में आ गया।

कबीर कहते हैं कि में सहज-समाधि में अपने को लगाकर सुख लाभ करूंगा और संसार तापों के भय से न तो स्वयं भयभीत होऊँगा और न किसी को भयभीत करूंगा।

विशेष-पद की टेक पूर्णतः लोकगीत त पर आधृत है। लोकगीतों में पति के लिए नम

के बीर का सम्बोधन 10. पहै।

संकेत- संती भाई आई ग्यांन की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उडांर्णी, मग्या रहै न बांधी।। टेक ॥

हिति चत की द्वै धूनीं गिरनीं, मोह बलींडां तूटा। त्रिस्नां छांनि परी घर ऊपरि, कुबधि का भांडा फूटा।। जोग जुगति करि संर्ती बांधी, निरचू चुवै न पांर्णी। कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जांणी ॥ आँधी पींछें जौ जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनां। कहैं कबीर भांन के प्रगर्दै, उदित भया तम बींनां ॥ 16।।

सप्रसंग व्याख्या-कबीर कहते हैं हे संतों। ज्ञान की आँधि आयी जिससे माया-बन्दन से बँधी भ्रम की टट्टी, छपरिया नष्ट होकर उड़ गई। ज्ञान-आँधी आते ही मिथ्या प्रेम द्वैत जनि भावना की धूनियों गिर गई एवं मोह का बलींडा भी टूट गया। इस प्रकार तृष्णा की छान घर- संसार-से अलग जा पड़ी तथा कुबुद्धि का भेद खुल गया कि वह किस गलत मार्ग पर थी। संतों । जीवात्मा ने यह छप्पर बड़े यत्नपूर्वक बांधा था जिससे ज्ञान की एक बूँद भी इसमें न पा सके किन्तु इस ज्ञान-आँधी ने इसे उड़ाकर शरीर के पापों रूपी कूड़े को निकाल बाहर किय

के पश्चात् प्रभु-

- भक्ति के जिस जल की वर्षा हुई उससे प्रभु-प्रेमी भीग गये। कबीर है कि इस भाँति ज्ञान प्रभाकर के उदित होते ही अज्ञानधिकार विदीर्ण हो गया।

विशेष सांगरूपक, रूपकातिशयोक्ति अलंकार।अब घटि प्रगट भये राम राई सोधि सरीर कनक की नांई ॥ टेक ॥ कनक कसौटी बैसैं कसि लेइ सुनारा सोधि सरर भयो तन सारा। उपजत उपजत बहुत उपाई, मन धिर भयो तबै चिति पाई।। बाहरि बोजत जनम गँवाया, उनमनीं ध्यांन घटं भीतरि पाया।

बिन परचें तन कांच कबीरा, परचें कंचन भया कबीरा ॥ 1711 व्याख्या-शरीर को यौगिक-प्रक्रियाओं से कंचन के समान शुद्ध किया है. तभी हृदय के दर्शन हुए हैं। जिस प्रकार स्वर्णकार कसौटी पर कस कर स्वर्ण को शुद्ध कर कंचन ता ता है उसी प्रकार योग-साधना से मैने शरीर को शुद्ध किया। हृदय में प्रभु चना कर कंचन अनेक प्रयत्न किये किन्तु जब चंचल मन पूर्ण रूप से शान्त हो गया तभी शान्तिपूर्ण स्थिति दे हुई। मैंने व्यर्थ समस्त संसार में प्रभु को खोजते हुए जीवन व्यर्थ कर दिया, उन्मनी की वस्था से मैंने उसे हृदय में ही प्राप्त कर लिया। प्रभु के बिना परिचय के तो यह शरीर कच्चे के सथान अशुद्ध था किन्तु उनसे साक्षात्कार होते ही यह विशुद्ध कंचन के रूप में परिवर्तित गया।

को बीनैं प्रेम लागी री, माई को बीनैं।

राम रसांइण माते री, माई को बीनैं ॥ टेका।।

पाई पाई तूं पुतिराई, पाई की तुरियाँ बेचि खाई री, माई की बीनैं।
ऐसैं पाई पर बिथुराई, त्यूं रस बांनि बनायौ री, माई को बीनै ।।
नाचै तांनाँ नाचै बांनाँ, नथ्वै कूंच पुराना री, माई को बीनैं। करगहि बैठि कबीरा नाचै, चूहै काट्या ताँनाँ री, माई की बीनैं ।। 19।।
कबीर कहते हैं कि प्रभु भक्ति के इस अनुपम वस्त्र को हे सखि । कौन बनेगा। मैं तो जब राम रसायन में मदमस्त हूँ और कौन इस सुख को प्राप्त करना चाहती है। है बुनकर सखि ! अपना समस्त धन पाप-कर्मों में खर्च कर डाला, अब इस भक्ति-वस्त्र को कौन बुनेगा (वस्त्र सने में कुछ पूँजी की आवश्यकता होती है न) बुनकर सखि । माया आकर्षणों में लिप्त रह श्री, अब इस प्रभु-प्रेम को कौन पूरा करे। बुनकर के अभाव में ताना-बाना दोनों इधर-उधर रहे हैं एवं वस्त्र बुनने में वही पुरातन ढर्रा चल रहा है जिसमें विषय-वासना ही प्रमुख थीं। सीलिए करघे पर कबीर यह देखकर प्रभु भक्ति वस्त्र बुनने बैठ गये कि काल रूपी चूहा आयु को समाप्त कर रहा है।
भाव यह है कि संसार-रीति, माया-पथ, छोड़ शीघ्र ईश्वर-भजन करो। 13. संकेत
- तननां युनना तज्या कबीर, रांम नांम लिखि लिया शरीर ।। टेक ।। जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टूटै रांम सनेह।।
ठाढी रौवैं कबीर माई, ए लरिका क्यूं जीवैं खुदाई।
कहै कबीर सुनहुँ री माई, पूरणहारा त्रिभुवन राई ।। 2111 व्याख्या-कबीर कहते हैं मैं जीवन्मुक्त हो गया हूँ इसीलिए कर्म-विरत हो कर्म वस्त्र बुनने का व्यापार त्याग मैं प्रभु-भक्ति में अनुरक्त हो गया हूँ। जब तक मैं इस जीवन-नलिका पर आयु रूपी सूत लपेटता रहूँगा तब तक मेरी राम में प्रीति बनी रहेगी, भाव यह है कि जीवन- पर्यन्त में प्रभु-प्रेमानुरक्त रहूँगा। कबीर की माँ अर्थात् माया जिससे वह पहले पल्लवित रहा पण आश्चर्यान्वित है कि यह जीव मुझसे पृथक् होकर जीवित कैसे है किन्तु कबीर माया रूपी, (एटी) माँ को समझाते हुए कहते हैं कि जीवनदान देने वाला तो अनन्त शक्तिमय प्रभु है।
चलन चलन सबको कहत है, नाँ जाँनौं बैकुंठ कहाँ है।। टेक ।। जोजन एक प्रमिति नहीं जानें, बातनि ही बैकुंठ बधाननैं। जब लग है बैकुंठ की सा, तब लग नहीं हति चरन निवासा ।। कहैं सुनें कैसैं पतिअड़ये, जब लग तहाँ आप नहीं जड़ये। कहै कबीर यहु कहिये काहि, साथ संगति बैकुंठहि आहि ।। 24 ।। व्याख्या कहै कबीहता कि सब प्रभु लोक-शून्यगढ़ को जाने को कहते हैं किन्तु उस

मार्ग किस्याख्या कोर करते हाक्ति उस एक ब्रह्म की सीमाओं-शक्तियों से अवगत नहीं तो व्यर्थ में ही वैकुण्ठ की बात करता है, उसे प्रभु स्थान का पता भी नहीं। जब तक मन में वैकु पहुँचने में कोई कामना प्रमुख है। तब तक प्रभु-चरणों में निवास असम्भव है। उस प्रभु-लोक बताई गई बातों को जब तक स्वयं न देख लें, विश्वास किस आधार पर करें? कबीर कहते हैं। यह किसे समझाऊँ कि साधु-संगति में ही प्रभु का वास है वहीं बैकुण्ठ है।
कसैं होड़गा मिलवा हरि सनां,
रे तू बिष विकारन तजि मनां ।। टेक ।।
रे हैं जोग जुगति जान्यौं नहीं, तैं गुर का सबद मान्यां नहीं ।।
गंदी देही देखि न फूलिए, संसार देखि न भूलिए। कहै कबीर मन बहु गुंनी, हरि भगति बिनां दुःख फुन फुंनी ।।29।।
व्याख्या-कबीर कहते हैं कि हे मन! तू विषय-विकारों का परित्याग कर दे, अन्पश पाप-पंक-पूरित शरीर से प्रभु से किस प्रकार मिलन होगा? हे मन ! तूने न तो यौगिक प्रक्रियाज को जाना और न सदगुरु के उपदेश का पालन किया, जिससे प्रभु प्राप्ति सम्भव होती है। दूस शरीर का जो निरा कूड़ा है, व्यर्थ अभिमान मत कर और न संसार के विभिन्न माया-आकर्षण में पड़ कर अचेत हो। कबीर कहते हैं कि इस संसार में चाहे कितने ही गुण क्यों न हों प्रभु भक्ति बिना वे सब दुख ही दुख है।
कासूं कहिये सुनि रामां, तेरा मरम न जानें कोई जी।
दास बबेकी सब भले, परि भेद न छानां होई जी।। टेक ।।
एक सकल ब्रह्मांड तै पूरिया, अरू दूजा महि थां जी। मैं सब घट अंतरि पेषिया, जब देख्या नैं समांन जी ।।
रांम रसाइन रसिक हैं, अद्भुत गति बिस्तार जी। भ्रम निसा जो गत करें ताहि सूझे संसार जी।
सिब सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज बास जी। कहै कबीर पद पंक्यजा, अब नेड़ा चरण निवास जी ।।30 ।।

व्याख्या-कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तुम्हारी महिमा-वर्णन किससे करूं, क्योंत्रि कोई तुम्हारा भेद जानता ही नहीं। आपके भक्त बड़े ज्ञानी है, किन्तु वे भी आपका भेद नहीं प सकते। इस समस्त ब्रह्माण्ड में आप परिपूर्ण हैं और फिर भी आपका स्थान कोई दूसरा ही है। मैंने जब अपने हृदय घट को समग्रतः देखा तो आपके दर्शन किए, आपकी गति उसी प्रकार। ति नेत्रों से देखते तो सबको हैं, किन्तु हम स्वयं अपने नेत्रों को (बिना दर्पण आदि के नहीं देख सकते। आपके द्वारा ही समस्त क्रिया-व्यापार संचालित होते हैं किन्तु आपके दर्शन नहीं हो पाते। आपकी गति परम विचित्र है। प्रभु! आप रसिकों के लिए अमूल्य रसायन के सदृश है। जो इस संसार में अज्ञान-रात्रि को विनष्ट कर देता है उसे ही संसार का वास्तविक रूप दृष्टिगत होता है। शिव, सनकादिक एवं नारदादि ने ब्रह्म को ही अपना निवास बना लिया है, अर्थात् में उसमें ही रम गए हैं। कबीर कहते हैं कि अब मेरा वास भी प्रभु के पदपद्मों में ही होगा।

संतौ धागा टूटा गगन बिनसि गया, सबद जू कहां समाई। ए संसा मोहि निस दिन व्यापै, कोई न कहै समझाई।। टेक ।।
नहीं ब्रांड प्यंड पुंनि नांही, पंचतत भी नाहीं। इला प्यंगुला सुषमन नाँहीं, ए गुंण कहाँ समाँही।।

नहीं गिह द्वार कचू नहीं तहिंवाँ, रचनहार पुनि नाँहीं। जोबनहार अतीत सदा संगि, गुंण तहाँ समाँहीं ।। तूटैं बँधै बँधै पुंनि तूटे, जब तक होइ बिनासा। तब को ठाकुर अब को सवेग, को काकै बिसवासा ।।

कहै कबीर यहु गगन न विनसै, जौ धागा उनमानौं। सीखें सुनें पड़े का होई, जौ नहीं पदहिं समाँनों ।। 32।। व्याख्या-कबीर कहते हैं कि सन्तों! जीवन का यह सूत्र टूट जाने पर शरीर-सत्ता समाप्त जाती है तो गुरु का सदुपदेश कहाँ समायेगा ? मुझे तो यही आशंका अहर्निश त्रस्त करती है वात्मा गुरु-उपदेश द्वारा किस प्रकार जीवनमुक्त होगी। शरीर की सत्ता समाप्त होने पर ब्रह्माण्ड श्री पिण्ड तथा पंचतत्व एवं इड़ा-पिंगला आदि का कोई महत्व शेष नहीं रह जाता। गृह, द्वार सूजक-मृतक के लिए तो कोई भी नहीं रह जाता। उस अगम्य, अनादि ईश्वर में ही आत्मा हालय हो जाता है। यह जीवन सूत्र टूटता है, बंधता है और इसी प्रकार जीवन-क्रम चलता रहता इसी के द्वारा जो पहले कभी स्वामी रहा होगा उसे किसी का सेवक बनना पड़ता है। कबीर कहते हैं कि इस ज्ञान के श्रावण मात्र से कुछ नहीं होता, वास्तविक तत्व को हृदयंगम कर उन्मन
अवस्था से ब्रह्म से तरूष हो जाने पर शून्य-ब्रह्म से आत्मा विलग नहीं होती। पांडे कॉन कुमति तोहि लागी,
तूं रांम न जपहि अभागी ।। टेक ।। दूर
बेद तुरांन पढत अस पाँडे, खर चंदन जैसें धारा। राम नांम तत समझत नाँही, अंति पड़े मुखि छारा ।। बेद पढ़्याँ का यहु फल पांडे, सब घटि देखें रांमाँ। जन्म मरन धै तौ तूं छूटै, सुफल हूँहि सब कांमाँ ।। जीव बघत अरू धरम कहत हौ, अधरम कहाँ हैं भाई।
आपन तौ मुनिजन है बैठे, का सनि कहाँ कसाई ।। नारद कहै व्यास याँ भाषै, सुखदेव पूछो जाई।
कहै कबीर कुमति तब छूटे, जे रहौ रांम ल्यौ लाई ।। 39 ।।
व्याख्या- हे पांडे जी! आप किस दुर्बुद्धि के फेर में पड़कर विविध पाखंड कर्मों का बंजाल फैलाते हो। हे अभाग्यवान राम नाम क्यों नहीं जपता? व्यर्थ में वेद और पुराण पढ़ने से क्या लाभ ? वास्तविक ज्ञान तो प्रभु-भक्ति है, यह पुस्तकीय ज्ञान तो ऐसा ही है जैसे गधे र चन्दन लदा हुआ ना हो और बह उसका कुछ रहस्य नहीं जाना तो तातो अन्त में वेद पढ़ने का तो यही लाभ मुख में भी लाभ न उठा धूल पड़ेगी; अर्थात् मृत्यु है कि प्रत्येक जीव के सके। यदि तूने राम-नाम का को प्राप्त होगा। हे पाण्डे जी ! हृदय में प्रभु की सत्ता को समझो। इससे तु जन्म-मरण के आवागमनृ चक्र से मुक्त हो जाएगा और तेरे समस्त कार्य सफल हो जायेंगे। यदि तुम पशुबलि करके भी धर्म कहते हो तो फिर अधर्म पूर्ण कार्य कौन-सा रह गया ? तुम स्वयं पशुबलि करके तो मुनि कहलाते हो, फिर भला कसाई किसे कहोगे ? व्यास जी, नारद और शुकदेव जैसे ऋषियों द्वारा इस मत की पुष्टि कराते हैं। कबीर कहते हैं कि यह कुबुद्धि जो तुम्हें ऐसे क्रूर कर्म करने के लिए प्रेरित करती है तभी छूट सकती है जब तुम अपनी वृत्तियाँ राम में केन्द्रित कर दो।

जै अगिण पवन का मेला, चंचल चपल सुधि का खेला। भव दरवाजे वसुं दुबार, बुझि रे ग्यार्थी ग्यांन बिचार।। देही माही बोलै घबचर्चा, यूझिरे ग्यार्थी सूया से कौंनां। मुई सुरति बाद अहंकार, वह न मूबा जो बोलणहार है। जिस करनि तहि तीरथि जाँहीं, रतन पदारथ घट हीं माहीं। पड़ि पड़ि पंडित बेद बाँणें, भीतरि छूती बसतु न जाँण।। हूँ न मूबा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रह्या समाइ। हुँच सबीर गुरु बहा दिखायी, मरता जाता नजरि न आया ।। 42

अग्नि प्रज्वलित सप्रसंग का जो अपनी वृत्तियों को अंतर्मुखीकर विचारा यही उपदेशक है, वहीं प्रभु प्रेमानुरक्त है। जिस प्रकार वायु के संस्मर्श से उड़ाती है उसी समय सर्वत्रगामी और तीज बुद्धि के द्वारा ही यह आत्म-चिन्तन सम्भव है। में नौ द्वार एवं ब्रह्मरन्ध्र है है हे ज्ञानी। ज्ञान द्वारा तू इनकी स्थिति का अनुमान नकर। शरीर तो मात्र है जिसको प्राण-जायु जीवन प्रदान करती है, हे ज्ञानी जो (आत्मा) मर गया वह कौर आपके स्वरूप पर विचार कर। कबीर स्वयं ज्ञानों से किये गये प्रश्न का उत्तर देते कहते है। आत्मा नह नहीं होती मनुष्य की मृत्यु पर नष्ट तो अहं मिथ्या दम्भ एवं स्वार्थ वृत्ति होती है। कि लिए मनुष्य विविध तीर्थों की यात्रा का श्रम उठाता है वह रत्न और अमूल्य पदार्थ अर्थात तो हृदय में ही बास करते हैं। पण्डित नव्यर्थ में उद्घोष गिरा से बेदों का मन्त्रोच्चार करता है कि ओहर में रहने वाले ब्रह्म से परिचित नहीं होता। मृत्यु पर मनुष्य नहीं मरता केवल मात्र अहं नह हो जाता है और वह तो समस्त संसार में रमा हुआ है परमात्मा आत्मा के रूप में जाता है। कबीर कहते हैं कि सद्गुरु ने मुझे ज्ञान-दृष्टि प्रदान कर ब्रह्म के दर्शन करा दिये कि मैं जीवन-मरण के आवागमन से मुक्त हो गया। 20. संकेत-

हम न मदैं मरिहै संसारा, हम कूँ मिल्या जियावनहारा ॥ टेक ॥ अब न मरौं मरनैं मन माँनों, तेई मूए जिनि राम न जॉनों।

साकत मरें संतन जीवै, भरि भरि रांम रसाइन पीवै ॥ हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं, हरि न मरे हम काहे कू मरिहैं।

कहै कबीर मन मनहि मिलाबा, अमर भये सुख सागर पावा ॥ 4। सप्रसंग व्याख्या- कवीर इस पद में प्रभु प्राप्ति के पश्चात् अपनी मनःस्थिति का का करते हुए कहते है कि अब मेरा मरण नहीं हो सकता क्योंकि मुझे तो जीवन या अमरता करने वाले प्रभु के दर्शन हो गये। अब मैंने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मैं मरण कोश नहीं होऊंगा-मरते तो वे हैं जो प्रभु-महिमा से अवगत नहीं होते और मैं तो प्रभु से साक्षता कर चुका हूँ। शाक्त या बलि आदि की विविध हिंसात्मक क्रियाओं में ही पढ़ा हुआ नष्ट हो स है और साधुजन भरपूर मात्रा में राम-रूपी रसायन-प्रभु भक्ति का पान करते हैं। अतः में हो जाते हैं। यदि प्रभु की समाप्ति हो जायेंगी तो हमारा भी नाश हो जायेगा। किन्तु जब वहीं मरेगा तो हम कैसे मर सकते हैं? क्योंकि हम तो उस अंशी के अंश है। कबीर कहते है। मन को प्रभून्मुख कर देने से सुख सागर की प्राप्ति होकर मनुष्य अमर हो जाता है।

3.7 सारांश

विद्यापति की पदावली में इस प्रकार की व्यक्तिगत भावनाओं के ताने-बाने को ही बुना गया है। कभी राधा आनन्द में है, तो वह अपने अतीत और संयोग की अनेक स्मृतियों और कल्पनाओं को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है। वियोगावस्था में विरहिणी के हृदय का तार-तार झकृत हो जाता है। उसे हृदय में अनेक भावों का उदय होता है कभी वह अपने प्रियतम की स्मृति में रोने लगती है, तो कभी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में चकोर की तरह व्याकुल हो उठती है। इस प्रकार महाकवि विद्यापति ने सुख और दुःख के छोटे से छोटे भावों का चित्रण बड़ी मार्मिक और सुन्दर प्रणाली से किया है। आदि से लेकर अन्त तक अनेक रंगों से अपने व्यक्तिगत दुख-सुख की भावनाओं को रंगा गया है। सम्पूर्ण पदावली इसी प्रकार के चित्रों का एक संग्रह-मात्र है। संयोग की अनेक दशाओं का चित्रण पहले किया है और उसके पश्चात् वियोगावस्था को उन दशाओं का भी चित्रण किया है जो संसार के भावों की अमूल्य निधि है। संयोगावस्था में राधा और कृष्ण के व्यक्तिगत भावों की अनेकरूपता के दर्शन कवि की सफलता के परिचायक है। पदावली का प्रथम पद ही एक प्रेमी की उस उत्सुकता को व्यंजित करता है जो वह अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा करने के अवसर पर प्रकट करता है-

"नन्दक नंदन कदम्बक तरु-तर धिरे धिरे मुरली बजाव।

समय संकेत-निकेतन बइसल बेरि-बेरि बोलि पठाव ॥

सामरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।

जमुनाक तिर उपवन उद्वेगल, फिरि-फिरि ततहि निहारि ॥

गोरस बेचए अबइत जाइत, जनि-जनि पुछ बनमारि ।"

कृष्ण के हृदय की व्याकुल अवस्था का कितना सुन्दर चित्रण है। कृष्ण राधा की प्रतीक्षा कर रहे है और वंशी को धीरे-धीरे बजाकर राधा को बुलाने का उपक्रम करने में तल्लीन हैं। वह राधा के लिए प्रत्येक क्षण व्याकुल हैं। वे यमुना के समीप के उस वन की ओर, जिधर से राधा के आने की सम्भावना है, बार-बार देख रहे हैं। इस दृश्य में एक प्रेमी की भावना का कितना सच्चा चित्रण है। प्रत्येक प्रेमी को अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए जो उत्सुकता होती है उसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कर दिया गया है। यद्यपि कृष्ण की उत्सुकता उनकी व्यक्तिगत उत्सुकता है, किन्तु कवि ने उसको प्रत्येक प्रेमी की उत्सुकता बना दिया है।

3.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- मुक्तक काव्य की परम्परा में विद्यापति का स्थान निर्धारित कीजिए।
- मुक्तक काव्य की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में विद्यापति के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।
- "कबीर साधना के क्षेत्र में युग-गुरू थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य के सृष्टा।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
- सिद्ध कीजिए कि कबीर अपने युग के एक मात्र दृष्टा, समाज के सजग प्रहरी और साहित्य के क्षेत्र में सजग रचनाकार थे।
- कबीर और रहस्यबाद की तुलनात्मक निरूपण करते हुए बतलाइये कि आराध्य की दृष्टि से दोनों में उल्लेखनीय अन्तर क्या हैं ?
- कबीर एवं जायसी की रचनाधार्मिता के साम्य एवं वेषम्य पक्ष को तुद्रघाटित करते हुए दोनों के युग-बोध का अंकलन कीजिए।
- "विद्यापति श्रृंगार-प्रधान भावुक भक्त कवि है। अन्तः सलिता सरिता के समान श्रृंगार की बालुका-राशि से आवृत्त रहने पर भी ये सर्वदा सुन्दर, सरस तथा शीतल हैं।" उद्धरण देते हुए इस कथन का समाधान कीजिए।
- भक्तिभाव प्रायः मानवीय गरिमा का उल्लंघन नहीं करता।" इस कथन के आलोक में इस कवि की कविता की समीक्षा कीजिए।
- मुक्तक काव्य की परम्परा में विद्यापति का स्थान निर्धारित कीजिए।
- मुक्तक काव्य की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में विद्यापति के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

3.9 पठनीय पुस्तकें

1 कवीर ग्रंथावली- सं. डॉ० श्याम सुंदर दास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2 जायगी ग्रथावली सं आचार्य रामचंद्र शुक्ल- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3 हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि- डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना- श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4 हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ० नगेन्द्र व डॉ० हरदयाल मयूर मुक्र, नई दिल्ली
5 विद्यापति पदावली आनंद प्रकाश दीक्षित साहित्य मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर
6 हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7 पद्मावत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

इकाई – 4

प्राचीन काल मध्यकालीन काव्य (निर्गुणधारा) का इतिहास, प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं रचनाकारों से सम्बंधित प्रश्न। आधुनिक हिंदी गद्य के विधागत विकास को जान सकेंगे।

प्राचीनकाल एवं मध्यकालीन काव्य का इतिहास

रूपरेखा

4.1 प्रस्ताबना-

राजनैतिक पृष्ठभूमि-राजनैतिक दृष्टि से देखें तो हिन्दी साहित्य का आदिकाल अव्यवस्था और विश्रृंखलता का युग था। यह वह समय था जब देश के अन्तर्गत देशद्रोही सर्वत्र अपना जाल फैला रहे थे और यवन आक्रमणकारी उनके इस स्वभाव का अनुचित फायदा उठा रहे थे। जयचन्द जैसे व्यक्तियों के कारण देश विदेशी शक्तियों के हाथों जर्जरिति होता जा रहा था। यद्यपि राजपूत शासक शक्तिहीन नहीं थे द्विप्राठित और संघात्मक शक्ति के अभाव में विजय प्राप्त करने में असमर्थ रहते थे। कांव लोग ऐस राजनैतिक वातारण में केवल कलम से धनी बनकर सामने आ रहे थे, अपितु रण कौशल में भी अपनी शक्ति व क्षमता प्रमाणित

कर रहे थे। "वीरगाथा काल का समय शुक्लजी ने 1050 वि. से. 1375 वि. तक स्वीकार किया है। भारतीय इतिहास में मुख्य रूप से मुसलमानों के हमले और राजपूत राजाओं द्वारा उसके प्रतिरोध का समय है। हर्षवर्धन की मृत्यु पर अलग-अलग राजवंश शासन करने लगे उस समय भारत का पश्चिमी भाग भारतीय सभ्यता और बल वैभव का केन्द्र हो रहा था। कम्नौज, अजमेर, अन्हिलवाड़ आदि प्रसिद्ध राजधानियाँ इधर ही थीं। हर्षवर्धन के बाद में कन्नौज पर पहले प्रतिहारों और फिर गहड़वारों का शासन हुआ। गुजरात में सोलंकी वंश का राज्य था। अजमेर में चौहान राज्य कर रहे थे। इन राजाओं के दरबार में संस्कृत प्राकृत तथा देशी भाषा के अनेक कवि रहा करते थे।

मुसलमानों की पहला बड़ा हमला नवी शताब्दी में सिन्ध पर हुआ था, किन्तु वह स्थायी नहीं रहा। उसके बाद ग्यारहवी शताब्दों में महमूद गजनवी ने अनेक हमले भारत पर किए। राजपूत राजाओं ने उसका सामना तो किया, किन्तु उनमें एकता कभी स्थापित नहीं हो सकी। महमूद गजनवी के बाद लाहौर में गजनी के सुल्तान की ओर से एक अधिकारी रहने लगा था। धीरे-धीरे मुसलमान पश्चिमी भारत और राजस्थान में आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रयत्न में उनका मुख्य विरोध राजपूत राजाओं से हुआ। मुसलमान और राजपूत राजाओं का परस्पां युद्ध हो उस समय के समाज की मुख्य बस्तु थी। जो चारण भाट या कवि इन राजाओं के दरबार में रहते थे, उन्होंने इन युद्धों तथा इन युद्धों में वीरता प्रदर्शित करने वाले पुरुषों को अपना काव्य-नायक बनाया। इन नायकों में सबसे प्रसिद्ध थे अजमेर, दिल्ली के राजा पृथ्वीराज, इनको लेकर पृथ्वीराज रासो लिखा गया। युद्ध का कारण केवल मुसलमानी आक्रमण ही नहीं थे। राजपूतों में परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण भी निरन्तर युद्ध होते रहते थे। इन प्रतिस्पर्धाओं का बहुत बार सुन्दर कन्याएँ भी कारण बन जाती थीं। प्रसिद्ध है कि गहड़वार नरेश जयचन्द्र और पृथ्वीराज की प्रतिस्पर्धा का मुख्य कारण उसकी सुन्दर पुत्री संयोगिता थी। कहा जाता है कि शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज चौहान के बीच भी शत्रुता का कारण एक सुन्दर स्त्री हो थो। धार्मिक पृष्ठभूमि-धार्मिक पृष्ठभूमि का महत्व भी सर्वविदित है। धार्मिक दृष्टि से देखें तो तद्युगीन बातावरण अनेक मत मतान्तरों में विभाजित हो रहा था, ब्राह्मण धर्म एक तरह से छिन्न-भिन्न हो गया था और वैष्णव और शक्ति जैसे सम्प्रदायों में विकसित होकर सामने आ रहा था। वैष्णावों में पूजा स्वाध्याय, अवतारवाद, मूर्तिपूजा एवं योग आदि आडम्बरों का प्रर बढ़ रहा था। सक्तिगतावलम्बियों के सिद्धान्त विविध तान्त्रिक क्रियाओं से परिचालित थे। वैदिक मत का पुनरुद्धार करने की योजना बनाई जा रही थी। इतना ही नहीं इस कार्य के लिए शंकर रामानुज और निम्बार्क जैसे माध्यमों से यह कार्य सम्पन्न किया जा रहा था। एक और तो यह सब हो रहा था और दूसरी ओर इस्लामी शक्ति अपना प्रभाव बढ़ाती जा रही थी। राजनीति के समान इस काल की धार्मिक परिस्थितियों को भी किसी भी दृष्टि से समुन्नत एवं सन्तुलित नहीं कहा जा सकता है। धर्म के नाम पर अनाचार और आडम्बर ही निरन्तर पनप रहे थे। वैदिक और पौराणिक धर्म तो विभिन्न सम्प्रदायों के दलदल में फंसकर हासोन्मुख थे ही, बौद्ध और जैन धर्म भी अपने मूल आदर्शों से भटककर तन्त्रों और सिद्धियों के आल-जाल में बुरी तरह उलझ रहे थे। इनकी कई शाखाएँ हो गयी थीं। इनके सैद्धान्तिक पक्ष यद्यपि अच्छे थे, किन्तु व्यवहारक्ष तो निरन्तर जन-जीवन का अनिष्ट ही कर रहे थे। धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की गुप्त क्रियाएँ, विलास-वासना की पूर्ति का साधन मात्र बन कर रह गयी थी। चमत्कार की प्रवृत्ति और कामुकता को प्रश्रय मिल रहा था। सिद्ध नाथ, जैन

तो थे ही, शैव शक्ति वैष्णव और स्मार्त आदि जाने कितने धार्मिक सम्प्रदाय प्रचलित हो गये थे। अन्य अनेक वामाचारों और वाममार्गियों को तो कोई गिनती ही न थी।

4.2 उद्देश्य

प्राचीन काल मध्यकालीन काव्य को जान सकेंगे

आधुनिक हिंदी गद्य को जान सकेंगे

आधुनिक हिंदी गद्य के विधागत विकास को जान सकेंगे।

4.3 शब्द सम्पदा

प्राचीन काल

मध्यकालीन काव्य

आधुनिक हिंदी गद्य

4.4 हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रवृतियों का विवेचन

आदिकाल (वीर गाथा काल)

उत्तर- हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रसंग में "वीरगाथा काल" की धारणा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की देन है। 1929 ई. में पहली बार प्रकाशित अपना प्रन्च "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल को वीरगाथा काल का नाम दिया और उसका समय 1050 वि. से. लेकर 1375 वि. तक निर्धारित किया। ग्रन्थ के प्रथम संस्करण की भूमिका में अपने काल विभाजन पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि "जिस काल खण्ड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ी वह एक अलग काल माना गया है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया गया है।" इस दृष्टि से उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास के पहले काल (आदिकाल) का नान "बीरगाथा काल" रखी।

आदिकाल का ऐतिहासिक परिवेश

राजनैतिक पृष्ठभूमि-राजनैतिक दृष्टि से देखें तो हिन्दी साहित्य का आदिकाल अव्यवस्था और विश्रृंखलता का युग था। यह वह समय था जब देश के अन्तर्गत देशद्रोही सर्वत्र अपना जाल फैला रहे थे और यवन आक्रमणकारी उनके इस स्वभाव का अनुचित फायदा उठा रहे थे। जयचन्द जैसे व्यक्तियों के कारण देश विदेशी शक्तियों के हाथों जर्जरिति होता जा रहा था। यद्यपि राजपूत शासक शक्तिहीन नहीं थे द्विप्राठित और संघात्मक शक्ति के अभाव में विजय प्राप्त करने में असमर्थ रहते थे। कांव लोग ऐस राजनैतिक वातारण में केवल कलम से धनी बनकर सामने आ रहे थे, अपितु रण कौशल में भी अपनी शक्ति व क्षमता प्रमाणित

कर रहे थे। "वीरगाथा काल का समय शुक्लजी ने 1050 वि. से. 1375 वि. तक स्वीकार किया है। भारतीय इतिहास में मुख्य रूप से मुसलमानों के हमले और राजपूत राजाओं द्वारा उसके प्रतिरोध का समय है। हर्षवर्धन की मृत्यु पर अलग-अलग राजवंश शासन करने लगे उस समय भारत का पश्चिमी भाग भारतीय सभ्यता और बल वैभव का केन्द्र हो रहा था। कम्नौज, अजमेर, अन्हिलवाड़ आदि प्रसिद्ध राजधानियाँ इधर ही थीं। हर्षवर्धन के बाद में कन्नौज पर पहले प्रतिहारों और फिर गहड़वारों का शासन हुआ। गुजरात में सोलंकी वंश का राज्य था। अजमेर में चौहान राज्य कर रहे थे। इन राजाओं के दरबार में संस्कृत प्राकृत तथा देशी भाषा के अनेक कवि रहा करते थे।

मुसलमानों की पहला बड़ा हमला नवी शताब्दी में सिन्ध पर हुआ था, किन्तु वह स्थायी नहीं रहा। उसके बाद ग्यारहवी शताब्दों में महमूद गजनवी ने अनेक हमले भारत पर किए। राजपूत राजाओं ने उसका सामना तो किया, किन्तु उनमें एकता कभी स्थापित नहीं हो सकी। महमूद गजनवी के बाद लाहौर में गजनी के सुल्तान की ओर से एक अधिकारी रहने लगा था। धीरे-धीरे मुसलमान पश्चिमी भारत और राजस्थान में आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रयत्न में उनका मुख्य विरोध राजपूत राजाओं से हुआ। मुसलमान और राजपूत राजाओं का परस्पां युद्ध हो उस समय के समाज की मुख्य बस्तु थी। जो चारण भाट या कवि इन राजाओं के दरबार में रहते थे, उन्होंने इन युद्धों तथा इन युद्धों में वीरता प्रदर्शित करने वाले पुरुषों को अपना काव्य-नायक बनाया। इन नायकों में सबसे प्रसिद्ध थे अजमेर, दिल्ली के राजा पृथ्वीराज, इनको लेकर पृथ्वीराज रासो लिखा गया। युद्ध का कारण केवल मुसलमानी आक्रमण ही नहीं थे। राजपूतों में परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण भी निरन्तर युद्ध होते रहते थे। इन प्रतिस्पर्धाओं का बहुत बार सुन्दर कन्याएँ भी कारण बन जाती थीं। प्रसिद्ध है कि गहड़वार नरेश जयचन्द्र और पृथ्वीराज की प्रतिस्पर्धा का मुख्य

कारण उसकी सुन्दर पुत्री संयोगिता थी। कहा जाता है कि शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज चौहान के बीच भी शत्रुता का कारण एक सुन्दर स्त्री हो थो। धार्मिक पृष्ठभूमि-धार्मिक पृष्ठभूमि का महत्व भी सर्वविदित है। धार्मिक दृष्टि से देखें तो तद्युगीन बातावरण अनेक मत मतान्तरों में विभाजित हो रहा था, ब्राह्मण धर्म एक तरह से छिन्न-भिन्न हो गया था और वैष्णव और शक्ति जैसे सम्प्रदायों में विकसित होकर सामने आ रहा था। वैष्णावों में पूजा स्वाध्याय, अवतारवाद, मूर्तिपूजा एवं योग आदि आडम्बरों का प्रर बढ़ रहा था। सक्तिगतावलम्बियों के सिद्धान्त विविध तान्त्रिक क्रियाओं से परिचालित थे। वैदिक मत का पुनरुद्धार करने की योजना बनाई जा रही थी। इतना ही नहीं इस कार्य के लिए शंकर रामानुज और निम्बार्क जैसे माध्यमों से यह कार्य सम्पन्न किया जा रहा था। एक और तो यह सब हो रहा था और दूसरी ओर इस्लामी शक्ति अपना प्रभाव बढ़ाती जा रही थी। राजनीति के समान इस काल की धार्मिक परिस्थितियों को भी किसी भी दृष्टि से समुन्नत एवं सन्तुलित नहीं कहा जा सकता है। धर्म के नाम पर अनाचार और आडम्बर ही निरन्तर पनप रहे थे। वैदिक और पौराणिक धर्म तो विभिन्न सम्प्रदायों के दलदल में फंसकर हासोन्मुख थे ही, बौद्ध और जैन धर्म भी अपने मूल आदर्शों से भटककर तन्त्रों और सिद्धियों के आल-जाल में बुरी तरह उलझ रहे थे। इनकी कई शाखाएँ हो गयी थीं। इनके सैद्धान्तिक पक्ष यद्यपि अच्छे थे, किन्तु व्यवहारक्ष तो निरन्तर जन-जीवन का अनिष्ट ही कर रहे थे। धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की गुप्त क्रियाएँ, विलास-वासना की पूर्ति का साधन मात्र बन कर रह गयी थी। चमत्कार की प्रवृत्ति और कामुकता को प्रश्रय मिल रहा था। सिद्ध नाथ, जैन तो थे ही, शैव शक्ति वैष्णव और स्मार्त आदि जाने कितने धार्मिक सम्प्रदाय प्रचलित हो गये थे। अन्य अनेक वामाचारों और वाममार्गियों को तो कोई गिनती ही न थी।

सामाजिक पृष्ठभूमि-जब देश की राजनैतिक व धार्मिक स्थिति विघटन व विश्रृंखलता के सीमान्त पर खड़ी एक हल्के से धक्के की प्रतीक्षा कर रही हो, तब सामाजिक अखण्डता की कल्पना कैसे की जा सकती है? कहने का तात्पर्य यह है कि ामाजिक दृष्टि से भी आदिकाल परिस्थितियाँ अस्त-व्यस्त और अतनोन्मुख हो रही थीं। चार वर्षों से और भी आगे बढ़कर अनेक उपवर्ण भी विकसित हो गये थे। जातिभेद, छुआछूत, ऊँच-नीच जैसे विधि-विधानों के कारण शुद्रों की स्थिति पर्याप्त हीन से हीनतर बनती जा रही थी। यदि मत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का सही मूल्यांकन करना हो तो ग्यारहवीं शती में भारत के भ्रमण के लिए आए हुए अलवरुनी जामक विद्वान् के इन शब्दों को देखा जा सकता है, उसने बताया है कि हिन्दुओं के विभिन्न रूप और अनेक वर्ग बन गये थे। इतना ही नहीं, पारिवारिक दुनिया में भी नर-नारी के समान- भावनाओं के लिए प्रयत्न किये जा रहे थे। उस समय स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी जो अपनी मान- मर्यादा के लिये प्राच्योत्सर्ग कर देते थे। सामान्य जीवन विकृतियों का शिकार था। आर्थिक विफलता जीवन की प्रति बहुपरक दृष्टिकोण और महत्वाकांक्षाओं की आड़ में जलते हुये सामाजिक जीवन को विकृतियों और अनैतिकता ने घेर लिया था। स्पष्ट है कि आदिकालीन साहित्य जिस भूमिका पर लिखा गया है उसमें राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का विशेष हाथ रहा है।

आदिकालीन साहित्य प्रवृत्तियाँ और उपलब्धियाँ

हिन्दी का आदिकालीन साहित्य अपनी विवधता में अकेला है। उसमें तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित और पोषित होकर जो प्रवृत्तियाँ उभरी हैं, वे इस काल के साहित्य की प्रमुख उपलब्धियों है। इसका विवेचन इस प्रकार है

1. सामन्तों की स्तुति गान, किन्तु व्यापक राष्ट्रीयता का अभाव-इस समय के सभी रचनाकार अपने आपको दिल्ली तरबार के कवि बनाना चाहते थे। वे अपने आश्रयदाता को दिल्लीश्वर के रूप में देखना चाहते थे। उस समय का कोई भी रचनाकार ऐसा नहीं मिलता है जो सम्पूर्ण भारत के भविष्य पर सोचता रहा हो। उन्हें अपने आश्रयदाता और स्वयं के स्वार्थ के अतिरिक्त किसी से कोई लेना-देना नहीं था। इस तरह सम्पूर्ण चारण साहित्य में व्यापक राष्ट्रीयता का अभाव दृष्टिगोचर होता है।

2. बीर का पोषक श्रृंगार-इन वीर गाथाओं में दो रसों की प्रमुखता मिलती है-एक बोर की और दूसरी श्रृंगार की। ये रचनाकार पहले राजकुमारियों के सौन्दर्य का वर्णन करते थे और आश्रयदाता की कामेच्छा को जागृत करते थे तथा आश्रयटामा शूरता के साथ-साथ उस राजकन्या के वर्णन का प्रयत्न करता था। पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज ने लगभग 14 विवाह किये। प्रत्येक राजकन्या की सुन्दरता का कवि ने प्रथमतः उल्लेख किया और बाद में प्रत्येक के लिए पृथ्वीराज ने युद्ध किया, तत्पश्चात् वरण किया। इस प्रकार इन रचनात्मों में श्रृंगार रस बीर रस का पोषक बनकर आया है।

3. इतिहास कम कल्पना अधिक वीरगाथा काल की सभी रचनाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि वे सभी या तो अप्रमाणिक है या अर्द्धप्रामाणिक। पृथ्वीराज रासों के सम्बन्ध में अब तक द्वन्द्व चल रहा है। मोहनलाल बिष्णुलाल पाण्डया, श्यामसुन्दर दास, जैन मुनि आदि इसे प्रमाणिक मानते हैं तो शुक्लजी और गौरीशंकर ओझा इसे अप्रामाणिक मानते हैं। यही स्थिति बौसलदेव रासो की है। उसकी कोई घटना बीसलदेव

के शिलालेखों से मेल नहीं खाती है। बीसलदेव का विवाह भोज की राजकन्या से रासों में करवाया गया है। जो उसके राज्यरोहण से 150 वर्ष पहले मर चुका था। इससे तत्कालीन साहित्यकारों की काल्पनिता प्रमाणित हो जाती है।

4. बुद्धों का सजीव वर्णन-चारण साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि चारण न केवल कलम के धनी थे, अपितु तलवार के भी धनी थे। उनकी कर्कश पदावली में, उनकी वीर बचनावली में शस्त्रों की झंकार साफ सुनाई देती है, क्योंकि ये युद्धों के प्रत्यक्षदर्शी थे। अपनी वीरतापरक शब्दावली के द्वारा वे हतपौरुष सेना में पौरुष का संचार किया करते थे। इसलिए उनका युद्ध सम्बन्धी साहित्य अद्वितीय है। "आल्हाखण्ड" में उनकी सजीवता के अनेक चित्र मिलते हैं-

(i) खटखटाय कर तेगा चालें छमक चाले तलवार।

(ii) "सात कोस सो बढ्यौ पिथोरा, नदी वेतवा के मैदान।"

iii) "बारह बरह लौ कूकर जीये औ तेरह ली जिए सियार। (बरस अट्ठारह क्षत्रिय जीवे आगे जीवण को धिक्कार।"

5. वीर गाथाओं की भाषा का डिंगल होना- सभी वीरगाथात्मक साहित्य डिगाल भाषा में लिखा गया है। डिगल भाषा उस भाषा का नाम था. जो प्राम्य, गवारू या हीनता के दोष से दूषित और व्याकरण के नियमों से रहित थी तथा पिंगल के वीरों से उठ खड़ी हुई थी। डिगल के कई अर्थ और भी लिए जाते हैं-हर प्रसाद शास्त्री का कहना है कि यह शब्द दिन+ गल' से बना है, जिसका अर्थ है "डिम-डिम" की ध्वनि निकलना है, लेकिन इन रचनाओं में ऐसी कोई ध्वनि नहीं मिलती है। एक दूसरे विद्वान् 'डगल' से इसकी उत्पत्ति मानते हैं- जिसका अर्थ है "दपोक्तियाँ।" इनका कहना है कि "पिंगल" साम्य के कारण यह शब्द "डींगल से "डिगल" हो गया। यह भाषा चारणों के सार्वया उपयुक्त थी, क्योंकि वे उच्च स्वर से अपनों कविता पढ़ा करते थे और इस प्रकार की नाद सम्पन्न भाषा के अभाव में अभीष्ट सिद्धि नहीं हो सकती थी।

6. प्रवन्धात्मकता और मुक्तकात्मकता वीरगाथा काल की रचनाओं, के दो मुख्य रूप प्राप्त होते थे, वे है- (1) प्रबन्ध (ii) मुक्तक में जीवन के कतिपय महत्वपूर्ण अंशों को डॉ उभार कर दिखाया जाता है। इस प्रकार के काव्य में अब्दुडमान का 'सन्देश रासक' लिया जाता है। पृथ्वीराज रासों में जीवन के समय आरोहों-अवरोहों का चित्रण है। यह रचना प्रवन्य को दृष्टि से श्रेष्ठतम रचना है। अतः दोनों ही प्रकार की रचनाएँ इस काल में प्राप्त होती हैं।

7. प्रकृति चित्रण-आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में इन रासों अन्यों में प्रकृति निरूपण किया गया है। नदी, वन, पर्वत आदि का वस्तु वर्णन भी शोभनीय और आकर्षक बन पड़ा है। प्रकृति चित्रण के स्वतन्त्र-स्थल इन काव्यों में बहुत थोड़े मिलते है। अधिकतर उसका उपयोग प्रकृति चित्रण के निर्मित किया गया है। प्रकृति चित्रण की जिस उदात्त शैली के दर्शन छायावादी युग में होते हैं, इस काल की रचनाओं में नहीं मिलते हैं।

8. रासो ग्रन्ध-इस साहित्य के सभी ग्रन्थों के नाम के साथ रासो शब्द जुड़ा हुआ है जो कि "काव्य" शब्द का पर्याय है। कुछ लोग रासो का सम्बन्ध 'रहस्य' या "रसायन" शब्द से जोड़ते हैं, किन्तु यह भ्रामक है। मूल रूप से रास एक छन्द है। जिसका प्रयोग अपभ्रंश के सन्देश रासक में मिलता है। बाद इसका प्रयोग गेय रूपक के अर्थ में होने लगा था।

9. जन सम्पर्क का अभाव-इस ग्रन्थों में सामन्ती जीवन का चित्र उभर कर आया है। इनका जन-जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। राज दरबारी कवि से जन-जीवन के चित्रणः की आशा नहीं की जा सकती थी। वीरगाथाओं तथा रीति ग्रन्थों में "स्वामिन सुखाय" काव्यों की सृष्टि की गयी है। अतः साधारण जन-जीवन के घात-प्रतिधातों का चित्रण इसमें नहीं हो सका है। 10. छन्दों का बहु आयामी प्रयोग इस साहित्य में छन्दों का जितना बहुमुखी प्रयोग किया है उतना इनके पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं। दोहा, तोटक, तोमर, गाहा, गाथा, पट्टरि, आर्या, सट्टक, रोला, उल्लाला, कुण्डलियाँ आदि छन्दों का प्रयोग इस साहित्य. में बड़ी कलात्मकता के साथ किया है। इस छन्द विपर्यय में अस्भाविकता नहीं है। इस साहित्य का ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से विशेष महत्व है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह साहित्य अत्यन्त उपादेप है। इसमें वीर तथा श्रृंगार का सुन्दर परिपाक बन पड़ा है। अन्य उपलब्धियाँ- आदिकालीन साहित्य में पद्य के साथ-साथ पद्य की रचनाएं भी मिलती हैं। ऐसी गद्य-रचनाओं में राठरबेल, उक्ति-व्यक्ति प्रकरण और वर्णन रत्नाकार के नाम विशेष उल्लेखनीय है। राउवेल का रचनाकाल 10 वीं शताब्दी माना गया है। यह गद्य-पद्यः मिश्रित चम्यु काव्य की प्राचीनतम् हिन्दी कृति है। इसकी रचना राउल नायिका के नखशिख वर्णन के प्रसंग में हुई है। प्रारम्भ में तो कवि ने राउल को सौन्दर्य का वर्णन पद्य में किया है, किन्तु बाद में गद्य का प्रयोग किया गया है। इस गद्य-पद्य मिश्रित कृति का लेखक रोड़ा नामक व्यक्ति माना जाता है। राउरबेल से हिन्दी में मख-शिख वर्णन की श्रृंगार परम्परा आरम्भ होती है। इसकी भाषा में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य सात भाषाओं के शब्द उपलब्ध होते हैं। डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य का इतिहास में डॉ. रामगोपाल शर्मा "दिनेश" ने लिखा है कि इस कृति में कवि ने

विषय-वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है। नायिका राउल का श्रृंगार आकर्षण से भरा हुआ है। पच में ही नहीं, गद्य में भी आलंकारिक भाषा का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है। उक्ति-व्यक्ति प्रकरण-इस पुस्तक की रचना महाराज गोविन्दचन्द्र के सभा पंडित दामादोर शर्मा ने 12 वीं शताब्दी में की थी। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, उक्ति व्यक्ति- प्रकरण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्याकरण ग्रन्थ है। इससे बनारस और आसपास के प्रदेशों की संस्कृति और भाषा आदि का पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और उस युग के काव्य रूपों के सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत जानकारी मिलती है।" इस ग्रन्थ में गद्य और पद्य दोनों शैलियों की स्थिति देखी जा सकती है। वर्णन रत्नाकार-मैथिली हिन्दी में रचित गद्य की यह कृति डॉ. सुनीत कुमार चटर्जी और पं. बधुआँ मिश्र के सम्पादन में बंगाल-ऐशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित हो चुका है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, इसकी रचना 14 वीं शताब्दी में हुई होगी। इसका लेखक ज्योतिरिश्वर ठाकुर नामक मैथिल कवि था। इसकी भाषा में कवित्व, आलंकारिकता तथा शब्दों की तत्समता की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। गद्य भाषा में भी इस ग्रन्थ के अन्तर्गत गद्य धारा का प्रवाह स्पष्ट दिखाई देता है। मूल्यांकन-हिन्दी साहित्य का आदिकाल अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें भाषा रूप और सम्प्रेषण क्षमता, कथ्य और शिल्प की विविधता देखने को मिलती है। यह वह काल है जिसमें जन-जीवन की अनुभूतियों को विविधता के साथ चित्रित किया गया है। आदिकाल की सभी साहित्यिक विशेषताएँ इस काल की उपलब्धि हैं। काव्य रचना की दो महत्वपूर्ण शैलियों का प्रयोग भी इसी काल में हुआ था, जिन्हें हम डिंगल और पिंगल के नाम से जानते हैं। सारांश यह है कि आदिकालीन हिन्दी साहित्य अपभ्रंश साहित्य के समानान्तर विकसित हुआ है। इस युग में हिन्दी भाषा जन-जीवन से रस लेकर आगे बढ़ी है। जीवन के विविध पक्षों का इस साहित्य में चित्रण हुआ है। यही वह साहित्य है, जिसने परवर्ती कालों के लिए अनेक परम्पराएँ डाली और भविष्य का पथ निर्मित किया।

4.5 भक्तिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

उत्तर- मध्यकाल का पूर्ववर्ती समय भक्तिकाल के नाम से पुकारा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को संवत् 1957 से 1700 तक माना है। इस काल में पराजित हिन्दू जाति का ध्यान वीर भावना से ईश्वरोपासना की ओर लग गया था। आदिकाल के अन्तिम चरण में जब हिन्दूराजा लगभग पराजित हो गये तो युग की धारा भी बदलने लगी। कवियों ने ईश्वर के प्रभाव और गुरु महिमा का गायन प्रारम्भ कर दिया। एक नई काव्यधारा, भक्तिधारा के रूप में प्रवाहित होने लगी।

ऐतिहासिक परिस्थिति एवं प्रभाव आदिकाल की अशांति, लड़ाई-झगड़े और राजनीतिक आँधी धीरे-धीरे शान्त हो गई। लांगों को दम लेने का अवकाश मिला। राजपूतों कवि शक्ति का लगभग हास ही चुका था। मुसलमानों की जीत पर औल ने उनमें निराशा क भाव पैदा कर दिया था। ये अब नवीन परिस्थितियों में जीवित रहने। रक्षा के साथ परम्परा को बचाने के लिए दूसरी और मुस और अपने स्वाभिमान की बाद अपने पैर जमा चुके जेब शिवान देश के लोगों से सम्पर्क चाहते थे और राज्य संचालन के लिए स्थायी शक्ति चाहते थे। दानी और शान्ति की लालसा थी। ऐसे समय में वीरगाथाओं का कोई महत्व नहीं होता। नई परिस्थितियों में हिन्दुओं की चिन्तन दिशा भी बदलने लगी। ये अब देश की सांस्कृतिक परम्परा की और विचार करने लगे। ये सोचने लगे निक धर्म ऐसा स्वरूप धारण करें जिसका विधर्मी खण्डन न कर सकें। दोनों और मिलन और भई चेतना के भाव विकसित हो रहे थे। यहीं यह न समझा जाय कि हिन्दी का भवितकारत मुसलमानी से प्रभावित था, हमारे कर्मवयी के पास अपनी ही सामग्री पर्याप्त था। वदान्तों के गुरुत्तम रहस्य एकेश्वरवाद की स्थापना में सक्षम थे। उन्हें दूसरों से कुछ लेना-देना नहीं था। हां, इतना अवश्य हुआ था कि मुसलमानी के आगमन ने हिन्दुओं को सोचने-समझने और नई दिशा लेने के लिए उत्तेजित किया। ऐसी परिस्थिति में हिन्दू जनता को भावना भगवान की ओर झुकी। दक्षिण भारत से भक्ति की एक प्रबलधारा फूट पड़ी। इसके साथ ही इस काल के चिन्तकी में जो मूल विचारधाराएँ काम कर रही थी, उनमें प्रमुख थी-भारतीय संस्कृति की ज्ञान धारा का पुनः स्थापना और अन्वी के साथ समन्वय की आकांक्षा। इस प्रकार इन प्रवृत्तियों के अनुसार काव्यों में भी नवीन धाराएँ प्रवाहित होने लगी।

4.6 भक्तिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ

* भक्ति के इस महान् साहित्य में कुछ ऐसी समान भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जो निर्गुण में रखी गई हैं। भक्ति साहित्य में पाई जाने वाली समान भावनाएँ निम्न प्रकार है—

1. नाम महात्म्य-सभी भक्त कवियों ने नाम की महत्ता को राम स्वीकार किया है तथा उसे साधना मार्ग का महत्वपूर्ण अंग बताया है। तुलसी ने भी नाम को राम से बड़ा माना है। नाम में निर्गुण-सगुण दोनों का समन्वय हो जाता है। दृष्टव्य है-

निर्गुण की सेवा करी, सगुण की करी ध्यान।

निर्गुण सगुण से परे, तहाँ हमारा ध्यान।"

2. गुरु के प्रति भक्तों की आस्था-सभी भक्त कवियों ने गुरु का महत्व भी स्वीकार किया है और उसे भगवान के सदृश बताया है। कबीरदासजी ने ती स्थान-स्थान पर गुरु की महिमा का वर्णन किया है तथा भगवान से भी बड़ा कहा है-

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पांय।
बलिहार या गुरु की, जिन गोविन्द दिया मिलाय।।"

तुलसीदास, जायसी, सूरदास आदि कवियों ने भी गुरु की महिमा का गान किया है। 3. भक्ति-भावना का प्राधान्य-सी कवि अपने आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति एवं प्रेम की भावना रखते हुए साधना करने वाले हैं। निर्गुण ईश्वर के उपासक होते हुए भी भक्ति को प्रधानता दी है-

"हरि भक्ति जाने बिना, बूदि मुआ संसार।" सूरदासजी गोषियों द्वारा उद्धव को कहलाते हैं-

"बार-बार यह वचन निवारो, भक्ति विरोधी ज्ञान तिहारो।"

तुलसीदास तो समन्वयवादी थे ही ये ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं बतलाते हैं- "ज्ञानहि भक्तिहिं नहि कुछ भेदा, उभय हरहि भव सम्भव खेदा।"

4. अहं तथा ममता का त्याग किसी भी भक्त कवि के हृदय में अहंभाव का विकार नहीं है। अहंकार का परित्याग इन भक्तों की परम विशिष्टता है। कबीरदासजी के एक दोहे में दृष्टव्य है-

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहि। प्रेम गली अति साँकरी, जा में दो न समाहिं ।।

5. सत्संगति माहात्म्य-निर्गुण सगुण दोनों के उपासक कवियों ने सत्संगति को विशेष महत्व दिया है। सूरदास ने दुर्जनों की संगति को त्याज्य बताया है- 'तजौ मन हरि विमुखनि की संग' रामचरित मानस तो सतसंग की महिमा से भरा पड़ा है।

6. शस्त्र ज्ञान की अपेक्षा लोक व्यवहार के ज्ञान का प्राधान्य-कबीर ने तो ढाई अक्षर प्रेम को महत्ता देते हुए पोथियों के ज्ञान को निरर्थक कहा है- पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित हुआ न कोय। तुलसी ने भी केवल 'वाक्य ज्ञान' को अपर्याप्त समझा है 'वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण भख पार न पावे कोई' (विनयपत्रिका) सूर की गोपियाँ भी प्रेम के नीजि अनुभव को ही प्रधानता देती है।

7. संसार की निस्सारता - भक्तिकालीन कविता में दार्शनिक पृष्ठभूमि का महत्व एकदम सुस्पष्ट है। जैन भक्ति काव्य में संसार की असारता पर विशेष बल दिया गया है। अतः उसमें शान्त रस की प्रधानता परिलक्षित होती है।

8. भक्ति साहित्य में दार्शनिकता सभी भक्तों ने अपने-अपने मत के अनुसार जीव, ब्रह्म, माया, ईश्वर की प्रकृति आदि की विवेचना की है, जिनमें जायसी और कबीर के ब्रह्म, निर्गुण और निराकार हैं, जबकि सूर और तुलसी के ब्रह्म सगुण और साकार हैं तथा जीव भी उस परम ब्रह्म का ही अंश है जो अन्त में उसी में विलीन होता है।

9. साधना मार्ग-सभी भक्तों का एकमात्र लक्ष्य माया से मुक्ति एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए अपने-अपने मतानुसार साधन-सम्पत्ति का सम्पादन करना है। जायसी का साधन मार्ग, प्रेम मार्ग है। सन्त कबीर का साधना मार्ग, ज्ञान मार्ग है। सूर का साधना मार्ग प्रेम लक्षण भक्ति है तो तुलसी का साधना मार्ग सेवा भाव की वैधी भक्ति है। सूर और तुलसी दोनों में नवदा भक्ति का भी आश्रय लिया है इन सभी साधना मार्गों का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है।

10. भक्ति साहित्य में समन्वय की भावना-इस युग के सभी भक्त कवियों की रचनाओं में गमात्र, धर्म एवं आचार-विचारों में परिलक्षित विरोधी विचारधाराओं का समन्वय प्रतिपादित किया है। ज्ञान और भक्ति, का निर्गुण और सगुण का, वैष्णवों और शैवों

का तथा आध्यात्म और योग का समन्वय विवेषतः अवलोक्य है। तत्कालीन समाज की उक्त प्रवृत्तियों के अनुसार काव्यों में भी अनेक धारायें प्रवाहित होने लगीं। ये धारायें इस प्रकार हैं-

भक्तिकाल
निर्गुण धारा
ज्ञानश्रय शाखा
प्रेममार्गी शाखा
सगुण धारा
रामभक्ति शाखा
कृष्णभक्ति

शाखा

4.7 निर्गुण भक्तिकाव्य का परिचय

निर्गुण भक्ति काव्य धारा

मिश्रबन्धुओं के पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में मध्यकालीन साहित्य का विभाजन दो भागों में किया है- पूर्व मध्य काल (सं. 1375 से 1700) और उत्तर-मध्यकाल सं. 1700 से 1900। पूर्व मध्यकाल को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल की संज्ञा दी है। इस पूर्व मध्यकालीन साहित्य का विभाजन उन्होंने निर्गुणाधारा और सगुणधारा में किया है। निर्गुण धारा का अध्ययन उन्होंने दो उपधाराओं के अन्तर्गत किया है ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमामार्गो (सूफी) शांखा। इसी प्रकार सगुण धारा का अध्ययन भी उन्होंने राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा के अन्तर्गत किया है। निर्गुण धारा में ब्रह्म के निर्गुणा स्वरूप की उपासना के प्रति आग्रह भाव व्यक्त किया गया है। ज्ञानमागों शाखा में निर्गुण ब्रद्ध की उपासना ज्ञान के माध्यम से प्रस्तावित है और प्रेममार्गी शाखा में निर्गुण ब्रह्म की उपासना प्रेम के माध्यम से प्रस्तावित है। सगुण धारा के ब्रह्म के सगुण रूप की उपासना के प्रति आल्ल्या भाव व्यक्त मिलता है। इसकी एक धारा में सगुण ब्रह्म की उपासना राम के रूप में और दूस्ती धारा में सगुण ब्रह्म की उपासना के रूप में वर्णित हैं।

निर्गुण काव्य-निर्गुण काव्य से तात्पर्य भक्तिकाल के अन्तर्गत विकसित उस काव्य धारा से है जो ज्ञानाश्रित होकर सृष्टि के नियामक और सर्वशक्तिमान ईश्वर के प्रति भी आत्त्यावत रही है और सामाजिक जीवन में लोकमंगल की स्थापना करती रही है। जिन्हें हम निर्गुगा भक्ति कवियों के नाम से जानते हैं, उनमें सन्त कवि और सूफी कवि आते हैं सन्त कवियों ने अपनी ज्ञानात्मक साधना से प्रेरित होकर जिस साहित्य की सृष्टि की है वह निर्गुण चेतना का साहित्य है। इस साहित्य में गुरु का महत्व, ईश्वर में विश्वास, रूढ़ियों का विरोध, विषय-वासनाओं के प्रति विरक्ति ब्रह्मचारों का विरोध, मूर्तिपूजा का विरोध और विश्व मानवतावाद की स्थापना का प्रयत्न दिखलाई देता है। इस प्रकार के काव्य में प्रमुख रचयिताओं और महात्मा कबीर दास का नाम लिया जा सकता है।

निर्गुण भक्तिकाव्य के अन्तर्गत ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को महत्व देने वाले सूफी कषियों को भी महत्व प्राप्त है। सूफी साधनों सन्तों की साधना से कुछ बातों में समानता रखते हुए भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व लेकर आई है। यद्यपि सूफी कवियों ने भी गुरु को ही महत्व दिया है, ईश्वर में विश्वास प्रकट किया है, जीवन के प्रति माँगलिक दृष्टिकोण अपनाया है और सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की, किन्तु फिर भी उन्होंने ज्ञानमार्गियों की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्व दिया है। इस काव्य धारा के प्रमुख कवि के रूप में प्रचारक और असली पीर के व्याख्याता मल्लिक मोहम्मद जायसी का नाम लिया जा सकता है। निर्गुण भक्ति-काल में कबीर और जायसी दोनों का महत्व. बराबर है और लगभग वैसा ही है जैसा कि सगुण भक्ति में सूरदास और तुलसीदास जी का है। संतों में प्रतिनिधि कबीर है। और सूफियों के प्रतिनिधि जायसी है। इन दोनों ने आपले सहयोगियों के साथ-साथ निर्गुण काव्य का सृजन किया है।

निर्गुण काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ निर्गुण काव्य धारा की प्रमुख विशेषताएँ या प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है-

1. निर्गुण भक्ति का मूल तत्व है-निर्गुण-सगुण से परे अनादि, अनन्त, अज्ञान ब्रह्म का नाम जप। निर्गुण काव्यधारा के कवियों का प्रमुख विश्वास है कि उस अनन्त, अनन और अज्ञात बड़ा के नाम के जपने से ही सहारे सांसारिक संशय और बंधनों से मुक्ति मिल जाती है यह ग्राम ही भी भक्ति का प्रेरक और मुक्ति का दाता है। कबीर व जायसी सभी ने नाम जप को महत्व दिया है और प्रतिपादित किया है कि नाम जप से मनुष्य सभी सांसारिक बाधाओं संशयों से छुटकारा पाकर पवित्र मन् वाला हो जाता है।

2. निर्गुण काव्य की दूसरी विशेषता मानसिक भक्ति की प्रधानता है। संतों ने भक्ति को आडम्बर विहीन माना है और उसका सम्बन्ध हृदय की पवित्रता से जोड़ा है। यही कारण है कि रात भाष्य में वैष्णवी की नवधा भक्ति का कर्मकाण्ड सम्मत तथा परम्परा सनमर्थित रूप नहीं मिलता है। सप्त मत की सार्थकता ही इसमें है कि उसने साधना मार्ग को व्यावहारिक और माल स्वरूप प्रदान किया।

3. निर्गुण भक्ति पद्धति का तीसरा मूल तत्व-प्रेम के सहारे कर्मकाण्ड की दुरूहताओं का निराकरण करना है। निर्गुण काव्यधारा में कर्मकाण्ड का जो दुरूह पक्ष है उसे प्रेम की रस पगों अनुभूतियों से सरस बनाने का अद्भुत एवं अद्वितीय प्रयास इस काव्य धारा में किया गया है। सन्त कबीर ने इसी भाव से प्रेरित होकर लिखा है कि-

हरिरस पीया जानिये, कबहुँ न जाय खुमार " मेमंता घूमत
फिर, नाहिन तन की सार।।"

4. निर्गुण भक्ति की चौथी विशेषता है-मानव जाति को विश्व धर्म में खड़ा करना।

तात्पर्य यह है कि इसका तात्पर्य कवियों ने जाति, वर्ण और वर्ग सम्बन्धी सभी भेदभावों को दूर करने का सफल प्रयास किया है। भक्ति का अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति है। साधना के मन्दिर में किसी का प्रवेश न ती निषिद्ध है और न ही अनौचित्यपूर्ण। इसी भावना से प्रेरित होकर निर्गुण कवियों ने जहाँ जाति-पाति के भेदभाव का विरोध किया है वहीं रूढ़ियों का और बाहरी आडम्बरों का भी विरोध किया है।

5. सहज साधना पर समूचे निर्गुण काव्य में महत्व दिया है। "सन्तों की भक्ति प्रणाली ॥ आनन्द और शान्ति से संयुक्त शुद्ध अन्तःकरणी की यह स्वाभाविक शक्ति है जहाँ कृत्रिमता स्वतः विलीन हो जाती है। सहज साधना का यह मार्ग सर्वथा अभिनव और क्रान्तिकारी था। उसमें धार्मिक जीवन और दुरूहताओं को सदैव के लिए हटा दिया गया है।" 6. गुरु की महत्ता को समुचे निर्गुण काव्य में एक मत से स्वीकार किया गया है।

संत सम्प्रदाय तो विश्व सम्प्रदाय था ही उसमें हृदय की पावनता पर पूरा बल है। पवित्र हृदय

से इच्छा, द्वैष व वासनाहीन होकर ही निर्गुण की भक्ति की जा सकती है, किन्तु इसमें पूर्णत्व

तभी आता है, जबकि 'सद्गुरु' की कृपा होती है।

निर्गुनिए कवियों ने गुरु की महत्ता को इस प्रकार स्यष्ट किया है-

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पाय।

बलिहारी गुरु आपणे जिन गोविन्द दियो बताय।"

कुछ विद्वानों का मत है कि निर्गुणियों सन्तों में यह गुरुवाद् सूफियों की खिलाफत से आया है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में भी गुरु अथवा आचार्य का महत्व केवल ज्ञानदाता के रूप में स्वीकृत है। सूफी मत के समान यह मुक्ति प्राप्ति का साधन नहीं है।

7. निर्गुणीय कवि बाधक रहे हैं। उनका साधन पथ विविध प्रभायों से प्रभावित है। इन सः ने हठयोग, भारतीय अद्वैतवाद और वैष्णयी अहिंसा भावना को समान रूप से स्वीकार किया है। दोनों का अर्थात् सन्तों और सूफियों का ईश्वर निराकार है। अतः इन कवियों ने यह स्वीकार किया है कि ईश्वर को प्राप्त करने का सभी को समान अधिकार है।

8. निर्गुण व्यय हिन्दू मुसलमानों में एकता की प्रतिक्षा के লিও চুলা ৬। चाहा जबकि सूफियों ने दोनों जातियांकृतिक एकता के द्वारा उसे पूरा किया। इस दिशा में सुधियों की अधिक सत्ता मি০॥

9. निर्गुणा व्य में बাজা, আ জীবাস শ্রী প্রায়সা প্রশ্ন তা জান্তা में कनक' और 'आमिनी' की माया का प्रतीक माना है और उपाय बताया है। বৃদ্ধির में साधक श्री प्रेम परीक्षा के लिए, রথা তাই সুরুরা তামল करने के लिए शैतान की आवक स्त्रीचाली है।

10. निर्गुण काव्य में अव्यक्त सत्ता की प्राप्ति का जी संकेत मिलता है उसे आ काव्य ग्रहस्यवादी हो गया है। आवार्ष शुक्ल का कहना है कि निर्गुणवादी सूफियी कार शुद्ध भावात्मक भौटि में आता है, जबकि निर्गुणवादी सन्तों का रहस्यवाद यानাচ্চ সং में आता क्योंकि उसमें त्रिविध यौगिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का स् उल्लेख मिलता है।

11. निर्गुण काव्य में विरह का उन्मुक्त भाव से गायन किया है। इस काव्य में अनु कसक और बेदना दिखाई देती है। सूफियों का विरह विश्वव्यापी है तथा सूर्य औং অনুধ और सत्र उसी के विरह में जलते दिखाई देते हैं। जहाँ तक सन्ती में जिरह भावना आ है यह व्यापक नहीं है, किन्तु गहरी अवश्य है। इस प्रकार हिन्दी का निर्गुण काव्य अपने হয়ে आका एक महत्वपूर्ण काव्य है। इस बालय के अन्तर्गत सन्तों और यूफियों की जी प्रवृति मिल्ल हैं वे अधिकांश बातों में समानता रखती हैं और अधिकांश सन्दर्भ ऐसे हैं जो यह प्रकट करते है कि इनमें कुछ अन्तर है।

निष्कर्ष-उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य या भक्तिकाल निर्गुण और सादगी दी धाराओं में विभाजित है। निर्गुण धारा पुनः सन्तीं और यूधियों के क में विभक्त हो गयी है। इन सन्तीं और सूफियों ने जो साहित्य लिखा है यह विश्व मानवता भक्तिभावना, गुरु महता, लोक मंगल की स्थापना और ईश्वर में विश्वास को जगाने वाला है। निश्चय ही भक्तिकाल का निर्गुण काव्य अपने में अनूठा, महत्वपूर्ण और अनेक उपलब्धिय से युक्त है। यह वह काव्य है जो पाठक की उस विश्वात्म और सांस्कृतिक एकता की ओ से जाता है जिसकी आवश्यकता उस समय भी थी और आज भी है निश्चित रूप से है।

4.8 सारांश

मध्यकाल का पूर्ववर्ती समय भक्तिकाल के नाम से पुकारा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को संवत् 1957 से 1700 तक माना है। इस काल में पराजित हिन्दू जाति का ध्यान वीर भावना से ईश्वरोपासना की ओर लग गया था। आदिकाल के अन्तिम चरण में जब हिन्दूराजा लगभग पराजित हो गये तो युग की धारा भी बदलने लगी। कवियों ने ईश्वर के प्रभाव और गुरु महिमा का गायन प्रारम्भ कर दिया। एक नई काव्यधारा, भक्तिधारा के रूप में प्रवाहित होने लगी।

ऐतिहासिक परिस्थिति एवं प्रभाव आदिकाल की अशांति, लड़ाई-झगड़े और राजनीतिक आँधी धीरे-धीरे शान्त हो गई। लांगों को दम लेने का अवकाश मिला। राजपूतों कवि शक्ति का लगभग हास ही चुका था। मुसलमानों की जीत पर औल ने उनमें निराशा क भाव पैदा कर दिया था। ये अब नवीन परिस्थितियों में जीवित रहने। रक्षा के साथ परम्परा को बचाने के लिए दूसरी और मुस और अपने स्वाभिमान की बाद अपने पैर जमा चुके जेब शिवान देश के लोगों से सम्पर्क चाहते थे और राज्य संचालन के लिए स्थायी शक्ति चाहते थे। दानी और शान्ति की लालसा थी। ऐसे समय में वीरगाथाओं का कोई महत्व नहीं होता। नई परिस्थितियों में हिन्दुओं की चिन्तन दिशा भी बदलने लगी। ये अब देश की सांस्कृतिक परम्परा की और विचार करने लगे। ये सोचने लगे निक धर्म ऐसा स्वरूप धारण करें जिसका विधर्मी खण्डन न कर सकें। दोनों और मिलन और भई चेतना के भाव विकसित हो रहे थे। यहीं यह न समझा जाय कि हिन्दी का भवितकारत मुसलमानी से प्रभावित था, हमारे कर्मवयी के पास अपनी ही सामग्री पर्याप्त था। वदान्तों के गुरुत्तम रहस्य एकेश्वरवाद की स्थापना में सक्षम थे। उन्हें दूसरों से कुछ लेना-देना नहीं था। हां, इतना अवश्य हुआ था कि मुसलमानी के आगमन ने हिन्दुओं को सोचने-समझने और नई दिशा लेने के लिए उत्तेजित किया। ऐसी परिस्थिति में हिन्दू जनता को भावना भगवान की ओर झुकी। दक्षिण भारत से भक्ति की एक प्रबलधारा फूट पड़ी। इसके साथ ही इस काल के चिन्तकी में जो मूल विचारधाराएँ काम कर रही थी, उनमें प्रमुख थी-भारतीय संस्कृति की ज्ञान धारा का पुनः स्थापना और अन्वी के साथ समन्वय की आकांक्षा। इस प्रकार इन प्रवृत्तियों के अनुसार काव्यों में भी नवीन धाराएँ प्रवाहित होने लगी।

4.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- भक्तिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय देते हुए उसकी विशेषताएँ बताइये ।
- भक्तिकालीन काव्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए इस काल की सामान्य विशेषताएँ बताइये ।
- भक्तिकालीन हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय दीजिए।
- आदिकाल की प्रमुख प्रतियों पर प्रकाश डालते हुए किसी एक तत्कालीन रचनाकार की विशेषताएँ रेखांकित कीजिए।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रवृतियों का विषेचन करते हुए इस काल की परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए।
- आदिकालीन साहित्य पर तत्कालीन परिवेश के प्रभाव की चर्चा कीजिए।
- 'बीरगाथा काल' के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों और उपलब्धियों का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
- भक्तिकालीन काव्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए इस काल की सामान्य विशेषताएँ बताइये ।
- भक्तिकालीन हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय दीजिए।
- आदिकालीन साहित्य पर तत्कालीन परिवेश के प्रभाव की चर्चा कीजिए।
- 'बीरगाथा काल' के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों और उपलब्धियों का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
- आदिकाल की प्रमुख प्रतियों पर प्रकाश डालते हुए किसी एक तत्कालीन रचनाकार की विशेषताएँ रेखांकित कीजिए।

4.10 पठनीय पुस्तकें

1 कवीर ग्रंथावली- सं. डॉ० श्याम सुंदर दास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2 जायगी ग्रथावली सं आचार्य रामचंद्र शुक्ल- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

3 हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि- डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना- श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4 हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ० नगेन्द्र व डॉ० हरदयाल मयूर मुक्र, नई दिल्ली
5 विद्यापति पदावली आनंद प्रकाश दीक्षित साहित्य मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर
6 हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7 पद्मावत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

UNIT 5

द्रुतपाठ के कवि - चन्दबरदाई, अमीर खुसरो, रैदास, गुरूनानक, नामदेव से सम्बधित लघुउत्तरीय प्रश्न।

रूपरेखा

5.1 प्रस्ताबना

5.2 उद्देश्य

5.3 शब्द सम्पदा

5.4 अमीर खुसरों का संक्षिप्त जीवन परिचय

5.5 अमीर खुसरो की प्रसिद्ध रचनाओं

5.6 सन्त दादू दयाल की विचारधारा

5.7 रैदास के जीवन का परिचय

5.8 देव का संक्षिप्त जीवन परिचय

5.9 विद्यापति के काव्य-सौन्दर्य पर संक्षिप्त लेख

5.10 जायसी का संक्षिप्त जीवन परिचय

5.11 सारांश

5.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

5.13 पठनीय पुस्तकें

5.1 प्रस्ताबना

अमीर खुसरो का जन्म 1310 में एटा (उत्तरप्रदेश) के पटियाली नामक कस्बे में हुआ था। लाचन जाति के तुर्क चंदेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर बलबन (1266- 1286 ई.) के राज्यकाल में शरणार्थी के रुप में भारत में आ बसे थे। खुसरों की माँ बलबन के युद्ध मंत्री इमादुतुल मुल्क की लड़की एक भारतीय मुसलमान महिला थी। सात वर्ष की अवस्था में खुसरो के पिता का देहान्त हो गया, किन्तु खुसरो की शिक्षा-दीक्षा में बाधा नहीं आयी। अपने समय के दर्शन तथा विज्ञान में उन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की, किन्तु उनकी प्रतिमा बाल्यावस्था से ही कव्योन्मुख थी। किशोरावस्था में उन्होंने कविता लिखना प्रारंभ किया और 20 वर्ष होते-होते वे कवि के रुप में प्रसिद्ध हो गये। जन्मजात कवि होते हुए भी खुसरो में व्यवहारिक बुद्धि की कमी नहीं थी। रैदास का समय 1388 से 1518 ई. के आस-पास का रहा होगा। अंतः साक्ष्य के आधार पर रैदास का चमार जाति का होना सिद्ध होता है- "नीचे से प्रभु आँच कियो है कह रैदास चमारा" आदि। संत रविदास काशी के रहने वाले थे। इन्हें यमानन्द का शिष्य माना जाता है देव के ग्रंथ के विषय में प्रथम महत्वपूर्ण उल्लेख शिवसिंह ने अपने 'सरोज' में किया है। उन्होने 72 संख्या का उल्लेख करके 11 के नाम गिनाये है-प्रेमतरंग, भावविलास, रस विलास, रसानन्द लहरी, सुजान विनोद, काव्य रसायन पिंगल, अष्टयाम, देवमाया प्रपंच नाटक, प्रेमदीपिका, सुमिल विनोद, राधिका विलास, (शि.स. पृ. 434)। मिश्रबन्धुओं के अनुसार "देव के ग्रंथों की संख्या 72 या 52 कही जाती है।" उन्होंने कुल 24 ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की, जिसमें 15 प्राप्त तथा 9 अप्राप्त माने है। शिवसिंह की सूची के अतिरिक्त निम्नलिखित 13 नाम इस प्रकार है- भवानीविलास, सुंदरीसिन्दूर, रागरत्नाकर, कुशलविलास, देवचरित्र, प्रेमचन्द्रिका, जातिविलास सुखसागर तरंग, वृक्षविलास, पास विलास, देवशतक, प्रेमदर्शन, शिवाष्टक। इसमें भारतेन् द्वारा किया हुआ देव के छन्दों का संग्रह सुंदरी सिन्दुर भी सम्मिलित है।

5.2 उद्देश्य

चन्दबरदाई को जान सकेंगे|

अमीर खुसरो को जान सकेंगे |

रैदास को जान सकेंगे

गुरूनानक को जान सकेंगे

नामदेव को जान सकेंगे

5.3 शब्द सम्पदा

चन्दबरदाई

अमीर खुसरो

रैदास

गुरूनानक

नामदेव

5.4 अमीर खुसरों का संक्षिप्त जीवन परिचय

उत्तर- अमीर खुसरो का जन्म 1310 में एटा (उत्तरप्रदेश) के पटियाली नामक कस्बे में हुआ था। लाचन जाति के तुर्क चंदेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर बलबन (1266- 1286 ई.) के राज्यकाल में शरणार्थी के रुप में भारत में आ बसे थे। खुसरों की माँ बलबन के युद्ध मंत्री इमादुतुल मुल्क की लड़की एक भारतीय मुसलमान महिला थी। सात वर्ष की अवस्था में खुसरो के पिता का देहान्त हो गया, किन्तु खुसरो की शिक्षा-दीक्षा में बाधा नहीं आयी। अपने समय के दर्शन तथा विज्ञान में उन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की, किन्तु उनकी प्रतिमा बाल्यावस्था से ही कव्योन्मुख थी। किशोरावस्था में उन्होंने कविता लिखना प्रारंभ किया और 20 वर्ष होते-होते वे कवि के रुप में प्रसिद्ध हो गये। जन्मजात कवि होते हुए भी खुसरो में व्यवहारिक बुद्धि की कमी नहीं थी। सामाजिक जीवन की उन्होंने कभी अवहेलना नहीं क्ली। जहाँ एक ओर उनमें एक कलाकार की उच्च कल्पनाशीलता थी, वहीं दूसरी ओर वे अपने समय के सामाजिक जीवन के उपयुक्त कूटनीतिक व्यवहार कुशलता में भी दक्ष थे। उस समय बुद्धिजीवी कलाकारों के लिए आजीविका का सबसे उत्तम साधन राज्याश्रय ही था। खुसरो ने भी अपना सम्पूर्ण जीवन राज्याश्रय में बिताया। उन्होंने गुलाम, खिलजी और तुगलक-तीन अफगान राजवंशों तथा 11 सुल्तानों का उत्थान-पतन अपनी आँखों देखा। आश्चर्य यह है कि निरंतर राजदरबार में रहने पर खुसरो ने कभी भी उन सामाजिक षड्यत्रों में किंचिमात्र भाग नहीं लिया जो प्रत्येक उत्तराधिकार के समय अनिवार्य रुप से होते थे। राजनीतिक दाँव-पेंच से अपने को सदैव अनासक्त रखते हुए खुसरो निरंतर एक कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे। खुसरो की व्यवहारिक बुद्धि का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि वे जिस आश्रयदाता के कृपापात्र और सम्मानभाजन रहे, उसके हत्यारे उत्तराधिकारी ने भी उन्हें उसी प्रकार आदर और सम्मान प्रदान किया। 1380 ई में उनका देहान्त हो गया।

5.5 अमीर खुसरो की प्रसिद्ध रचनाओं

उत्तर- अमीर खुसरो मुख्य रुप से फारसी के कवि है। फारसी भाषा पर उनका अप्रतिम अधिकार था। उनकी गणना महाकवि फिरदोसी, शेख सादिक और निजामी फारस के महाकवियों के साथ होती है। फारसी काव्य के लालित्य और मार्दव के कारण ही अमीर खुसरो को हिन्दी की तूती कहा जाता है। खुसरो का फारसी काव्य चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- ऐतिहासिक मसनवी जिसमें किरानुससादैन, मिफतोलफतह, देवलरानी, खिल्जी खाँ, नूहसिपहर, और तुगलक़नामा नाम की रचनाएँ आती है; रोमण्टिक मसनव-जिसमें मतलऊ लअनवर, शिरीन खुसरो, आईन-ए-सिकन्दरी, मजनू-लैला और हश्त विहश्त गिनी जाती है, दीवान-जिसमें तुहुफ तुस सिगहर, वास्तुलहयात आदि ग्रंथ आते है। गद्य रचनाएँ- एजाजयेखुसरवी और खजाइनुलफतह तथा मिश्रित, जिसमें वेदऊलअजाइव, मसनवी शहरअसुव, चिश्तान और खालितबारी नाम की रचनाएँ परिणित है।

5.5 अमीर खुसरो की प्रसिद्ध रचनाओं

उत्तर- दादू का जन्म सन् 1544 ई में अहमदाबाद में हुआ था। इनकी जाति के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अकबर कालीन प्रसिद्ध इतिहासकार मुहसन फनी ने इनकों धनियाँ कहा है। विल्सन भी इन्हें धूनियाँ ही मानते है। तारादत्त गौरोला रज्जब की सयोगी एक पद "धनी गर्नेउत्पत्री देवेन्द्रों महामुनिः" के साक्ष्य पर इन्हें धुनियाँ मानते है। स्वामी दर ने इन्हें तेली का कार्य करने वाला कहां है। सुधाकर द्विवेदी ने मोची बताया है। बाउलो के एक वन्दना काव्य-"श्रीयत दाऊद बन्दि दाद यार नाम" के आधार पर इनका वास्तविक नाम दाऊद मानकर इन्हें मुसलमान स्वीकार करते है। दादूपंथ के कुछ लोग इन्हें लोदीराम नग ब्राह्मण का औरस पुत्र मानते है और कुछ लोग उनके द्वारा मात्र पालित स्वीकार करते है। जीवनलीला परची के अनुसार अहमदाबाद के एक सौदागर लोधीराम शाह ने इन्हें संतों के आशीर्वादस्वरुप साबरमती नदी में तैरता हुआ पाया था। ऐसी स्थिति में इनकी जाति और पेशे कहा जा सकता। ऐसा लगता है कि ये भी समाज के निचले स्तर से ही आये थे। ।क्षितमोहन इनके गुरु का

नाम बुड्ढन था। विल्सन बुड्ढन को कबीर की वंश परम्परा में स्वीकार करते हुए इन्हें भी कबीर का ही वंशज मानते है। सुधाकर द्विवेदी इन्हें कबीर के पुत्र कमाल का रिय बताते है। पीताम्बरादत्त बड़थ्वाल विल्सन से सहमत है। परशुराम चतुर्वेदी सन् 1562 के आसपास बुड्ढन नामधारी किसी ऐतिहासिक व्यक्ति की स्थिति न मानते हुए विल्सन के मत को निराधार स्वीकार करते है। दादूपंथी वुड्डन से साक्षात् भगवान का अर्थ लेते है और 11 वर्ष की अवस्था में भगवान ने वृद्ध महात्मा के रुप में बालक दादू को दर्शन दिया था, ऐसा मानते है।

प्रसिद्ध है कि दादू दयाल ने गृहस्थ जीवन बिताया था। इनके जीवन के प्रारंभिक दिन अहमदाबाद में व्यतीत हुए। 30 वर्ष की अवस्था में ये साँभर आये। यही 32 वर्ष की अवस्था में इनके पुत्र गरीबदास का जन्म हुआ। इनके दूसरे पुत्र का नाम मिस्कीनदास था इनकी दो पुत्रियाँ-नाना बाई और माताबाई भी थी। जीवन परची के सम्पादक सुखदयाल और दादू वाणां के सम्पादक मंगलदास इन्हें गृहस्थ नहीं मानते। इन लोगों का कहना है कि गरीबदास और मिस्कीनदास इनके औरस पुत्र नहीं थे, बल्कि इनके आशीर्वाद से उत्पन्न हुए थी। नानाबाई इनकी माता का नाम था। दोनों बाई इनकी पुत्रियाँ नहीं, इनकी शिष्याएँ राजकुमारी और श्यामकुमारी थीं। इन लोगों ने किस आधार पर ऐसा कहा है, यह स्पष्ट नहीं है। कम से कम जीवनपरची से इन मान्यताओं का समर्थन नहीं होता। इनकी मृत्यु सन् 1603 में हुई।

5.6 सन्त दादू दयाल की विचारधारा

उत्तर- दादू की वाणी कबीर की टक्कर की मानी जाती है। उन्होंने भी कबीर की भांति अपने उपास्य पग्मतत्व को अलख, अनादि, गुणातीत, अप्रमेय, पूर्ण, निश्चल, एकरस, निरंजन और निराकार माना है। उनकी साधना में भी वैष्णवों को अहिंसा, योगियों का चित्तवृति निरोध • सूफियों की प्रेम-साधना और पूर्ववर्ती संतों के शब्द योग का समन्वित उत्कर्ष देखा जा सकता है। गुरु गोविन्द की एकता, नाम माहात्म्य, आत्म-समर्पण की भावना, संसार का मिथ्यात्व, सामान्य संसारी जीवों की माया-बद्धता, अव्यक्त के प्रति उत्कट राग और उसके विरह की तीव्र अनुभूति, पिण्ड ब्रह्माण्ड की एकता, अन्तस् में सतय का सन्निवेश और उच्च नैतिक जीवन की सार्थकता आदि अनेक आध्यात्मिक सतय उनकी वाणियों में भी व्यक्त हुए है, जिन्हें कबीर की साखियों में भी देखा जा सकता है। फिर भी कबीर और दादू एक नहीं है।

5.7 रैदास के जीवन का परिचय

उत्तर- रैदास का समय 1388 से 1518 ई. के आस-पास का रहा होगा। अंतः साक्ष्य के आधार पर रैदास का चमार जाति का होना सिद्ध होता है- "नीचे से प्रभु आँच कियो है कह रैदास चमारा" आदि। संत रविदास काशी के रहने वाले थे। इन्हें यमानन्द का शिष्य माना जाता है।

परन्तु अंतः साक्ष्य के किसी भी स्रोत से रैदास का रामानन्द का शिष्य होना सिद्ध नहीं होता। इसके अतिरिक्त रैदास की कबीर से भेंट की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध है, परन्तु उनकी प्रमाणिकता संदिग्ध है। नाभादासकृत 'भक्तमाल' (452) में रैदास के स्वभाव और उनकी चारित्रिक उच्चता का प्रतिपादन मिलता है। प्रियादासकृत 'भक्तमाल' की टीका के अनुसार चित्तोड़ झालारानी उनकी शिष्या थी, जो महाराणा सांगा की पत्नी थी। इस दृष्टि से रैदास का समयं सन् 1422-1527 ई. (सं. 1539-1584) अर्थात विक्रम की सोलहवीं शती के अंत तक चला जाता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह चित्तोंड़ की रानी मीराबाई ही थी और उन्हें रैदास का शिष्यत्व ग्रहण किया था। मीरा ने अपने अनेक पदों में रैदास का गुरु रुप में स्मरण किया है- "गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुरसे कलम भिड़ी। सत गुरु दई जब आके, जोत रली।" रैदास ने अपने पूर्ववर्ती और समसामयिक भक्तों के सम्बन्ध में लिखा है। उनके निर्देश से ज्ञात होता है कि कबीर की मृत्यु उनके सामने ही हो गई थी। रैदास की अवस्था 120 वर्ष की मानी जाती है।

रैदास की रचनाओं के नाम

उत्तर- संत मत के विभिन्न संग्रहो में उनकी रचनाएँ संकलित मिलती है। राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों के रुप में भी उनकी रचनाएँ मिलती है। रैदास की रचनाओं का एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनके बहुत से पद 'गुरु साहिब' में भी संकलित मिलते है। यद्यपि दोनों प्रकार के पदों की भाषा में बहुत अंतर है तथापि प्राचीनता के कारण 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संग्रहित पदों को प्रमाणिक मानने में कोई आपत्ति नह. होनी चाहिए। रैदास के कुछ पदों पर अरबी और फारसी का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। रैदास के अनपढ़ और विदेशी भाषाओं से अनभिज्ञ होने के कारण ऐसे पदों की प्रामाणिकता में संदेह होने लगता है। अतः रैदास के पदों पर अरबी-फारसी के प्रभाव का अधिक संभाव्य कारण उनका लोकप्रचलित होना ही प्रतीत होता है।

5.8 देव का संक्षिप्त जीवन परिचय

उत्तर- देब का जन्म 1673 ई. (सं. 1730) प्रथम दोहे में दिये गये 1689 ई. (1946) में से (चढ़त सोरही वर्ष) घटाकर निकाला गया है। देव का जीवन परिचय मुख्यतः तीन आधारों से प्राप्त होता है। प्रथम 'भावविलास' के अंत में आने वाले तीन दोहे, द्वितीय देव के प्रपौत्र भोगीलाल का दिया हुआ वंश-परिचय तथा तृतीय देव के वंशज मातादीन जुदे के पास सुरक्षित उनका वंश-वृक्ष। 'भावविलास' की कुछ प्रतियाँ इधर ऐसी भी प्राप्त हुई है, देव को कुछ लोगों ने सनाढ्य ब्राह्मण माना है, तो कुछ ने उन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है।

देव द्वारा रचित ग्रंथों का वर्णन

उत्तर- देव के ग्रंथ के विषय में प्रथम महत्वपूर्ण उल्लेख शिवसिंह ने अपने 'सरोज' में किया है। उन्होने 72 संख्या का उल्लेख करके 11 के नाम गिनाये है-प्रेमतरंग, भावविलास, रस विलास, रसानन्द लहरी, सुजान विनोद, काव्य रसायन पिंगल, अष्टयाम, देवमाया प्रपंच नाटक, प्रेमदीपिका, सुमिल विनोद, राधिका विलास, (शि.स. पृ. 434)। मिश्रबन्धुओं के अनुसार "देव के ग्रंथों की संख्या 72 या 52 कही जाती है।" उन्होंने कुल 24 ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की, जिसमें 15 प्राप्त तथा 9 अप्राप्त माने है। शिवसिंह की सूची के अतिरिक्त निम्नलिखित 13 नाम इस प्रकार है- भवानीविलास, सुंदरीसिन्दूर, रागरत्नाकर, कुशलविलास, देवचरित्र, प्रेमचन्द्रिका, जातिविलास सुखसागर तरंग, वृक्षविलास, पास विलास, देवशतक, प्रेमदर्शन, शिवाष्टक। इसमें भारतेन् द्वारा किया हुआ देव के छन्दों का संग्रह सुंदरी सिन्दुर भी सम्मिलित है।

5.9 विद्यापति के काव्य-सौन्दर्य पर संक्षिप्त लेख

विद्यापति का काव्य प्रेम का. काव्य है। प्रेम का मूल प्रेरक है सौन्दर्य, उसका प्रय ई यौवन। यौवन और सौन्दर्य का समन्वित रूप ही प्रेम या रति है। रति श्रंगार का स्थायीभाव है। विद्यापति भंगारी कृदि अतः उन्होंने रति अथवा प्रेम के मूल सौन्दर्य का पूर्ण और उत्कर निरुपण किया। सौन्दर्य इन्द्रियों के माध्यम से अन्तरस में उतर कर उसे प्रेमाभिभूत करता अतः सौन्दर्य की दो प्रभाव-भूमियाँ हैं-बाहरी और भीतरी । सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति करने वाला प्रत्येक कवि भीतरी और बाहरी दोनों ही प्रकार का सौन्दर्य-चित्रण करता है। विद्या चालय, सौन्दर्य चित्रण के दोनों ही रूप मिलते हैं। वे बाहरी सौन्दर्य के चित्रण में जितने कुर है मौतरी सौन्दर्य अंकन में भी उतने ही निपुण। शारीरिक अवस्था से मानसिक अवस्या का है भारत और अटूट सम्बन्ध है। जैसा देह होगा वैसा ही मन। विद्यापति ने देह और मन दोन ही के सौन्दर्य का चित्रण किया है।

विद्यापति की भाषागत विशेषताएँ

1. विद्यारति की पदावली की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरसता है उसमें जो शब्द आये हैं वे एक ओर तो श्रृंगार की प्रवृत्ति के अनुकूल हैं और दूसरी और उसमें प्रेमिल सन्दर्भो को उद्घाटित करने की पूरी क्षमता विद्यमान है। पदावाली में कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। यद्यपि जयदेव के गीत गोविन्द की भाषा में भी पर्याप्त कोमलता और सरसता मिलती है। किन्तु विद्यापति की पदावली जो जयदेव से ही प्रभावित है इस दिशा में काफी आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है।

2. विद्यापति की पदावली की भाषा अपनी विशिष्टता लिये हुए है। इसका पदविन्यास, शब्दचयन और वर्णमैत्री अनुपम है। इसकी भाषा में तत्कालीन लोकभाषा का स्वरूप देखने को मिलता है। शब्द इतने कोमल हैं कि भाषा में कोमलता और मधुरता के साथ-साथ सुकुमारता और सचिक्कणता भी आ गई है जैसे-

ससन परस खसु अम्बर रे रेखल धनि देह।

नव जलधर-तर संचर रे जनि बिजुरि रेह।

3. विद्यापति की पदावली में वर्णमैत्री और नाद-सौन्दर्य स्थापित करने के लिए भाषा में ऐसे बणों का प्रयोग किया गया है जिससे उनकी नादात्मकता स्पष्टतः देखी जा सकती है जैसे-

बाजत द्रिग घोद्रिम द्रिमया।

नटति कलादति माति श्याम सग करताल प्रबंधक ध्वनिया।

डमडम डफ डिमिक डिमि मादल रुनझुनु मजीर बोल ।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि ध्वन्यात्मकता विद्यापति की पदावली की स्पष्ट और उल्लेखनीय विशेषता है। इसी क्रम में कोमलकांत पदावली की मधुर गूंज को भी भुलाया नहीं जा सकता। यथा-

रिपुपतिराति रसिक रजराज, रसमय रास स्भस सस माझ। रसमति रमीन घतन बनिराहि रास रसिक सह रस अवगाहि।

"ये चीन पयोधर सुमेरु पर्वत ही नहीं, बिना नाल के प्रफुल्ल कमल है। कहीं ये सुरक्षा जाएं, इसलिए मणिमय हार सुरसरि सरि की धार बनकर उनको सीचता रहता है। विद्यापति ने स्तनों के वर्णन के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित दर्शित की है। उन्होंने उन्हें उन्हें 'कनक शंभु तक कह दिया है. वे कनक शंभु भी ऐसे हैं जो सुरसरि की धारा से पूजित है। "चाहे प्रेम का प्रसंग हो, चाहे मिलन, चाहे अभिसार हो, चाहे विरह। विद्यापति ने सर्वत्र सौन्दर्य के उतुंग शिखर इन कनक सम्धुओं को ही प्राथमिकता दी है। कृष्ण के आर्कषण और प्रेम का यहीं केन्द्र बिन्दु रहे हैं। मथुरा जाते समय भी कृष्ण उन्हें साक्षी बनाकर लौट आने का वचन दे गए थे।" इसी से राया कृष्ण की वापिसी के सम्बन्ध में आश्वस्त है। राधा कहती है-

"कुच-जुग शंभु परसि कर बोललन्हि ते परतीति मोहि भेला।" डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने ठीक ही कहा है कि "विद्यापति मुख का वर्णन करने के बाद अधर कण्ठ और चिबुक की बात छोड़कर सीधे कुचों का वर्णन करने लगते हैं। कुचों की उपमा देने में तो विद्यापति बेजोड़ हैं। जाने कितने प्रकार की उपमाएं खटाखट उपस्थित होतो चली जाती है। यही इनके नख-शिख वर्णन का सबसे आकर्षक और निर्बल पक्ष है।"

5.10 जायसी का संक्षिप्त जीवन परिचय

उत्तर- जापसी का जन्म 900 हिजरी संवत् अर्थात् सन् 1495 ई. में उत्तर प्रदेश के राय बरेली जायस नगर के कंचाने मुहल्ले में हुआ। इनके निवास स्थान तथा जन्म के विषय में उक्ति है-

"भौ अवतार मोर नौ सदी,

बीस बरस ऊपर कवि बढ़ी।" जायस नगर मोर अस्थानू। "

तहाँ आय कवि कीन्ह बखानू ।"

1542 में हुई बताई जाती है।

इनकी मृत्यु सन् गुरु-इन्होंने अपने पीर के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है-

"सैय्यद असरफ पौर हमारा, जेहि मोहि पंथ दीनह

उजियारा।। " इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था। अन्तः साक्षी के आधार पर जायसी कुरुप थे और एक नेत्र से विहीन तथा कान से रहित थे। एक बार जब शेरशाह ने इनकी कुरूपता का उपहास उड़ाया तो इन्होंने बड़े शान्त भाव से उत्तर दिया-

"मोहि का हससि कि कोह रहिं।"

अर्थात् तुम मुझ पर हँसे हो या उस कुम्हार पर (ईश्वर पर जिसने मुझे बनाया हैं)। शेरशाह अत्यन्त लज्जित हुए और उन्होंने इनका अत्यधिक सम्मान किया।

जायसी की रचनाओं पर टिप्पणी

अभी तक जायसी की तीन रचनायें उपलब्ध हुई है-पहली, आखरी कलाम, दूसरी, 'पदमावत'; तीसरी, अखरावट। आखरी कलाम और अखरावट साम्प्रदायिक दृष्टि से महत्व रखती है, साहित्यक दृष्टि से नहीं।

पदमावत् हिन्दी साहित्य का एक अनमोल रत्न है जिसमें रतन सैन और पद्मावती की लौकिक प्रेम कहानी के द्वारा आलीकिक प्रेम की अभिव्यजंना की गई है। जायसी ने जहाँ तक लोक प्रचलित कथा अपनाई है वहां उसमें ऐतिहासिकता का सुन्दर समन्वय भी कर दिया है। इस कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता प्रेम की साधना और सिद्धि दोनों ही

अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण करना है। इस कृति को अन्य विशेषतायें इसकी सहिष्णुता, समन्वयात्मकता तथा संग्राहत्मकता है। जायसी इस ग्रंथ के। द्वारा हिन्दू, मुस्लिम हृदयों के अजनबीपन को मिटाने में समर्थ हो सके थे। इसलिये इस ग्रंथ को अन्योक्ति काव्य न मान कर समासोक्ति काम मानना चाहिए।

जायसी की काव्यकला

उत्तर-जायसी की काव्यकला

जायसी प्रेमाख्यान काव्ध धारा के महानतम् कवि हैं। उनका 'पद्मावत' इस काव्यधारा का अभिनव ग्रन्थ है। जायसी ने 'प्रेम की पीर' को अपने काव्य में स्थान देकर उसे अमर बना दिया है। जायसी का 'पद्मावत' पद्मावती के लौकिक अलौकिक सौन्दर्य की भाँति हिन्दी साहित्य में अपने काव्य सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है- "प्रेम या रति भाव के अतिरिक्त स्वाभाविक वौरदर्प, पवित्रता तथा छोट-छोटे भावों की व्यंजना अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयग्राही रूप में जायसी ने करायी है, जिससे उनके हृदय की उदात्त वृत्ति और कोमलता का परिचय मिलता है।"

जायसी काव्य कला का अध्ययन हम दो भागों में कर सकते हैं-

(i) भाव पक्ष (ii) कला पक्ष।

जायसी के प्रकृति चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के अन्य कवियों की अपेक्षा जायसी प्रकृति में अधिक रमे हुए दिखायी देते हैं। उन्होने मानव प्रकृति के साथ बाहा प्रकृति का अद्भुत सामंजस्य अपनें काव्य में प्रस्तुत किया है, विशेषकर मानव मन के साथ प्रकृति की सहानुभूति का चित्रण और पशु-पक्षियों तक को मानव वृत्तियों में रंग देने की कुशलता केवल जायसी में ही सर्वप्रथम दिखायी पड़ती है।

जायसी सूफी भावना के साधक और सन्त थे और तदनुकूल उन्होंने अपने काव्य में ईश्वर की कल्पना प्रेम और सौन्दर्य के रूप में की है। प्रेम और सौन्दर्य का अलंकृत चित्रण जायसी की प्रमुख विशेषता है और इस अलंकरण से कवि ने सबसे अधिक उपयोग प्रकृति व्यापारियों तथा प्रकृति उपादानों का ही किया है। इसी प्रकार प्रकृति में उन्होंने कहीं आध्यात्मिक व्यंजना रखी है, तो कहीं उसे वियोग की पृष्ठभूमि या उद्दीपन के रूप में चित्रित किया है। प्रमुख रूप से जायसी के काव्य में प्रकृति का चित्रण निम्नलिखित रूपों में हुआ है-

(1) अलंकरण रूपों में प्रकृति चित्रण।

(2) विशुद्ध, पृष्ठभूमि और वातावरण की सृष्टि के रूप में प्रकृति चित्रण।

(3) आध्यामिक अभिव्यक्ति और ईश्वरीय वैभव के स्पष्टीकरण के रूप में प्रकृति चित्रण।

(4) उपदेश और नीति के रूप में प्रकृति चित्रण।

(5) मानवीकरण से सम्बद्ध प्रकृति चित्रण।

(6) उद्दीपन रूप में चित्रण।

5.11 सारांश

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के अन्य कवियों की अपेक्षा जायसी प्रकृति में अधिक रमे हुए दिखायी देते हैं। उन्होने मानव प्रकृति के साथ बाहा प्रकृति का अद्भुत सामंजस्य अपनें काव्य में प्रस्तुत किया है, विशेषकर मानव मन के साथ प्रकृति की सहानुभूति का चित्रण और पशु-पक्षियों तक को मानव वृत्तियों में रंग देने की कुशलता केवल जायसी में ही सर्वप्रथम दिखायी पड़ती है।

जायसी सूफी भावना के साधक और सन्त थे और तदनुकूल उन्होंने अपने काव्य में ईश्वर की कल्पना प्रेम और सौन्दर्य के रूप में की है। प्रेम और सौन्दर्य का अलंकृत चित्रण जायसी की प्रमुख विशेषता है और इस अलंकरण से कवि ने सबसे अधिक उपयोग प्रकृति व्यापारियों तथा प्रकृति उपादानों का ही किया है। इसी प्रकार प्रकृति में उन्होंने कहीं आध्यात्मिक व्यंजना रखी है, तो कहीं उसे वियोग की पृष्ठभूमि या उद्दीपन के रूप में चित्रित किया है। 1. विद्यारति की पदावली की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरसता है उसमें जो शब्द आये हैं वे एक ओर तो श्रृंगार की प्रवृत्ति के अनुकूल हैं और दूसरी और उसमें प्रेमिल सन्दर्भों को उद्घाटित करने की पूरी क्षमता विद्यमान है। पदावाली में कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। यद्यपि जयदेव के गीत गोविन्द की भाषा में भी पर्याप्त कोमलता और सरसता मिलती है। किन्तु विद्यापति की पदावली जो जयदेव से ही प्रभावित है इस दिशा में काफी आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है।

2. विद्यापति की पदावली की भाषा अपनी विशिष्टता लिये हुए है। इसका पदविन्यास, शब्दचयन और वर्णमैत्री अनुपम है। इसकी भाषा में तत्कालीन लोकभाषा का स्वरूप देखने को मिलता है। शब्द इतने कोमल हैं कि भाषा में कोमलता और मधुरता के साथ-साथ सुकुमारता और सचिक्कणता भी आ गई है जैसे-

ससन परस खसु अम्बर रे रेखल धनि देह।

नव जलधर-तर संचर रे जनि बिजुरि रेह।

देब का जन्म 1673 ई. (सं. 1730) प्रथम दोहे में दिये गये 1689 ई. (1946) में से (चढ़त सोरही वर्ष) घटाकर निकाला गया है। देव का जीवन परिचय मुख्यतः तीन आधारों से प्राप्त होता है। प्रथम 'भावविलास' के अंत में आने वाले तीन दोहे, द्वितीय देव के प्रपौत्र भोगीलाल का दिया हुआ

वंश-परिचय तथा तृतीय देव के वंशज मातादीन जुदे के पास सुरक्षित उनका वंश-वृक्ष। 'भावविलास' की कुछ प्रतियाँ इधर ऐसी भी प्राप्त हुई है, देव को कुछ लोगों ने सनाढ्य ब्राह्मण माना है, तो कुछ ने उन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है।

5.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- सन्त दादू दयाल की विचारधारा का उल्लेख कीजिए।
- रैदास के जीवन का परिचय दीजिए।
- देव द्वारा रचित ग्रंथों का वर्णन कीजिए।
- विद्यापति की भाषागत विशेषताएँ लिखिए।
- जायसी की रचनाओं पर टिप्पणी कीजिए।
- जायसी के प्रकृति चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ।

5.13 पठनीय पुस्तकें

1 कवीर ग्रंथावली- सं. डॉ० श्याम सुंदर दास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2 जायगी ग्रथावली सं आचार्य रामचंद्र शुक्ल- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3 हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि- डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना- श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4 हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ० नगेन्द्र व डॉ० हरदयाल मयूर मुक्र, नई दिल्ली
5 विद्यापति पदावली आनंद प्रकाश दीक्षित साहित्य मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर
6 हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7 पद्मावत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल